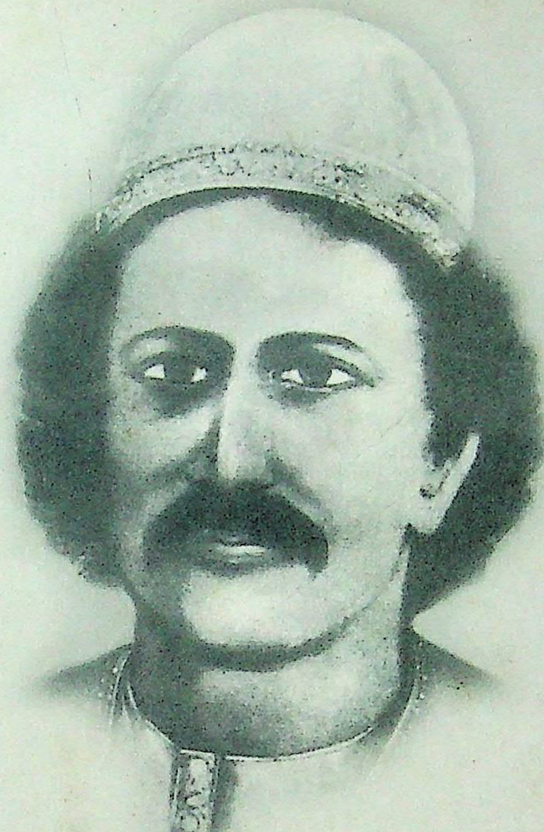

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
[illegible]न्थावली

सम्पादक

ओमप्रकाश सिंह

1

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल के प्रवर्तक के रूप में समादृत हैं। इनका जन्म इतिहास विख्यात सेठ अमीचन्द के घराने में हुआ था। भारत में अंगरेजों का साथ देने, पर लूट का माल न पाने के कारण अमीचन्द पागल होकर मरे थे। अमीचन्द के बेटे फतेहचन्द कलकत्ता से आकर काशी में बसे। इनके बेटे हर्षचन्द और हर्षचन्द के बेटे गोपालचन्द हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इन्हीं गोपालचन्द के बेटे थे।

इस अंगरेज भक्त परिवार में भारतेन्दु 'विष बेलि अमी फल लागि रही' की तरह थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन साहित्य की श्रीवृद्धि में झोंक दिया। आधुनिक साहित्य की समृद्धि में अद्वितीय योगदान के कारण ही इन्हें 'आधुनिक हिन्दी का जनक' कहा जाता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक तरफ तो अपने नाटकों, निबन्धों, लेखों, कविताओं, यात्रावृत्तान्तों, जीवनियों तथा इतिहास और पुरातत्त्व पर लिखी पुस्तक-पुस्तिकाओं के लिए प्रसिद्ध हैं तो दूसरी तरफ प्रारम्भिक हिन्दी पत्रकारिता के विकास में महत्त्वपूर्ण योग देने वाले पत्रकार-सम्पादक के रूप में स्मरणीय हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की सर्जनात्मक प्रतिभा से ही हिन्दी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता को नयी प्रेरणा तथा उचित दिशा-बोध प्राप्त हुआ।

भारतेन्दु साहित्य का अधिकांश भाग अब तक संकलित संगृहीत हो चुका है। यह जरूर है कि ये संकलन अब बाजार में मौजूद नहीं है। ब्रजरत्न दास द्वारा सम्पादित भारतेन्दु ग्रन्थावली अब आसानी से नहीं मिलती। पूरी ग्रन्थावली की योजना बनाकर शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' केवल पहला खंड ही सम्पादित कर सके थे। हेमन्त शर्मा द्वारा सम्पादित 'भारतेन्दु समग्र' बाजार में उपलब्ध है। भारतेन्दु की अनेक रचनाएं, टिप्पणियां, भूमिकाएं, पत्रों आदि का सम्पादन न होने के कारण अब यह सामग्री दुर्लभ हो गयी है। भारतेन्दु की पत्रिकाएं पुस्तकालयों में उपलब्ध नहीं हैं। अब स्थिति यह हो गयी है कि भारतेन्दु की अनेक रचनाएं प्राप्त होने वाली नहीं हैं। भारतेन्दु की सभी रचनाएं इस ग्रन्थावली में हैं, यह मेरा दावा नहीं है। हां, यह दावा जरूर है कि अब दो-एक रचनाएं और कुछ सम्पादकीय टिप्पणियां ही इस ग्रन्थावली से बाहर हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की यह ग्रन्थावली छह खंडों में तैयार की गयी है। इसमें तमाम ऐसी रचनाएं और टिप्पणियां हैं, जो अब तक कहीं भी संकलित नहीं थीं। ग्रन्थावली में भारतेन्दु साहित्य को इस क्रम से रखा गया है कि अनेक आरोपों-प्रत्यारोपों का स्वतः जवाब मिल जाएगा।

143760

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली-1

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली-1

[नाटक निबन्ध और मौलिक नाटक]

सम्पादक
ओमप्रकाश सिंह

143760

प्रकाशन संस्थान
नयी दिल्ली-110002

प्रकाशक
प्रकाशन संस्थान
4715/21, दयानन्द मार्ग, दरियागंज
नयी दिल्ली-110 002

R
022
सिंह-५

मूल्य : 4800.00 रुपये (छह खंड)
प्रथम संस्करण : सन् 2008
ISBN 81-7714-312-3
आवरण : जगमोहन सिंह रावत

शब्द-संयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032
मुद्रक : बी. के. ऑफसेट, दिल्ली-110032

भूमिका

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी में आधुनिक काल के प्रवर्तक के रूप में समादृत हैं। वे युग निर्माता रचनाकार थे। उनका महत्त्व इसी बात से सिद्ध है कि हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल 'भारतेन्दु युग' के नाम से जाना जाता है। भारतेन्दु ने हिन्दी को नए चाल में ढाला। उन्होंने हिन्दी साहित्य को नया रूप देकर जन-जीवन से सम्पृक्त किया। वे पहले साहित्यकार हैं जिन्होंने साहित्य को नवीन विषयों की ओर प्रवृत्त कर नई दिशा दी।

हरिश्चन्द्र बनारस के एक सम्पन्न अग्रवाल व्यापारी परिवार में पैदा हुए थे। यह एक ऐसा परिवार था जिसकी तूती बोलती थी। बनारस के सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों में इस परिवार की अहम भूमिका होती थी। महाराज बनारस (काशीराज) के साथ इस परिवार का उठना-बैठना और मेलजोल था। गाढ़े समय में दोनों एक दूसरे के काम आते थे। भारतेन्दु के पूर्वज बनारस कैसे आए और किस तरह से उसकी श्री वृद्धि हुई, इसकी दिलचस्प कहानी है। बिना इसे जाने भारतेन्दु को ठीक से नहीं जाना जा सकता।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के परिवार में राजभक्ति प्रारम्भ से ही थी। उनके पूर्वजों का विवरण देते हुए ब्रजरत्नदास ने लिखा है—"इनके पूर्वजों में राय बालकृष्ण तक का ही ठीक-ठीक पता चलता है। मुगल सम्राट शाहजहां का द्वितीय पुत्र शुजाअ (शाहशुजा) बंगाल का प्रान्ताध्यक्ष नियत होकर जब राजमहल आया तभी यह परिवार भी यहां चला आया। इसके अनन्तर बंगाल के नवाबों ने जब मुर्शिदाबाद को अपनी राजधानी बनाया तब यह परिवार भी यहीं आ बसा। राय बालकृष्ण के पौत्र तथा गिरधारी लाल के पुत्र अमीचन्द के समय बंगाल में अंगरेजों का प्रभुत्व फैल चला था और इनके साथ व्यापार करने में अधिक लाभ की सम्भावना देखकर इन्होंने कलकत्ते में भी कोठी खोल दी। यह अंगरेजों की बराबर सहायता करते रहे पर अन्त में उनके व्यवहार से इनके हृदय में ऐसी चोट लगी कि वह पागल होकर सन 1758 ई. में मर गए।' [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ब्रजरत्नदास, पृ. 1-2]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' में अपने वंश का परिचय दिया है

उनके अनुसार–

वैश्य अग्रकुल मैं प्रगट बालकृष्ण कुल पाल।
ता सुत गिरिधर चरन रत, वर गिरधारी लाल॥1॥
अमीचन्द तिनके तनय, फतेचन्द ता नन्द।
हरखचन्द जिनके भए, निज कुल सागर चन्द॥2॥
श्री गिरिधर गुरु सेइ कै, घर सेवा पधराइ।
तारे निज कुल जीव सब, हरि पद भक्ति दृढ़ाइ॥3॥
तिनके सुत गोपाल ससि, प्रगटित गिरिधरदास।
कठिन करम गति मेटि जिन, कीनो भक्ति प्रकास॥4॥
मेटि देव देवी सकल, छोड़ि कठिन कुल रीति।
थाप्यौ गृह में प्रेम जिन, प्रगटि कृष्ण पद प्रीति॥5॥
पारवती की कूख, सों, तिन सों प्रगट अमन्द।
गोकुलचन्द्राग्रज भयो, भक्त दास हरिचन्द॥6॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के परिवार का पता सेठ अमीचन्द के दो [कहा जाता है कि भारतेन्दु से बालकृष्ण के पुत्र लक्ष्मी राय के नाम का उल्लेख छूट गया है। यदि ऐसा है तो तीन] पीढ़ी पूर्व से ही लगने लगता है। यह जरूर है कि विस्तृत जानकारी हमें सेठ अमीचन्द से ही मिलनी शुरू होती है। अमीचन्द के पूर्वजों का सम्बन्ध दिल्ली दरबार से था। शाहशुजा के साथ इनके पूर्वज बंगाले आए और क्रमशः गौड़, राजमहल तथा मुर्शिदाबाद में आवास बनाए। कालान्तर में व्यापार का केन्द्र कलकत्ता हुआ। अमीचन्द ने कलकत्ता में व्यापार खड़ा किया। वहीं कोठी बनवाया। कोठी भी ऐसी-वैसी नहीं, राज-प्रासादों को मात करने वाली। सेठ अमीचन्द के वैभव का वर्णन अनेक इतिहासकारों ने किया है। उसे यहां दोहराना ठीक नहीं है।

सेठ अमीचन्द के समय में ही अंगरेजों का राज प्रारम्भ हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी में उनका पहले से ही बहुत सम्मान था। एक तरह से कहें तो कलकत्ता में वही होता जो सेठ अमीचन्द चाहते। सिराजुद्दौला, अंगरेजों और मीरजाफर की चालें इतिहास प्रसिद्ध हैं। सिराजुद्दौला को हटाकर मीरजाफर को बंगाल का नवाब बनाया जाए, इसे अंगरेज भी चाहते थे और सेठ अमीचन्द भी। इस कार्य के लिए अंगरेजों और सेठ अमीचन्द में एक गुप्त सन्धि हुई थी। उस समय वाटसन नाम के एक अंगरेज ने क्लाइव को सलाह दी थी–'अमीचन्द जो चाहता है उसको देने में आगा पीछ करने से नहीं चलेगा। वह सहज मनुष्य नहीं है। सब भेद नवाब से खोल देगा तो कोई काम न होगा।' [हरिश्चन्द्र, शिवनन्दन सहाय, पृ. 1] अंगरेजों और सेठ अमीचन्द के बीच जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार मीर जाफर को नवाब बनाने पर सिराजुद्दौला से प्राप्त खजाने का 5 प्रतिशत अमीचन्द को मिलेगा। सन्धि पत्र

लिखने में अंगरेजों ने धोखा किया। दो सन्धि पत्र तैयार किए गए एक लाल कागज पर और-दूसरा सफेद कागज पर। लाल कागज पर सेठ अमीचन्द के साथ हुई सन्धि में खजाने के हिस्से का उल्लेख था और सफेद कागज पर ऐसा कुछ न था।

पलासी के युद्ध के बाद अमीचन्द को पूरा विश्वास था कि अब रुपया मिलेगा पर सन्धि पत्र में अपना नामोल्लेख न पाकर उनका माथा ठनका। अंगरेजों ने सफेद कागज सामने रखा और उसे ही असली बताया। सेठ अमीचन्द दुहाई देते रहे, लाल कागज का उल्लेख करते रहे पर उनकी एक न सुनी गई। सेठ अमीचन्द को मूर्च्छा आ गई। रुपये के शोक में वे पागल हो गए और डेढ़ वर्ष बाद 1758 ई. में मृत्यु को प्राप्त हुए।

सेठ अमीचन्द के पुत्र बाबू फतहचन्द इस घटना से इतने दुःखी हुए कि काशी चले गए और वहीं बस गए। बाबू फतहचन्द के काशी में बसने के थोड़े समय बाद ही उनके अग्रज राय रत्नचन्द्र बहादुर भी मुर्शिदाबाद से काशी चले आए। काशी में इनका निवास स्थान बना रामकटौरा वाला बाग। इसी बाग को काशी में इस वंश का मूल स्थान समझा जाता है। बाबू फतहचन्द का विवाह नगर के प्रसिद्ध सेठ गोकुलचन्द साहू की कन्या से हुआ। गोकुलचन्द काशी के सम्मानित सेठ थे। उनके पूर्वजों ने काशी से मीर अली रुस्तम का राज्य समाप्त करने और राजा मनसा राय का राज्य स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस सन्दर्भ में श्री राधाकृष्ण दास ने लिखा है–"सेठ गोकुलचन्द के पूर्वजों ने काशी के वर्तमान राज्यवंश को काशी का राज्य, मीर रुस्तम अली को पदच्युत कराके, अवध के नव्वाब से प्राप्त कराने में बहुत कुछ उद्योग किया था और तभी से वह उस राज्य के महाजन नियत हुए, तथा प्रतिष्ठापूर्वक 'नौपति' की पदवी प्राप्त हुई।" [भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का सचित्र जीवन चरित्र, श्री राधाकृष्णदास, पृ. 15] सेठ गोकुलचन्द की और कोई सन्तान न होने के कारण उनकी सम्पत्ति के भी वारिस फतहचन्द हुए।

बाबू फतहचन्द के बेटे बाबू हर्षचन्द्र और राय रत्नचन्द्र बहादुर के बेटे बाबू रायचन्द्र हुए। बाबू फतहचन्द का देहावसान काफी कम उम्र में हुआ था। उस समय हर्षचन्द्र का बाल्यकाल था। पड़ोसियों और जलने वालों को अवसर मिला। उन लोगों ने बालक हर्षचन्द्र को राय रत्नचन्द्र बहादुर से लड़ा दिया। हर्षचन्द्र को शीघ्र ही अपनी गलती का पता लग गया। वे पितृव्य के पैरों पर गिर पड़े और माफी पाए। राय रत्नचन्द्र के बेटे बाबू रायचन्द्र के निःसन्तान मरने से उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति के वारिस हर्षचन्द्र हुए। हर्षचन्द्र का बनारस में बहुत सम्मान था। वे काले हर्षचन्द्र के नाम से मशहूर थे। हर्षचन्द्र के दो विवाह हुए। उनका प्रथम विवाह बनारस के धनाढ्य रईस चम्पतराय की कन्या श्यामा बीबी से हुआ था। श्यामा बीबी से सन्तति न होने पर हर्षचन्द्र का दूसरा विवाह बनारस के प्रसिद्ध रईस बाबू वृन्दावनदास की कन्या से हुआ। संयोग से इस कन्या का नाम भी श्यामा बीबी था। दूसरी स्त्री से

चार पुत्रियां और एक पुत्र पैदा हुआ। कहा जाता है कि हर्षचन्द्र के गुरु श्री गिरिधरदास के आशीर्वाद से उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी इसीलिए पुत्र का नाम गोपालचन्द्र रखा गया जो 'गिरिधरदास' उपनाम से कविता लिखता था। बाबू हर्षचन्द्र की पांच सन्ततियों में दो कन्यायें बचपन में ही मर गईं। शेष दो कन्यायें यमुना बीबी और गंगा बीबी का विवाह सम्पन्न घरों में धूमधाम से हुआ। हर्षचन्द का काशीराज, अंगरेजी सरकार और जनता में बड़ा सम्मान था। बिरादरी का कोई कार्य बिना उनकी सम्मति के न होता।

जिस समय बाबू हर्षचन्द्र स्वर्गवासी हुए, उस समय बाबू गोपालचन्द्र की अवस्था केवल ग्यारह वर्ष की थी। इतनी छोटी उम्र में सिर से पिता का साया उठ जाने के कारण गोपालचन्द्र की शिक्षा-दीक्षा तो ठीक से न हो सकी पर स्वाध्याय ने उन्हें विद्वान, धर्मनिष्ठ और सच्चरित्र बनाया। बाबू गोपालचन्द्र का विवाह शिवाला घाट, बनारस के रईस राय खिरोधरलाल की एकमात्र कन्या पार्वती देवी से बाबू हर्षचन्द्र के जीवन काल में ही हो गया था। इस विवाह के बारे में शिवनन्दन सहाय ने लिखा है–"यह विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ था। सब बिरादरी को पोशाक तथा दोशाले बांटे गए थे। वर के घर से कन्या के गृहपर्यन्त तीन मील तक बराबर बाराती लोग जमे थे। बाबू गोपालचन्द्र के श्वसुर राय खिरोधरलाल ने भी बड़ी तयारी की थी यहां तक कि कूओं में चीनी के बोरे छोड़वा दिए थे। कदाचित ऐसा विवाह काशी में कम हुआ होगा। राय खिरोधर लाल बड़े उदार थे। उन्होंने दस लाख रुपया अपने हाथ से पैदा किया होगा और सब को अपने ही हाथ से व्यय भी कर दिया।" [हरिश्चन्द्र,बाबू शिवनन्दन सहाय, पृ. 27] कोई अन्य सन्तति न होने के कारण राय खिरोधर लाल की सम्पत्ति बाबू गोपालचन्द्र को मिली।

पार्वती देवी से बाबू गोपालचन्द्र को चार सन्तानें हुईं–मुकुन्दी बीबी, हरिश्चन्द्र, गोकुलचन्द्र और गोबिन्दी बीबी। पार्वती देवी के स्वर्गवास के बाद बाबू गोपालचन्द्र का दूसरा विवाह बाबू वेणीदास की कन्या मोहन बीबी से हुआ। मोहन बीबी से बाबू गोपालचन्द्र को दो सन्तानें हुईं पर जीवित न रहीं। बाबू गोपालचन्द्र संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के पंडित थे। वे खुद साहित्य रचना करते थे और उनकी सभा में साहित्यकारों का बड़ा सम्मान होता था। उन्होंने अनेक अलभ्य ग्रन्थों का संग्रह कर 'सरस्वती भवन' नाम का एक संग्रहालय बनाया था। वे उर्दू में भी कविता करते थे, पर कभी-कभार। उन्होंने एक गजल में लिखा है–

दास गिरिधर तुम, फ़कत हिन्दी पढ़े थे खूबसी,
किसलिये उर्दू के शायर में गिने जाने लगे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उनके लिखे हुए चालीस ग्रन्थों का उल्लेख किया है पर सभी ग्रन्थ नहीं मिलते। ब्रजरत्नदास ने बाईस-तेईस ग्रन्थों के प्राप्त होने का उल्लेख

किया है। इसी क्रम में उन्होंने कुछ अपूर्ण ग्रन्थों की भी बात की है। जो भी हो, गोपालचन्द्र साहित्यिक प्रतिभा से युक्त थे और अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया था, यह निर्विवाद है। 'इन्हें कविता तथा भगवत्सेवा का व्यसन सा था।' ब्रजरत्न दास का यह एक वाक्य गोपालचन्द्र के बारे में काफी कुछ कह जाता है।

बाबू गोपालचन्द भांग पीने के शौकीन थे। कहा जाता है कि उनका यह शौक अति को पहुंच गया था। इसी कारण उन्हें जलोदर रोग हो गया, तमाम चिकित्सा के बाद भी रोग काबू में न आया। बैसाख सुदी सात संवत 1917 अर्थात् 1860 ई. में मात्र सत्ताइस वर्ष की अवस्था में बाबू गोपालचन्द्र का शरीरपात हुआ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर सन 1850 ई. (भाद्रपद शुक्ल 5 ऋषि पंचमी, सोमवार सं. 1907) को प्रातःकाल, शिवाला, वाराणसी में हुआ था। दरअसल, भारतेन्दु से पूर्व के पुत्रों के न बचने के कारण गर्भावस्था के समय उनकी माता शिवाले (भारतेन्दु का ननिहाल) चली गईं। भारतेन्दु का जन्म वहीं ननिहाल में हुआ था। भारतेन्दु से बड़ी उनकी एक बहन थी–मुकुन्दी बीबी। मुकुन्दी बीबी को केवल भारतेन्दु की बड़ी बहन के रूप में याद करना उनके साथ अन्याय होगा। वे भारतेन्दु की अभिभावक थीं, मां की भूमिका का निर्वाह करने वाली थीं और सखी थीं। उनसे भारतेन्दु अपने मन की बातें कहते थे, उनके सान्निध्य में सुकून पाते थे।

भारतेन्दु की माता उन्हें पांच वर्ष की अवस्था में छोड़कर परलोक सिधारी थीं। बालक जब संसार को थोड़ा समझने लगता है, अपनी आंखों से देखने लगता है, अपने-पराये की पहचान करने लगता है, उसी समय भारतेन्दु को मां का चिरवियोग सहना पड़ा। नौ वर्ष की अवस्था में भारतेन्दु के सिर से पिता का साया उठा। नौ वर्ष का बालक हरिश्चन्द्र मां-बाप के स्नेह से वंचित हो गया। पार्वती देवी की मृत्यु के बाद बाबू गोपालचन्द्र ने दूसरा विवाह किया। नई पत्नी का नाम था–मोहन बीबी। घर में बहुआ कही जाती थी। बहुआ और हरिश्चन्द्र के पहले साक्षात्कार का एक चित्र देखिए–''करते-करते साल होने को आया। एक दिन नानी के यहां से बुलावा आया। चारों बच्चे और साथ में कालीकदमा अइया शिवाला चले गए। आठ-दस दिन वहां रहकर सब लौटे तो घर का वातावरण बदला-बदला लगा। तिनदुवारी में एक बालिका बैठी थी, उम्र रही होगी बारह-तेरह वर्ष। मुकुन्दी तब नौ वर्ष की थी, उसे सब मालूम था, अइया बता चुकी थीं। वह आकर चुपचाप बगल में बैठ गई और हरिश्चन्द्र को बुलाया–आओ बच्चा, अपनी मां हैं। हरिश्चन्द्र कुछ पल एकटक देखता रहा। मां? जीजी क्या कह रही हैं? माथा खराब हो गया है उनका। मां और ई? प्रगट में 'हंह मां? ये हमारी मां नहीं है'।'' [प्यारे हरिचन्दजू, प्रतिभा अग्रवाल, पृ. 26]

पहले ही साक्षात्कार में विमाता और हरिश्चन्द्र के मन में गांठ पड़ गई। यह गांठ बराबर बनी रही, हरिश्चन्द्र ने उन्हें माता का मान न दिया और विमाता कभी झुकी नहीं। दोनों के बीच के अन्तराल को पाटने की कोशिश मुकुन्दी करती।

गोपालचन्द ने हरिश्चन्द्र की प्रतिभा पहचान ली थी। छोटी अवस्था में ही पुत्र की ज्ञान भरी बातें सुनकर पिता पुलकित होते। कुल की परम्परा के अनुसार "भारतेन्दुजी का मुंडन संस्कार अल्पावस्था में ही हुआ था और जब यह तीन वर्ष के थे तभी इनको कंठी का मन्त्र दिया गया था। जब इनकी अवस्था नौ वर्ष की थी तभी सुप्रसिद्ध विद्वान पं. घनश्याम जी गौड़ ने इनका यज्ञोपवीत संस्कार कराया और वल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी श्री ब्रजलाल जी महाराज ने इन्हें गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया।" [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीब्रजरत्नदास, पृ. 5-6]

बचपन से ही घर पर भारतेन्दु की शिक्षा प्रारम्भ कर दी गई थी। "पं. ईश्वरीदत्त ही शुरू में इन्हें पढ़ाते थे। मौलवी ताज अली से कुछ उर्दू पढ़ी थी और अंगरेजी की प्रारम्भिक शिक्षा इन्हें पं. नन्दकिशोरजी से मिली थी। कुछ दिन इन्होंने ठठेरी बाजार वाले महाजनी स्कूल में तथा कुछ दिन राजा शिवप्रसादजी से शिक्षा प्राप्त की थी।" [वही, पृ. 6] : उस समय बनारस के रईसों में केवल शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने ही अंगरेजी की व्यवस्थित शिक्षा प्राप्त की थी। उनका बड़ा नाम था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उनके पास अंगरेजी पढ़ने जाया करते थे। वे सितारेहिन्द को इसीलिए गुरुवर या पूज्यतर के सम्बोधन से सम्बोधित करते थे।

पिता की मृत्यु के बाद हरिश्चन्द्र को क्वींस कालेज में दाखिल किया गया। वे पढ़ने भी जाने लगे पर अपने ढंग से। घर से खूब पान खाकर किताब लेकर स्कूल की राह लेते और रामकटोरा बाग के तालाब पर पड़ाव डालते। वहां मुंह धोते, पान साफ करते फिर कॉलेज की क्लास में पहुंचते। पढ़ने में उनका मन न लगता पर तेज बुद्धि होने के कारण जिस बात को सुनते याद हो जाती। कविता लिखने का शौक उन्हें छात्रावस्था से ही था पर उस समय की कवितायें शृंगारिक होतीं। इस सन्दर्भ में श्रीराधाकृष्ण दास ने लिखा है—"कॉलेज में अंगरेजी और संस्कृत पढ़ते थे, पर रसिकराज हरिश्चन्द्र का झुकाव उस समय भी कविता की ओर था। परन्तु वही प्राचीन ढर्रे शृंगार रस की। उस समय का उनका लिखा एक संग्रह मिला है। जिसमें प्रायः शृंगार ही की कविताएं विशेष संगृहीत हैं, तथा स्वयं भी जो कोई कविता की है तो शृंगार या धर्म सम्बन्धी।" [भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का सचित्र जीवन चरित्र, श्रीराधाकृष्णदास, पृ. 49] ।

संवत 1920 अर्थात सन् 1863 में अगहन महीने में हरिश्चन्द्र का विवाह मन्नो देवी के साथ हुआ। उस समय हरिश्चन्द्र की अवस्था लगभग चौदह वर्ष की थी। मन्नो देवी शिवाला के प्रसिद्ध रईस लाला गुलाब राय की पुत्री थीं। दोनों पक्ष धनी और प्रतिष्ठित थे। विवाह की धूमधाम उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप रही। यहां उस

तथ्य की तरफ संकेत कर देना प्रासंगिक होगा जिसके चलते हरिश्चन्द्र के जीवन में मल्लिका और माधवी का प्रवेश हुआ। प्रतिभा अग्रवाल ने लिखा है–"मन्नो बीबी सुन्दर नहीं थी, चेहरे पर बड़ा सा मसा था। पर उस जमाने में विवाह सम्बन्ध दो परिवारों के बीच होता था, व्यक्तियों के नहीं। अपनी बिरादरी की लड़की बिरादरी में ही तो जाएगी, जरा नरम-गरम है तो क्या हुआ।...हरिश्चन्द्र से कुछ पूछने का प्रश्न नहीं था।" [प्यारे हरिचन्द्रजू, प्रतिभा अग्रवाल, पृ. 52]। इसी जरा नरम-गरम और कुछ न पूछने के कारण जो स्थिति उत्पन्न हुई, उसी ने हरिश्चन्द्र को माधवी और मल्लिका की तरफ मोड़ा। रामविलास शर्मा ने ठीक लिखा है–"उनके चरित्र की दृढ़ता इस बात से जाहिर होती है कि वे अपनी कमजोरियां छिपाकर लोगों का आदर न पाना चाहते थे। उन्होंने सारी बातें खुद ही जनता के सामने प्रकट कर दी थीं। बचपन में उनका ब्याह हुआ था और वह अपनी स्त्री से प्यार न करते थे। यह बात भी वह छिपाते न थे। माधवी और मल्लिका से उन्हें आजीवन स्नेह रहा और इसे छिपाना तो दूर, उन्होंने उनके बनाए पदों को अपने संग्रहों में जगह दी। [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्यायें, रामविलास शर्मा, पृ. 47]। माधवी और मल्लिका से हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध कितने प्रगाढ़ थे, इसका पता हमें उनके पत्रों से चलता है। 'जब समय सुविधा मिलती चले जाते' से क्या ध्वनित हो रहा है इसे उनके सम्बन्ध और पत्रों के आलोक क्रम में देखकर ही ठीक से समझा जा सकता है। माधवी की हुंडी के सन्दर्भ में भारतेन्दु ने 'प्रेमघन' को जो लम्बा पत्र लिखा था, उससे उनकी चिन्ता स्पष्ट झलकती है। मल्लिका और हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध तो और गहरे थे। इस सम्बन्ध को समझने के लिए हरिश्चन्द्र की स्वीकारोक्ति, पत्रों और कुछ पुस्तकों के समर्पण पर ध्यान देना चाहिए। मल्लिका को उन्होंने धर्मपूर्वक्र स्वीकार किया था, पत्नी का दरजा दिया था और रामकटोरा बाग के मकान में रखा था, इसे वे छिपाते न थे। इस सन्दर्भ में बड़ी बहन मुकुन्दी के साथ भारतेन्दु की बातचीत का एक टुकड़ा देखें–

"–आजकल तुम अक्सर रात में घर नहीं आते?

–नहीं,

–कहां रहते हो?

–रामकटोरा।

–वहां और कौन-कौन रहता है?

–कौन-कौन नहीं, खाली कौन। मल्लिका।

–वह कौन है?

–हमारी पत्नी। हमने उसे धर्मपूर्वक स्वीकार किया है।" [प्यारे हरिचन्दजू, प्रतिभा अग्रवाल, पृ. 127]

यात्रा के दौरान हरिश्चन्द्र ने पत्र लिखकर अनुज गोकुलचन्द्र को जिन दो बातों

पर विशेष ध्यान देने को कहा था, उनमें एक बात मल्लिका की रक्षा की भी थी। पत्र में भी उन्होंने मल्लिका को धर्मपूर्वक अपनाने की बात की थी। 'प्रेमसरोवर' और 'प्रेमाश्रुवर्षण' की भूमिकाएं भी इस सन्दर्भ में बहुत कुछ कह जाती हैं।

पिता की मृत्यु के समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अवस्था नौ वर्ष की थी। वे जब तक बालिग न हुए व्यापार और सम्पत्ति की देखभाल उनके दोनों फूफा करते रहे। विमाता मोहन बीबी ने भी घर-बार सम्भाल लिया था। बड़े होकर गोकुलचन्द्र भी इस कार्य में योग देने लगे। हां हरिश्चन्द्र का मन इस कार्य में न लगा। उनकी इस स्थिति का प्रतिभा अग्रवाल ने ठीक-ठीक वर्णन किया है—"इसी दौरान सच्चे हितैषियों के साथ कुछ चाटुकार खुशामदी भी जुटने लगे। औरों के जाने के बाद वे बीच-बीच में रुक जाते, हरिश्चन्द्र से बड़ी आत्मीयता दिखाते, उनका सुख-दुख जानना चाहते, उन्हें सलाह देते। यह सलाह कभी सही होती कभी दुष्टतापूर्ण। बहुत बार हरिश्चन्द्र इनकी बातों को ध्यान से सुनता, बहुत बार उड़ा देता पर धीरे-धीरे कुछेक बातें उसके मन में घर करने लगी—घर के बड़े बेटा हम है, मालिक हम हैं, जरूरी नहीं कि हर समय हम दूसरों की बात मानें ही। साल-दो साल की और बात है, फिर तो हम स्वतन्त्र होंगे, हमें जो ठीक लगेगा, वही करेंगे। कोई हमें रोक नहीं सकेगा। इस कोई में फूफा और मां प्रमुख थे।" [प्यारे हरिचन्दजू, प्रतिभा अग्रवाल, पृ. 49]

मन में यही सब उमड़ता-घुमड़ता था। खर्च पर किसी तरह का कंट्रोल नहीं था। घर के लोगों की समझ में नहीं आ रहा था कि इस प्रवृत्ति पर कैसे रोक लगे? हरिश्चन्द्र के बेसिहाब खर्च पर रोक लगाना जरूरी हो गया था। ऐसी स्थिति में गोकुलचन्द्र ने मुनीम को मना कर दिया कि हरिश्चन्द्र की मांग पूरी न करें। मुनीम से रुपये मांगने और न मिलने पर पहले तो भारतेन्दु को बहुत बुरा लगा पर शीघ्र ही स्थिति समझ में आ गई। हरिश्चन्द्र को पता था कि जिस हिसाब से वे खर्च कर रहे हैं, कुछ ही समय में जमा-पूंजी और स्थायी सम्पत्ति समाप्त हो जाएगी। ऐसी दशा में एकमात्र रास्ता यही था कि बंटवारा हो जाए। हरिश्चन्द्र का हिस्सा समाप्त हो जाएगा तब भी भाई का बचा रहेगा। 21 मार्च 1870 ई. को दोनों भाइयों में रजिस्टर्ड बंटवारा हुआ। "कुल अचल सम्पत्ति के तीन भाग किए गए, जिनमें दो भाग दोनों भाइयों ने लिए और तीसरा इनकी विमाता के प्रबन्ध में दिया गया। इस तीसरे भाग की आय में धार्मिक कृत्यों, ठाकुरजी की सेवा पूजा, बड़ों के पिण्ड श्राद्ध, जाति के रस्म आदि के व्यय के साथ विमाता का व्यक्तिगत व्यय भी सम्मिलित था। इसके साथ यह भी शर्त थी कि वह भाग कभी विभाजित न हो।" [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीब्रजरत्नदास, पृ. 34]

बंटवारे में हरिश्चन्द्र को कई गांव, मकान, दुकानें, जमीन, रुपया-पैसा और सोना-चांदी आदि मिले। वे चाहते तो इस सम्पत्ति की आमदनी से चैन की जिन्दगी

बिताते पर ऐसा कैसे होता? कुछ वर्ष तो बहुत शानो-शौकत से बीते लेकिन चन्द समय (चार-पांच सालों) में ही सब कुछ स्वाहा हो गया और कर्ज का बोझ सिर पर लद गया। ननिहाल की सम्पत्ति में हरिश्चन्द्र का आधा भाग था पर मातामही ने पूरी सम्पत्ति गोकुलचन्द्र के नाम कर दी। यह जानते हुए कि इस बख्शीशनामे का कानूनी आधार कमजोर है, मातामही को ऐसा करने का हक नहीं है, भारतेन्दु ने किसी प्रकार का विवाद नहीं उठाया। भारतेन्दु का शेष जीवन चौखंभा भवन और रामकटोरा बाग (तीसरे भाग की सम्पत्ति) में बीता।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कद-काठी का वर्णन करते हुए श्रीब्रजरत्नदास ने लिखा है—"भारतेन्दुजी कद के कुछ लम्बे और शरीर से एकहरे थे, न अत्यन्त कृश और न मोटे ही। आंखें कुछ छोटी और धंसी हुई सी थीं तथा नाक बहुत सुडौल थी। कान कुछ बड़े थे, जिन पर घुंघराले बालों की लटें लटकती रहती थीं। ऊंचा ललाट इनके भाग्य का द्योतक था। इनका रंग सांवलापन लिए हुए था। शरीर की कुल बनावट सुडौल थी।" [वही, पृ. 10-11]

छोटी अवस्था में ही भारतेन्दु बनारसी रंग में रंग गए थे। 'बुढ़वा मंगल' के अवसर पर गंगा में बजरे पर बाईजी को देखकर भारतेन्दु के मन में जो विचार उठे थे, सुन्दरता का उन पर जो प्रभाव पड़ा था, उससे संकेत मिल जाता है कि आगे चलकर बालक का स्वभाव कैसा होगा। इसी तरह जल से तर्पण करते हुए पिता से भारतेन्दु का यह पूछना कि "जल में जल मिलाने से क्या होता है?" उनकी मानसिकता को स्पष्ट कर देता है। अनायास नहीं है कि आगे चलकर यही हरिश्चन्द्र तर्पण के लिए जल्दी करने और माधोजी द्वारा पुकारे जाने पर लघुशंका करने बैठ जाता है और पुकारने वाले के पुरखों का नाम ले-लेकर 'तृप्यंताम' जोड़ता जाता है। लावनी बाजों के दल में शामिल होकर लावनी गाने या काशिराज की सभा में व्याकरणाचार्य को चुनौती देते हुए 'झंपोका' शब्द का अर्थ पूछना भारतेन्दु के बनारसी फक्कड़पन को स्पष्ट करता है। इसी तरह यूरोपीय विद्वान द्वारा पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्र को उतारे जाने या मेम द्वारा खड़ाऊं पर गंगा पार करने की घोषणा करके भीड़ इकट्ठा कर देना और बाद में पहली अप्रैल की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करा देना, भारतेन्दु की बनारसी मस्ती के अन्दाज थे।

भारतेन्दु के जीवन में लम्बी दूरी की यात्रा का सिलसिला जगन्नाथपुरी की यात्रा से प्रारम्भ हुआ। इस यात्रा से उनके जीवन में कुछ महत्त्वपूर्ण मोड़ आए। इसी यात्रा से इनकी शिक्षा बाधित हुई। यह यात्रा उन्होंने परिवार के लोगों के आग्रह

पर की थी। इसी यात्रा में उन्हें वह पुश्तैनी शुभचिन्तक मिला था जिसने दो अशरफियां देकर हरिश्चन्द्र को अपनी धूर्तता में फंसाया और आगे चलकर बदले में एक बहुमूल्य मकान लिया। जगन्नाथपुरी की यात्रा में एक और बात हुई। इन्होंने देखा कि मन्दिर में भोग के समय जगन्नाथजी के साथ भैरव की मूर्ति भी बैठाई जाती है। उन्हें यह शास्त्र विरुद्ध तथा अप्रामाणिक लगा। भारतेन्दु ने अपने तर्कों से मन्दिर के व्यवस्थापकों को भैरव की मूर्ति हटाने के लिए बाध्य किया। इसी घटना पर किसी ने 'तहकीकातपुरी' लिखा जिसका जवाब भारतेन्दु ने 'तहकीकातपुरी की तहकीकात' लिखकर दिया।

जगन्नाथपुरी से लौटकर अगले साल वे बुलन्दशहर गए। कुछ साल बाद लगभग बीस वर्ष की अवस्था में वे फिर यात्रा पर निकले और इस बार तैंतीस दिनों में जिन स्थानों की यात्रा की, उसकी सूची पढ़िए—

''प्रथम गए चरणाद्रि कान्हपुर को पग धारे।
बहुरि लखनऊ होइ सहारनपुर सिधारे॥
तहं मन्सूरी होइ जाइ हरिद्वार नहाए।
फेर गए लाहौर सुपुनि अम्बरसर आए॥
दिल्ली दै ब्रज बसि आगरा देखत पहुंचे आय घर।
तैंतीस दिवस में यातरा यह कीन्हीं हरिचन्द्र बर॥''

भारतेन्दु की यात्राओं का उल्लेख करते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है—''बीस साल की अवस्था में उन्होंने कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, मसूरी, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, आगरा आदि स्थानों की यात्रा की जिसमें तैंतीस दिन लगे। छः साल बाद वह अजमेर गए और इसके दो साल बाद अयोध्या आए। अयोध्या से उन्होंने बस्ती और गोरखपुर का भ्रमण किया, जहां हिन्द प्रदेश के बहुत ही पिछड़े हुए भाग उन्हें देखने को मिले। अगले साल उन्होंने वैद्यनाथ की यात्रा की और तीस साल की उम्र में उदयपुर गए। सन 1884 में उन्हें व्याख्यान देने बलिया बुलाया गया। इसके सिवा उन्होंने कलकत्ता की यात्रा भी की थी।'' [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं, रामविलास शर्मा, पृ. 50]। भारतेन्दु की यात्राएं सोद्देश्य थीं। इन यात्राओं से उन्हें उत्तर भारत के लोगों से मिलने और उनकी समस्याओं को समझने का मौका मिला था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ऐसे साहित्यकार नहीं थे कि मात्र पुस्तकें लिखने और छापने से ही उन्हें सन्तुष्टि मिल जाती। लोकोपकार और देशहित के अनेक माध्यमों में वे साहित्य को भी एक माध्यम मानते थे। इसीलिए उन्होंने समाज की उन्नति, भाषा की उन्नति, साहित्य की उन्नति आदि के लिए एक साथ कार्य किया। शिक्षा व्यवस्था,

बालिकाओं की शिक्षा, विधवा विवाह, हिन्दी भाषा के स्वरूप, जीवन में धर्म की भूमिका, राजभक्ति, देशभक्ति आदि के लिए उनकी प्रशंसा और आलोचना करने से पूर्व हमें तत्कालीन परिस्थिति और उसमें किसी एक व्यक्ति की सीमा का भी ध्यान रखना चाहिए। शायद ऐसा करके ही हम सही निष्कर्ष पर पहुंच सके। आज हम लड़कियों की शिक्षा पर चाहे जितनी बातें करें पर यह सचाई है कि काशी में लड़कियों के लिए अंगरेजी स्कूल खुलने पर कोई भी अभिभावक अपने घर की लड़कियों के नामांकन के लिए तैयार नहीं था। ऐसी दशा में भारतेन्दु ने श्रीराधाकृष्णदास की बड़ी बहन का नामांकन उस स्कूल में कराया। ''टामसन साहब लेफ्टिनेंट गवर्नर के समय काशी में पहिला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बड़ी बहिन को इन्होंने उस स्कूल में प्रकाश्य रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय में बहुत कठिन था, क्योंकि इसमें बड़ी ही लोकनिन्दा थी।'' [भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का सचित्र जीवन चरित्र, श्रीराधाकृष्ण दास, पृ. 33]।

इतना ही नहीं, काशी में लड़कों के लिए सरकारी और गैरसरकारी स्कूल होते हुए भी फीस के कारण साधारण जन बच्चों को वहां नहीं भेज पाते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र घर पर छोटे भाई की सहायता से ऐसे बच्चों को पढ़ाते थे। आगे चलकर उन्होंने नियमित रूप से चौखम्भा विद्यालय की स्थापना की और अध्यापक रखे। इस स्कूल में बच्चों को पढ़ने-लिखने की सामग्री मुफ्त दी जाती थी, अनाथ बच्चों को खाना भी दिया जाता था। इस स्कूल के बारे में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने कहा था—''इसका व्यय अद्यपर्यन्त श्री बाबू हरिश्चन्द्रजी के आधीन है, दूसरा कोई सहायता नहीं करता। बड़ी लज्जा की बात है कि यह काशीपुरी बड़े-बड़े महाजनों से भरी हुई है, अब तक किसी का जी न उमड़ा कि उक्त बाबू साहिब को कुछ सहायता दें। केवल वे अपनी शक्ति से इसकी रक्षा किए जाते हैं।'' [हरिचन्द्र, बाबू शिवनन्दन सहाय, पृ. 65]। पहले यह प्राइमरी स्कूल था, फिर मिडिल हुआ, आगे चलकर हरिश्चन्द्र इंटरमीडिएट कॉलेज कहलाया। आज यह काशी का मशहूर पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलेज है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कवितावर्द्धिनीसभा' नाम की एक संस्था स्थापित की थी। इस सभा की बैठकें उनके घर पर या रामकटोरा बाग में हुआ करती थी। इसमें काशी के सभी कवि इकट्ठा होते। कवियों को पुरस्कार आदि देकर अच्छी कविता के लिए प्रेरित करना इस संस्था का मुख्य उद्देश्य था। 'समस्यापूर्ति' के माध्यम से कवियों की प्रतिभा पहचानी जाती। इसी सभा में पं. अम्बिकादत्त व्यास ने 'पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी' की पूर्ति इन शब्दों में करके विशेष सम्मान प्राप्त किया था—

आनन्द से प्रजा बिकसे सब कौंल में कोस सिरी हरखानी।
सेवकिनी चिरिया सम बोलि रहीं निज स्वामिनि को सममानी॥

भोर प्रकास सों जाको प्रताप लखै इमि अम्बिकादत्त बखानी।
पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी।।

भारतेन्दु ने काशी में 'पेनीरीडिंग क्लब' की स्थापना की थी। इस क्लब में लेखकों को आमन्त्रित किया जाता, वे लेख पढ़ते। अच्छे लेखों को 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में छापा जाता। इस क्लब में गाने-बजाने के जलसे भी होते थे।

सन 1873 ई. में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काशी में 'तदीय समाज' नाम की एक संस्था स्थापित की थी। वैसे तो इस संस्था का मुख्य उद्देश्य धर्म तथा ईश्वर भक्ति थी परन्तु समाज सुधार के अन्य कार्यों में भी इसकी गहरी गति थी। मद्य और मांस निषेध के लिए कार्य करना इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य था। लोगों से मद्य और मांस न ग्रहण करने के प्रतिज्ञापत्र लिखवाए जाते थे। तदीय समाज की नियमावली थी। पूरी नियमावली ग्रन्थावली में यथास्थान दी गई है। खुद हरिश्चन्द्र को 'तदीयनामांकित अनन्य वीरवैष्णव' की पदवी मिली थी। गोरक्षा का प्रयास इसी समाज के बैनर तले हुआ था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दिल्ली दरबार के समय 1877 ई. में 60000 लोगों से हस्ताक्षर कराके सरकार की सेवा में गोरक्षा के लिए एक पत्र भेजा था। जनता में हस्ताक्षर के लिए जो पत्र घुमवाया गया था, उस पर यह छन्द लिखा हुआ था–

अरिहु दन्त तृन धराहिं ताहि नहिं मार सकत कोइ।
हम सन्तत तृन चरहिं वचन उच्चरहिं दीन होइ।।
अमृत पय नित स्रवहिं वच्छ महि थम्भन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पिआवहिं।।
कह नरहरि अकबर सुनहु, विनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुये चाम सेवत चरन।।

इसी तरह बनारस में 'वैश्यहितैषिणी सभा' की स्थापना भी इन्होंने की थी। तमाम ऐसी सभाएं और संस्थायें भी थीं, जिनके संस्थापक हरिश्चन्द्र नहीं थे पर उनके सदस्य थे। 'बनारस इंस्टीट्यूट' की स्थापना शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने की थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस संस्था के एक मुख्य सभासद थे। कहते हैं कि गुरु-शिष्य के वाग्बाणों के बौछार की छटा इसी संस्था में देखने को मिलती थी।

होमियोपैथिक चिकित्सा का आरम्भ होने पर भारतेन्दु ने सन् 1868 ई. में 'होमियोपैथिक दातव्य चिकित्सालय' प्रारम्भ कराया। इस चिकित्सालय को वे प्रतिवर्ष 120 रुपये देते थे। इसी तरह परीक्षा में सफलता प्राप्त करने पर वे लड़कियों को पुरस्कार देते रहे, बंगाल, बम्बई, मद्रास आदि विश्वविद्यालयों से जो लड़कियां परीक्षा उत्तीर्ण करतीं, हरिश्चन्द्र उनके लिए बनारसी साड़ी भेजते थे।

हरिश्चन्द्र हिन्दी में पत्रकारिता का प्रारम्भ करने वाले और कई पत्र-पत्रिकाओं

के जन्मदाता भी थे। कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, बालाबोधिनी आदि पत्रिकाओं का सम्पादन-प्रकाशन उन्होंने कुछ निश्चित उद्देश्य से किया था। इन पत्रिकाओं के माध्यम से वे जन-जन तक अपनी बात पहुंचाने और उन्हें देश की दशा से परिचित कराने का प्रयास करते। "कविवचन सुधा की लोकप्रियता अभूतपूर्व थी, गोकि इसका मुद्रण आदेश केवल 250 प्रतियों का था, 150 प्रतियां साधारण ग्राहकों के लिए, 100 प्रतियां ब्रिटिश सरकार के शिक्षा निदेशालय के निमित्त। जल्दी ही यह एक पाक्षिक पत्र हो गया और फिर साप्ताहिक। बाद के वर्षों में कविवचन सुधा में गद्य भी छपने लगा।" [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मदन गोपाल पृ. 33] ; दरअसल, इस पत्रिका के प्राम्भिक अंकों में केवल पुराने कवियों की कविताएं ही छपती थीं। बाद में पुराने कवियों के साथ नए कवियों की रचनाएं भी छपने लगीं। फिर गद्य की रचनाओं को स्थान मिला। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का प्रकाशन कविवचन सुधा से अधिक युगान्तरकारी था पर भारतेन्दु के कुछ मित्रों को यह नाम अच्छा न लगता था। आगे चलकर उन्होंने इसी पत्रिका का नाम बदलकर हरिश्चन्द्र चन्द्रिका कर दिया। हां, मैगजीन शब्द तब भी छपता था पर पत्रिका के अन्तिम पृष्ठ पर।

इन दो पत्रिकाओं की अभूतपूर्व सफलता से प्रेरित होकर हरिश्चन्द्र ने महिलाओं के लिए 'बालाबोधिनी' नाम की पत्रिका निकाली। यह एक मासिक पत्रिका थी जिसमें महिला शिक्षा तथा महिला मुक्ति आन्दोलन का जोरदार समर्थन होता था। इस पत्रिका की भी हर महीने एक निश्चित संख्या ब्रिटिश सरकार खरीदती थी। हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित चौथी पत्रिका का नाम 'भगवद्भक्तितोषिणी' है। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिए प्रकाशित यह एक धार्मिक पत्रिका थी। इस पत्रिका के बारे में विशेष कुछ कहना मुश्किल है, इसके प्रकाशित अंक उपलब्ध नहीं हैं। इसके उपलब्ध कुछ पृष्ठों की छाया प्रति ग्रन्थावली में दी जा रही है।

हरिश्चन्द्र ने व्यापार के क्षेत्र में भी हाथ-पांव मारा था। उन्होंने व्यापार के लिए 'हरिश्चन्द्र ऐंड ब्रदर्स' नाम से एक प्रतिष्ठान बना रखा था। इस प्रतिष्ठान का उद्देश्य लोगों को वास्तविक दाम पर तमाम चीजें मुहैया कराना था। इस फर्म के विज्ञापन कविवचन सुधा और हरिश्चन्द्र चन्द्रिका आदि पत्रिकाओं में बराबर निकलते थे। हरिश्चन्द्र का यह प्रयास सफल न हुआ। व्यापार करना उनके वश की बात न थी। इसी ओर संकेत करते हुए श्रीब्रजरत्लदास ने लिखा है—"इस कोठी की एक यही विशिष्ट विचित्रता थी कि यहां जो माल खरीदने आते थे वे उसे उधार ही ले जाते थे और कोठी से बाहर निकलने पर उसे भेंट में मिली हुई वस्तु समझते थे। अस्तु इस शील संकोच में वह कोठी भी शीघ्र बन्द हो गई। इसी शील संकोच में वह स्वतः भी अपनी वस्तु लोगों को भेंट कर देते थे।" [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीब्रजरत्लदास, पृ. 15]।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दो मुख्य नारे दिए थे—

(1) स्वत्व निज भारत गहै, और

(2) निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।

एक तरह से उनके जीवन और साहित्य सर्जना के ये सिद्धान्त वाक्य थे। भारत अपना स्वत्व ग्रहण करे और मातृभाषा हिन्दी का विकास हो, वह नए रूप में ढले, इसके लिए उन्होंने तन, मन, धन सब कुछ निछावर कर दिया। हिन्दी के विकास के लिए जरूरी था कि उसे देशवासियों का प्रेम मिले और तत्कालीन स्थिति में शासन का सहयोग मिले। हरिश्चन्द्र ने इन दोनों क्षेत्रों में प्रयास किया। हिन्दी की दशा और स्थिति की ओर शासन का ध्यान खींचने के लिए उनके द्वारा किए गए प्रयास अविस्मरणीय है। हिन्दी का स्वरूप कैसा हो, इसके लिए उन्होंने 'हिन्दी नए चाल में ढली' का उद्घोष किया और बानगी प्रस्तुत की। हिन्दी के जिस स्वरूप की बात हरिश्चन्द्र ने की थी, उसे लेकर आज अनेक विवाद हैं। हिन्दी भाषा के मसले पर उनके किए गए कार्यों की आलोचना-प्रत्यालोचना हुई है, शिवप्रसाद सितारेहिन्द और हरिश्चन्द्र को आमने-सामने रखकर यह स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि भारतेन्दु मंडल के लेखकों की सुनियोजित कूटनीति के चलते शिवप्रसाद सितारेहिन्द अलग-थलग पड़ गए थे, भारतेन्दु ने जिस संस्कृतनिष्ठ हिन्दी की वकालत की थी, वह हिन्दी का स्वरूप नहीं है, हिन्दी का वास्तविक स्वरूप तो सितारेहिन्द की रचनाओं में प्रकट हुआ है, आदि-आदि। यह विवाद का विषय है और इस विवाद की चर्चा करना यहां मेरा उद्देश्य नहीं है। साहित्य सर्जना की बारीकियों और टेक्स्ट बुक्स रचना की पेचीदगियों की ओर ध्यान दिया जाए तो उक्त विवाद के अनेक मुद्दों का निपटारा अपने आप हो जाएगा।

इसमें कोई दो राय नहीं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। हिन्दी साहित्य नयी-नयी विधाओं में विकसित हो, इसके लिए वे लगातार प्रयासरत रहे। अनेक विधाओं में फैला हुआ उनका लेखन इस बात का प्रमाण है कि वे साहित्य के चतुर्मुखी विकास के लिए कोशिश कर रहे थे। निबन्ध, नाटक, कविता, आलोचना, आख्यान, अनुवाद आदि अनेक क्षेत्रों में उनका लेखन फैला हुआ है। 'नाटक' और 'संगीतसार' ऐसे निबन्ध हैं जो उनके आलोचकीय व्यक्तित्व के द्योतक हैं। यह सही है कि भारतेन्दु ने साहित्य की सभी शाखाओं के विकास में अप्रतिम योगदान दिया किन्तु नाटक के क्षेत्र में उनके योगदान को सदैव याद किया जाएगा। भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी नाटकों की स्थिति अच्छी नहीं थी। नाम परिगणन के लिए इस काल के कुछ नाटकों को याद किया जाता है पर नाटक साहित्य की श्रीवृद्धि में इनके योगदान की चर्चा करते हुए कुछ कहना मुश्किल हो जाता है। भारतेन्दु पहले साहित्यकार हैं जिन्होंने हिन्दी नाटक को नयी दिशा दी।

हरिश्चन्द्र में नाटक रचना की अद्‌भुत प्रतिभा थी। इसे उनके मौलिक नाटकों में लक्ष्य किया जा सकता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के छोटे-बड़े मौलिक नाटकों की संख्या 10 है– वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, पांचवें पैगम्बर, प्रेम जोगिनी, भारत दुर्दशा, चन्द्रावली नाटिका, विषस्य विषमौषधम्, सत्य हरिश्चन्द्र, अन्धेर नगरी, नील देवी और सती प्रताप। ग्रन्थावली में 'भारत जननी' को भी उनके मौलिक नाटकों में परिगणित कर लिया गया है पर यह उनका मौलिक नाटक नहीं है। इस तथ्य की जानकारी मुझे कुछ देर से हुई और तब तक नाटकों का भाग कम्पोज हो चुका था। उस अंश से छेड़छाड़ करना मैंने उचित नहीं समझा। 'भारत जननी' के संदर्भ में भारतेन्दु के स्पष्टीकरण को यथास्थान देकर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि उक्त नाटक भारतेन्दु द्वारा नहीं लिखा गया है।

मौलिक नाटकों की रचना के साथ-साथ भारतेन्दु ने अनेक भाषाओं से नाटकों का अनुवाद किया था। कुछ नाटकों का उन्होंने संशोधन-परिवर्द्धन भी किया था। कहने का आशय यह कि इन नाटकों का रचनाकार कोई और था पर संशोधन-परिवर्द्धन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। ऐसे नाटक भी उनके नाम से छप गए। 'भारत जननी' ऐसा ही नाटक है। विद्यासुन्दर, रत्नावली, पाखंड विडम्बन, धनंजय विजय, मुद्राराक्षस, दुर्लभ बन्धु और कर्पूरमंजरी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनूदित नाटक हैं। बंगला, मराठी, अंगरेजी, संस्कृत आदि के श्रेष्ठ नाटकों का अनुवाद कर हिन्दी पाठकों के सामने रखना और इन रचनाओं के माध्यम से नाट्य रचनाकारों को नाटक रचना की बारीकियों से परिचित कराना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मुख्य उद्देश्य थे। जगन्नाथपुरी की यात्रा के समय भारतेन्दु ने बर्दवान में एक बंगला नाटक खरीदा था। इस नाटक से वे इतने प्रभावित हुए थे कि उनके मन में हिन्दी के लिए भी ऐसा कुछ कर गुजरने का विचार उत्पन्न हुआ था। नाटक-रचना के सन्दर्भ में वे उसी समय से सोच-विचार करने लगे थे। कहा जाता है कि उसी समय हरिश्चन्द्र ने 'प्रवास नाटक' लिखा था पर यह नाटक उपलब्ध नहीं है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कुछ नाटकों के मंचन में अभिनय भी किया था। उनका अभिनय-कौशल पूर्ण मुखर था। शीतलाप्रसाद त्रिपाठी के नाटक 'जानकी मंगल' से महाराज बनारस बहुत प्रभावित थे। इस नाटक के मंचन की उनकी गहरी इच्छा थी और इसके निमित्त उन्होंने हर प्रकार की सहायता दी थी। 'जानकी मंगल' की रचना सन 1867 ई. में हुई थी और यह रामायण की एक घटना पर आधारित है। नाटक का मंचन महाराजा बनारस की उपस्थिति में होने वाला था पर ऐन मौके पर लक्ष्मण की भूमिका में उतरने वाला कलाकार बीमार पड़ गया। ऐसी हालत में नाटक खेला जाना स्थगित कर देना ही एकमात्र उपाय था। इन्हीं स्थितियों पर विचार-विमर्श चल रहा था कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र वहां पहुंच गए। उन्होंने महाराज बनारस से कहा कि यदि हमें आधे घंटे का समय दिया जाय तो मैं लक्ष्मण की भूमिका में उतर सकता

हूं। महाराज को विस्मय हुआ और सन्देह भी। उन्होंने एक घंटे का समय दिया। हरिश्चन्द्र ने इस बीच में लक्ष्मण के संवाद को याद कर लिया और अपने अभिनय से लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। हो सकता है कि इस घटना में अतिशयोक्ति का तत्त्व हो पर इससे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की विलक्षण स्मरण शक्ति और अभिनय क्षमता की अभिरुचि का पता चल जाता है। सर्वविदित तथ्य है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'नाटक' निबन्ध की रचना बीमारी की अवस्था में की थी। यह निबन्ध नाट्य साहित्य में उनकी गहरी रुचि का परिचायक है। इसी निबन्ध से हिन्दी में तुलनात्मक और ऐतिहासिक समालोचना की नींव पड़ी।

नाटक के बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस विधा में अधिक लिखा है, वह है--कविता। भारतेन्दु के कविता लेखन में वैविध्य है। विषय, भाषा और शिल्प के स्तरों पर उनकी कविता में जितनी विविधता हम पाते हैं, वह किसी अन्य कवि की कविता में नहीं मिलता। कवि के रूप में वे अपने समय के कवियों में ही नहीं, बाद के कवियों में भी अन्यतम हैं। इसीलिए इनकी कविता को 'प्राचीनता और नवीनता' के संगम के रूप में याद किया जाता है। भारतेन्दु की कविताओं में सर्वाधिक कविताएं ऐसी हैं जिनमें प्रेम अर्पित किया गया है। इन कविताओं में कभी वे अपने आराध्य के प्रति, कभी प्रिय के प्रति और कभी अंगरेजों के प्रति अपने प्रेम की व्यंजना करते हैं। भारतेन्दु के अनेक काव्य ग्रन्थों के शीर्षक में 'प्रेम' शब्द विद्यमान है, यथा--प्रेममालिका, प्रेमाश्रुवर्षण, प्रेमसरोवर आदि। इसी तरह उनकी स्तुतियों या महीनों के माहात्म्य या स्तोत्रों आदि में भी प्रेम केन्द्रीय भाव के रूप में विद्यमान है। कहने का आशय यह है कि भारतेन्दु की कविताओं में ऐसी कविताओं की संख्या अधिक है जिनमें प्रेम की व्यंजना हुई है।

'राजभक्ति' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को विरासत में मिली थी। इस क्षेत्र में वे परम्परावादी थे। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि विक्टोरिया देश की मल्लिका हैं और उनके तथा उनके परिवार के प्रति (राजपरिवार के प्रति) वफादारी और निष्ठा का भाव रखना हर देशवासी का कर्त्तव्य है। ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही हरिश्चन्द्र ने प्रिंस एलबर्ट के सम्मान में एक कविता लिखी थी। दरअसल, हरिश्चन्द्र में राजपरिवार के प्रति निष्ठा का भाव कूट-कूट कर भरा हुआ था। इसलिए राजपरिवार में यदि ऐसा कुछ घटित हो रहा है, जिसकी नोटिस ली जा सकती है, वह भारतेन्दु के लिए एक अवसर होता और ऐसा कोई अवसर उन्होंने हाथ से निकलने न दिया। राजपरिवार में कुछ हुआ नहीं कि भारतेन्दु की फड़कती हुई कविता तैयार। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर मदन गोपाल ने लिखा है--''महारानी विक्टोरिया का कोई ऐसा जन्मदिन न होता जिसे वह अपने स्कूल में न मनाते। खूब रोशनी आदि की जाती थी। 1869 ई. में जब प्रिंस आफ वेल्स भारत आए तब उन्हें बनारस दिखाने के लिए हरिश्चन्द्र को नियुक्त किया गया। हरिश्चन्द्र ने उन्हें बनारस की सैर कराई। इतना ही नहीं, उन्होंने बनारस के प्रसिद्ध ब्राह्मणों और पंडितों को 'प्रिंस' की प्रशस्ति में कविता लिखने को आमन्त्रित किया। इन कविताओं

को बाद में प्रकाशित तथा एच. आर. एच. प्रिं
[भारतेन्दु हरिश्चन्द्र मदन गोपाल, पृ. 51]

पहले भी कहा जा चुका है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र राजपरिवार के निकट आने का कोई अवसर न खोते थे। अपनी भावनाओं का इजहार वे कविता के माध्यम से करते। वे सेंट जेम्स पैलेस, लन्दन से सीधा सम्पर्क बनाए रखने की कोशिश करते। इसके लिए वे कभी पत्र लिखते, कभी हिन्दी किताबें भेजते, कभी कविताएं लिखकर भेजते—''हरिश्चन्द्र में अपने को राजपरिवार के निकट लाने के हर अवसर को पकड़ने की विलक्षण दक्षता थी। अतः जब उन्हें पता चलता था राजकुंवर भारत आने वाले हैं, अथवा भारत में आ चुके हैं, तब वह उनकी प्रशस्ति में कविता लिखते थे। इसी प्रकार जब महारानी एक हत्यारे की गोली से बच निकली थीं, और ब्रिटिश (अथवा भारतीय) सेना ने अफगानिस्तान, बर्मा अथवा मिस्र पर विजय पाई थी तब भी हरिश्चन्द्र ने उल्लास से पूर्ण कविताएं लिखी थीं। ब्रिटिश राजपरिवार के किसी भी सदस्य के बनारस आने पर वह उससे व्यक्तिगत मेलजोल स्थापित करते। वह इसका भी काफी फायदा उठाते और काफी प्रभाव पैदा करते। इस प्रकार वह ब्रिटिश राजघराने के निकट हो गए। इससे उनके विरोधी राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और उनके सहयोगियों को क्लेश होता। वे हरिश्चन्द्र की निन्दा करते, उनके कार्यों का उल्टा सीधा अर्थ लगाते तथा उनके लेखन के बारे में गलत-सही बातें उड़ाने का कोई भी अवसर नहीं चूकते थे।'' [वही, पृ. 52-53]

इस तरह के प्रयासों से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भरपूर लाभ हुआ था। इन्हीं प्रयासों के चलते ही अंगरेजों ने उन्हें म्युनिसिपल बोर्ड का कमिश्नर तथा आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाया था। उन्हें यह पद बहुत कम उम्र में ही मिल गया था। बनारस के आनरेरी मजिस्ट्रेटों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सबसे कम उम्र के थे। अंगरेजों की कृपा से उन्हें अन्य दूसरे पद-सम्मान आदि भी मिले थे। अंगरेजी सरकार द्वारा उनकी पत्रिकाओं की एक निश्चित संख्या खरीदी जाती थी। एक तरह से यह भी अंगरेजों की कृपादृष्टि ही थी।

हरिश्चन्द्र की कविताओं में 'राज-भक्ति' की कविताओं की काफी संख्या है। आश्चर्यजनक तथ्य है कि उनकी स्वतन्त्र कविताओं में एक भी कविता ऐसी नहीं है जिसे 'देशभक्ति' की कविता कहा जा सके। उनकी ऐसी कविताएं नाटकों में तो मिल जाएंगी पर उनके काव्य ग्रन्थों या संग्रहों में नहीं। भारतेन्दु की कुछ कविताएं खड़ी बोली में भी हैं। वे समय के नब्ज की पहचान रखने वाले साहित्यकार थे। वे जानते थे कि आने वाले युग में पद्य में भी खड़ी बोली की प्रधानता होगी इसीलिए व्रजभाषा काव्य की रचना पर पूर्ण अधिकार होते हुए भी उन्होंने खड़ी बोली में कविताएं लिखीं। भारतेन्दु की ऐसी कविताएं सर्वप्रथम कलकत्ता के 'भारतमित्र' पत्र में छपी थीं। भारतेन्दु ने न केवल खड़ी बोली में कविता लिखा बल्कि अन्य साहित्यकारों को भी खड़ी बोली में कविता लिखने के लिए प्रेरित किया।

कम लोग जानते हैं कि हिन्दी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं में साहित्य सर्जना कर सकना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लिए कठिन नहीं था। वे उर्दू के एक सुप्रसिद्ध लेखक थे। वे 'कासिद' नाम से एक उर्दू साप्ताहिक पत्र निकालना चाहते थे। इस आशय का विज्ञापन छप चुका था और प्रकाशन की औपचारिक घोषणा भी हो गई थी। पाठकों की उचित प्रतिक्रिया न मिलने के कारण उन्हें इस योजना से हाथ खींच लेना पड़ा। भारतेन्दु ने उर्दू में पद्य और गद्य दोनों लिखा है। उर्दू गजल में इनका तखशुस 'रसा' है। भारतेन्दु ने उर्दू गजलों का संग्रह करके 'गुलजारे पुरबहार' नामक पुस्तक छपवाई थी जिसमें इनकी बनाई हुई कई एक गजलें हैं। इसी तरह इनकी गजलें कानपुर से प्रकाशित 'बहार गुलशन' नामक संग्रह में भी पाई जाती हैं। उर्दू गद्य में भी भारतेन्दु की अच्छी पैठ थी, 'खुशी' निबन्ध इस तथ्य का साक्षी है। इसी तरह उनकी कई व्यंग्य रचनाएं भी उर्दू में हैं। 'कानूनताज़ीरात शौहर' के टक्कर की व्यंग्य-रचना उर्दू साहित्य में खोजने पर भी नहीं मिलेगी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लिखी हुई एक-दो कविताएं अंगरेजी, पंजाबी, मारवाड़ी और गुजराती में भी मिल जाती हैं।

भारतेन्दु की कविता शक्ति विलक्षण थी। समस्यापूर्ति करने में उन्हें दक्षता हासिल थी। कहा जाता है कि कठिन से कठिन विषयों पर हरिश्चन्द्र जितनी आसानी से कविता बना लेते थे, उतनी आसानी से अन्य कवि नहीं। इस संदर्भ में मैं एक घटना का जिक्र जरूर करना चाहूंगा, जिसका उल्लेख श्रीराधाकृष्ण दास ने किया है—"काशिराज के दर्बार में एक समस्या किसी ने दी थी, किसी से पूर्ति न हुई; ये आ गए। महाराज ने कहा 'बाबू साहब इस समस्या की पूर्ति आप कीजिए, किसी कवि से न हो सकी।' इन्होंने तुरन्त लिखकर सुना दी, मानो पहिले ही से याद थी। कवियों को बुरा लगा। एक बोल उठे 'पुराना कवित्त बाबू साहब को याद रहा होगा।' बस इन्हें क्रोध आ गया, दस-बारह कवित्त तुरन्त बनाते गए और कविजी से पूछते गए 'क्यों कविजी! यह भी पुराना है न?' अन्त में काशिराज के बहुत रोकने पर रुके। इनके इन्हीं गुणों पर काशिराज इन पर मोहित थे।" [भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का सचित्र जीवन चरित्र, श्री राधाकृष्णदास, पृ. 85]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपनी रचना पर दूसरों के मत का कितना आदर करते थे, इसका भी उल्लेख श्री राधाकृष्णदास ने किया है। उन्होंने लिखा है—'एक दिन एक कवित्त बनाया। जिस के भावों के विषय में उन का विचार यह था कि ये नए भाव हैं, परन्तु मैंने इन्हीं भावों का एक कवित्त एक प्राचीन संग्रह में देखा था, उसे दिखाया; इन्होंने तुरन्त उस अपने कवित्त को (यद्यपि उसमें प्राचीन कवित्त से कई भाव अधिक थे) फाड़ डाला और कहा "कभी-कभी दो हृदय एक हो जाते हैं।" दूसरों के उचित हस्तक्षेप को स्वीकार करना भी बड़प्पन का सूचक है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के गद्य-लेखन का एक बड़ा भाग धर्म, पुरातत्त्व और इतिहास के विषयों से सन्दर्भित है। उन्होंने अपनी धार्मिक आस्था को न तो लेखन में छिपाया है और न व्यवहार में। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अनेक रचनाएं ऐसी हैं जिनमें महीनों के माहात्म्य पर प्रकाश डाला गया है। किसी खास महीने में स्नान की विधि क्या हो इस पर विचार किया गया है। इसी तरह से उन्होंने अष्टादशा पुराण की उपक्रमणिका, भक्तिसूत्र वैजयन्ती, श्री वल्लभीय सर्वस्व आदि शीर्षकों से लिखकर धर्म सम्बन्धी अनेक गुत्थियों पर अपना विचार प्रकट किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कुरान शरीफ का हिन्दी अनुवाद करना चाहते थे पर पूरा न कर सके। उन्होंने अनुवाद कार्य प्रारम्भ तो कर दिया था पर आगे न बढ़ा सके। हरिश्चन्द्र अपने जीवन में बहुत कुछ करना चाहते थे। वे कार्य आरम्भ कर देते पर पूरा न कर पाते। यह अनायास नहीं है कि 'चन्द्रावली नाटिका' में उन्होंने अपने को 'आरम्भशूर' कहलवाया है।

पुरातात्त्विक महत्त्व की चीजों के प्रति भारतेन्दु की गहरी रुचि थी। इस रुचि में राजेन्द्रलाल मित्र के सम्पर्क से और इजाफा हुआ। राजेन्द्रलाल मित्र उस समय के प्रसिद्ध पुराविद थे। वे हरिश्चन्द्र के घर के पास ही रहते थे और वैष्णव थे। मित्रता के सारे सूत्र मौजूद थे। पुराविज्ञान में रुचि और राजेन्द्रलाल मित्र के साथ ने हरिश्चन्द्र को पहला गम्भीर पुरातात्त्विक लेखक बनाया। बनारस शहर और उसके आसपास के क्षेत्रों में पुरातात्त्विक महत्त्व के अनेक स्थल थे। गम्भीर शोधछात्र की तरह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उन स्थलों का भ्रमण किया, उनके बारे में जानकारी हासिल की। वे एशियाटिक सोसायटी से लगातार सम्पर्क रखते। इन सबसे उन्हें पुरातात्त्विक महत्त्व की चीजों के लेखन की आधार सामग्री मिली। काशी और उसके आसपास के क्षेत्रों के अलावा भारतेन्दु ने प्राचीन काल के संवत निर्णय, कन्नौज, चित्रकूट. बोध गया आदि के बारे में भी लिखा है।

इसी तरह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों पर लेखन कार्य किया है। उनका यह लेखन हिन्दी के लिए नया था। ऐतिहासिक विषयों पर भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पूरी तैयारी के साथ लिखा है। जिस विषय पर भी उन्होंने लिखा, खूब पढ़कर, पूरी तैयारी के साथ और प्रमाणपुष्ट तरीके से। अगरवालों की उत्पत्ति, खत्रियों की उत्पत्ति महाराष्ट्र देश का इतिहास, उदय पुरोदय, दिल्ली दरबार, बूंदी का राजवंश आदि विषयों पर उन्होंने पूरे अधिकार के साथ लिखा है। इससे भी गम्भीर विषय 'रामायण का समय', 'कालचक्र', 'बादशाहदर्पण' आदि लेखों में उठाए गए हैं। कालचक्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने विश्व इतिहास की तैथिकी (क्रोनोलाजी) प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र वैष्णव भक्त थे, इसका यह मतलब नहीं कि वे धार्मिक कट्टरता के शिकार थे। उनके विचारों में अद्‌भुत उदारता थी। उनकी उदारता उनके लेखन में स्थान-स्थान पर प्रकट हुई है। 'पंच पवित्रात्मा' लेख को इसी भाव से देखना चाहिए। इस्लाम के प्रति, उसके प्रवर्तकों के प्रति भारतेन्दु

कितना आदर रखते थे, इस लेख से स्पष्ट हो जाता है। हिन्दू-मुसलमानों के बीच की खाई का एक कारण वे यह भी मानते थे कि दोनों धर्मावलम्बी एक दूसरे के धर्म की बातों को ठीक से नहीं जानते। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने यह लेख लिखा था। भारतेन्दु के लेखन का परवर्ती अंश पारस्परिक सद्भाव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अभी इस विषय पर काम होना बाकी है। मदन गोपाल ने ठीक ही लक्ष्य किया है—"अपनी बाद की रचनाओं में हम उन्हें इस बात का प्रचार करते हुए पाते हैं कि सभी भारतीय हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई—पहले अपने को भारतीय समझें और देश की प्रगति में कन्धा से कन्धा मिलाकर चलें। एक अत्यन्त परम्परा-मूलक युग में भी वह एक प्रगतिशील दृष्टि वाले व्यक्तित्व थे।" [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मदन गोपाल, पृ. 60]

भारतेन्दु के अनेक लेखों से उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि का पता चलता है। अनेक सार्वजनिक कार्यों में उन्होंने बढ़-चढ़ कर भाग लिया था। स्त्रियों की स्थिति, विधवा विवाह, भ्रूणहत्या आदि विषयों पर उन्होंने लेख लिखे थे। बलिया में दिया गया व्याख्यान उनकी प्रखर चेतना का परिचायक है। इसी तरह भारतेन्दु की व्यंग्य प्रधान रचनाएं भी उनके व्यक्तित्व के बारे में काफी कुछ कह जाती हैं। ऐसा नहीं है कि भारतेन्दु ने अंगरेज तथा अंगरेजी सरकार की सभी बातों का समर्थन ही किया हो, कहीं-कहीं उनके विरोध की धार बहुत पैनी है। 'लेवी प्राण लेवी' ऐसे ही लेखों में एक है। भारतेन्दु साहित्य के अध्येताओं ने उनके ऐसे दो लेखों—'मर्सिया' और 'भुतही इमली का कनकौआ' की बहुत चर्चा की है। अफसोस, ये दोनों लेख उपलब्ध नहीं हैं। बहुत कोशिशों के बाद यह पता चल जाता है कि उन्होंने 'मर्सिया' नामक लेख लिखा था पर 'भुतही इमली का कनकौआ' लेख के बारे में कुछ पता न लग सका। शायद, भारतेन्दु की पत्रिकाओं के सभी अंक उपलब्ध होते तो यह दशा न होती। कहा जाता है कि इन लेखों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल और संयुक्त प्रान्त के गवर्नर जनरल का मजाक उड़ाया था। साथ ही साथ इन लेखों को राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द तथा उनके चमचों की आलोचना भी समझा गया। इन्हीं लेखों के बाद भारतेन्दु की पत्रिकाओं की सरकारी खरीद बन्द हो गई थी।

लेखन के नए-नए रूपों में भारतेन्दु की गहरी दिलचस्पी थी। जिस तरह से खड़ी बोली कविता, आख्यान, यात्रा वृत्तान्त आदि साहित्य रूपों ने उन्हें आकर्षित किया था, उसी तरह हिन्दी उपन्यास ने भी। वे हिन्दी में उपन्यास लेखन के प्रति कितने उत्सुक थे, इसका पता उनके एक पत्र से चल जाता है। इस पत्र में भारतेन्दु ने निवेदन किया है—"जैसे भाषा में अब कुछ नाटक बन गए हैं अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी सम्पादक जैसे बाबू काशीनाथ वा गोस्वामी राधाचरणजी कोई भी उपन्यास लिखें तो उत्तम है। यदि ऐसी इच्छा हो तो 'दीपनिर्वाण' नामक उपन्यास का अनुवाद हो। यह उपन्यास केवल उपन्यास ही

नहीं है। भारतवर्ष से इससे एक बड़ा सम्बन्ध है।'' इसी क्रम में भारतेन्दु ने मल्लिका से भी कुछ बंगला उपन्यासों के हिन्दी अनुवाद का आग्रह किया। भारतेन्दु के आग्रह को स्वीकार कर मल्लिका ने तीन बंगला उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद किया। इनमें से एक उपन्यास 'राधारानी' को माल्लिका ने 'अपने संरक्षक भारतेन्दु' को इन शब्दों में समर्पित किया है–''सभ्य समाज की यह परम्परा रही है कि मेरे जैसा व्यक्ति अपना परिचय देने का अधिकार नहीं रखता, और वैसे इस अनुवाद में भी ऐसी कोई खास बात नहीं जो मैं अपने को सामने लाने की कोशिश करूं अथवा पाठकों के सामने उपस्थित होऊं...। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह अनुवाद मेरे स्वामी महान सन्त पुरुष भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को समर्पित है जिनकी आज्ञा से मैंने अपने कुछ तुच्छ शब्दों में यह अनुवाद प्रस्तुत किया है। मेरे इस प्रयत्न से मेरे स्वामी सन्तुष्ट हों, मेरे लिए यही एक मात्र पुरस्कार है।'' [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मदन गोपाल, पृ. 62-63] मल्लिका के तीनों अनुवादों को भारतेन्दु ने संशोधित कर प्रकाशित कराया। इतना ही नहीं, मल्लिका ने हिन्दी में उपन्यास भी लिखा था पर पता नहीं क्यों वह उस समय प्रकाशित न हुआ। अभी पिछले साल इस उपन्यास [कुमुदिनी] को एक हिन्दी पत्रिका ने दो अंकों में प्रकाशित किया है। बंकिमचन्द्र चटर्जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'राजसिंह' का अनुवाद भारतेन्दु स्वयं करना चाहते थे। अनुवाद कार्य उन्होंने शुरू भी कर दिया था पर अधूरा रह गया। इस अधूरे कार्य को उनकी मृत्यु के बाद श्रीराधाकृष्णदास ने पूरा किया। इन्हीं की प्रेरणा से श्रीराधाकृष्णदास ने 'स्वर्णलता', रामशंकर व्यास ने 'मधुमालती' और गदाधर सिंह ने 'दुर्गेशनन्दिनी' तथा 'कादम्बरी' का अनुवाद किया था।

भारतेन्दु के लिखे यात्रावृत्तान्तों का हिन्दी साहित्य में जवाब नहीं है। रामविलास शर्मा ने सही लक्ष्य किया है–''भारतेन्दु की यात्रा सिर्फ शौकीनों की यात्रा न थी। यह उनकी शिक्षा का आवश्यक अंग था। यात्रा में उन्हें काफी कष्ट उठाने पड़ते थे।'' [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं, रामविलास शर्मा, पृ. 50] भारतेन्दु के यात्रावृत्तान्तों का महत्त्व दो कारणों–नयी विधा के प्रवर्तन और परिपूर्णता–से है। ये यात्रावृत्तान्त मात्र यात्रावृत्तान्त नहीं हैं, अपने समय के दस्तावेज हैं। भारतेन्दु ने जिन स्थानों की यात्रा की थी वहां के जन-जीवन के चित्रण को रचना का आधार बनाया है। अपनी यात्राओं में उन्होंने अंगरेजी राज्य की न्यामतों की हकीकत को समझा और उनका वर्णन किया है। यही कारण है कि उनके यात्रावृत्तान्त जीवन्त हो उठे हैं। पुनः रामविलास शर्मा के शब्दों में–''वन, प्रकृति, पुरातत्त्व–इन सबसे बढ़कर उनके अध्ययन का विषय था–मनुष्य। हर जगह वह लोगों की अशिक्षा और कुसंस्कार देखकर कुढ़ते थे और देशोन्नति के लिए नए-नए उपाय सोचते थे। हां, उनकी यात्रा में भटियारखाने और भटियारिनें भी छूटने न पाई थीं। उस समय के नब्बे फीसदी यात्रियों की तरह भारतेन्दु ने भी 'सराय के खाट के खटमल और

भटियारिनों का लड़ना' क्या है, अपने अनुभव से जाना था।'' [वही, पृ. 50]

भारतेन्दु जितने बड़े साहित्यकार हैं, उतने ही बड़े पत्रकार भी। उन्होंने कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, बालाबोधिनी, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका जैसी पत्रिकाओं का सम्पादन किया था। 'भगवद्‌भक्तितोषिणी' जैसी धार्मिक पत्रिका की परिकल्पना की थी। इस पत्रिका के एक-दो अंक निकले भी थे। कविवचन सुधा पहले पद्य की मासिक पत्रिका थी, कालान्तर में उसमें गद्य भी छपने लगा। यह मासिक से पाक्षिक और पाक्षिक से साप्ताहिक हुई। 'कविवचन सुधा' के पांच साल बाद 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का प्रकाशन हुआ। यही पत्रिका आगे चलकर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के नाम से जानी गई। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के बाद भारतेन्दु ने स्त्रियों के लिए 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका का सम्पादन किया। यह पत्रिका चार साल तक चली। 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' की आयु छह साल की थी। भारतेन्दुयुगीन पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन से यह तथ्य ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक दौर में पत्रकारिता और साहित्य को अलग-अलग नहीं किया गया था। उस समय के पत्रों में साहित्य के अलावा अन्य तमाम विषयों के लेख भी रहते थे, खबरें और विज्ञापन दिए जाते थे। इसी तरह इन पत्रों में सम्पादक या किसी अन्य विशेषज्ञ की टिप्पणियां रहती थीं। तत्कालीन, समय, परिवेश और विचार की सम्यक समझदारी विकसित करने के उद्देश्य से ये चीजें बड़े काम की थीं।

पहले जिक्र किया गया है कि भारतेन्दु द्वारा सम्पादित पत्रिकाओं की पूरी फाइल उपलब्ध नहीं हो सकी है। बहुत उम्मीद थी कि नागरी प्रचारिणी सभा, भारतेन्दु भवन और भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से ये चीजें सहज उपलब्ध हो जाएंगी पर सम्भव न हुआ। नागरी प्रचारिणी सभा काशी से भारतेन्दु की पत्रिकाएं गायब हो चुकी हैं। भारतेन्दु भवन से अखबारों में बयानबाजी तो खूब की जा रही है पर वास्तविकता अलग है। भारतेन्दु भवन किरायेदारों की मकड़जाल में इस तरह फंस चुका है कि वहां की स्थिति का अन्दाजा लगाना मुश्किल है। वहां जाकर ही वास्तविकता से परिचित हुआ जा सकता है। बकौल़ डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह 'जिस भारतेन्दु भवन से इत्र और गुलाब जल के भभूके उठा करते थे, अब उसके मुख्य द्वार पर खौलती हुई चाय की भाप से पूरे भवन में एक अजीब सी गन्ध और चिपचिपाहट रहती है।' 14 सितम्बर, 2007 के दैनिक जागरण में भारतेन्दु वंश की चौथी पीढ़ी के प्रतिनिधि प्रो. गिरीशचन्द्र चौधरी से श्यामविहारी श्यामल की बातचीत प्रकाशित हुई है। बातचीत के क्रम में गिरीशचन्द चौधरी ने कई नई बातें कही हैं पर वास्तविकता उनसे कोसों दूर है। इस बातचीत के अनुसार गिरीशचन्द्र चौधरी के पास अभी भारतेन्दु के हस्तलेखों का लगभग सौ पृष्ठ ऐसा है जो अप्रकाशित है। श्यामविहारी श्यामल ने प्रश्न पूछा—''भारतेन्दु का पुस्तकालय अब कहां है?'' प्रो. गिरीशचन्द्र चौधरी ने जवाब दिया—''उनकी और उनसे जुड़ी सारी सामग्री बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के 'भारत कला भवन' में संरक्षित है। उनका पुस्तकालय भी।'' [दैनिक जागरण

(वाराणसी) 14 सितम्बर, 2007] ध्यातव्य है कि भारतेन्दु का पुस्तकालय छोटा-मोटा न था। इसकी चर्चा अनेक जगहों पर हुई है। भारत कला भवन में भारतेन्दु की किसी पत्रिका की पूरी फाइल नहीं है, पुस्तकालय तो दूर की बात है। जो चीजें संरक्षित हैं, वे सही अर्थों में संरक्षित हैं। मजाल क्या है कि वहां के कर्मचारी उन चीजों को हवा लगने दें।

भारतेन्दु की पत्रिकाओं के सभी अंक उपलब्ध होते तो उनमें प्रकाशित विज्ञापन, खबरें और टिप्पणियां भारतेन्दु साहित्य के अध्येताओं के लिए कितनी लाभप्रद होतीं, इसकी कल्पना की जा सकती है। जिन लोगों ने पूर्व में भारतेन्दु ग्रन्थावली सम्पादित की, उन्होंने इस तरफ ध्यान न दिया। 'भारतेन्दु समग्र' के सम्पादक का ध्यान इस ओर गया पर आधी-अधूरी सूचना देकर उन्होंने भी अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली। उस समय यदि प्रयास किया गया होता तो भारतेन्दु की अधिकांश प्रकाशित सामग्री हाथ लग जाती। इस ग्रन्थावली में मैंने उपलब्ध विज्ञापनों, टिप्पणियों और खबरों को छठे भाग में संकल्ति कर लिया है। यह संकलन काल के हिसाब से भले ही बहुत कम समय का है, पर इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि इससे भारतेन्दु के व्यक्तित्व के लगभग सभी पक्षों पर प्रकाश पड़ जाता है।

भारतेन्दु ने कुछ लेख और टिप्पणियां अंगरेजी भाषा में लिखी हैं। उनका अंगरेजी लेखन कितना है, कहना कठिन है। उपलब्ध लेखों, पुस्तक समीक्षाओं और टिप्पणियों को यहां संकलित कर लिया गया है। भारत की औपनिवेशिक सरकार ने 1882 ई. में यहां की शैक्षिक समस्याओं की जानकारी के लिए डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर की अध्यक्षता में एक आयोग बनाया था। यह आयोग हंटर कमीशन के नाम से जाना जाता है। आयोग ने हिन्दी क्षेत्र की अनेक बड़ी हस्तियों से कुछ सवाल पूछे थे। भारतेन्दु ने इन सवालों का विस्तृत लिखित जवाब अंगरेजी में दिया था। इंडियन एजुकेशन कमीशन रिपोर्ट की मुकम्मल प्रति कुछ साल पूर्व तक नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता में मौजूद थी। दो जिल्दों में यह रिपोर्ट फटी हुई हालत में अब भी मिल जाती है पर उसमें भारतेन्दु का बयान नहीं रह गया है। भारतेन्दु के इस बयान को प्राप्त करने में काफी मशक्कत हुई। अन्त में काम आए, कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रो. अमरनाथ और मेरे शिष्य श्री जोतिमय बाघ। बाघ कलकत्ता के रहने वाले हैं और उन्हें नेशनल लाइब्रेरी की अच्छी जानकारी है, पर नेशनल लाइब्रेरी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का बयान था ही नहीं, काफी खोजबीन के बाद निराशा ही हाथ लगी। इसी बीच वीरभारत तलवार की 'रस्साकशी' पढ़ते हुए पता चला कि 'भारतेन्दु का यह बयान' श्रीनारायण पांडेय की किताब 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : नए सन्दर्भ की तलाश' (शब्द भारती, इलाहाबाद) के अन्त में शामिल है। मैंने तुरन्त श्रीनारायण पांडेय से टेलीफोन पर बात की, उनके घर आदमी भी भेजा पर पुस्तक न मिली। उनसे ही मालूम पड़ा कि पुस्तक कलकत्ता की कुमार सभा लाइब्रेरी में होगी। खैर, किसी तरह से भारतेन्दु के बयान की छाया प्रति मिली। यदि प्रो. अमरनाथ न

होते तो पूरा बयान प्राप्त करना शायद सम्भव न होता।

'बालाबोधिनी' की कुछ प्रतियां नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता से मिलीं। वहां के माइक्रोफिल्म विभाग में अब 'बालाबोधिनी' के लगभग 70 पेज सुरक्षित हैं। 'कविवचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के कुछ सालों के अंक भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में सुरक्षित हैं। यदि पत्रिका के सभी अंकों से खबरें, टिप्पणियां संकलित हो जातीं तो अच्छा था पर अब मूल सामग्री ही नहीं रह गई है, फिर संकलन की बात कहां से हो? भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम से कुछ ऐसी चीजें भी छप गई हैं जो उनकी लिखी हुई नहीं हैं। वे अपने समय के सबसे बड़े लेखक थे, महत्त्वपूर्ण पत्रकार और सम्पादक थे। जाहिर है उनके पास बहुत सी रचनाएं टिप्पणी, भूमिका लेखन या संशोधन-परिवर्द्धन के लिए आती रही होंगी। बिक्री के लिए प्रकाशकों ने हेराफेरी करके इनके नाम का उपयोग किया होगा। खड्गविलास प्रेस से 'माधुरी' रूपक का लगातार विज्ञापन आता था, इसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रचित कहा जाता था। यह नाटक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम से छपा भी था। नाटक की भाषा-शैली देखकर स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना भारतेन्दु की नहीं है। श्री ब्रजरत्नदास ने इस सम्बन्ध में लिखा है–''भरतपुर-नरेश बालक बलवन्त सिंह को गद्दी से हटाकर दुर्जनसाल ने उस पर अधिकार कर लिया पर भारत सरकार ने सेना भेजकर बलवन्त सिंह को गद्दी दिला दी। दुर्जनसाल प्रयाग में रहने के लिए भेज दिए गए। इन्हीं के वंशज राव कृष्णदेवशरण सिंह 'गोप' उपनाम से कविता करते थे। काशी वार्डस स्कूल में इन दोनों मित्रों का समागम हुआ और यह गाढ़ी मित्रता अन्त तक एकरस रही। इन्होंने चन्द्रावली नाटिका का व्रजभाषा में रूपान्तर किया था। इनके 'प्रेम सन्देशा' में सोलह पद आसावरी और सोलह पद सारंग राग के हैं। 'मानचरित्र' छोटी सी रचना है जिसमें पद्य ही अधिक है। इसमें भारतेन्दुजी का भी एक पद इन्होंने रखा है। चन्द्रिका में एक दोहावली भी प्रकाशित हुई है, जिसमें पैंतीस दोहे हैं। माधुरी रूपक भी इन्हीं की कृति है।'' [भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीब्रजरत्नदास, पृ. 49] इसी तरह से 'गोमहिमा' में भारतेन्दु ने केवल 'निवेदन' लिखा है जो पुस्तक के अन्त में है। 'प्रतिमा पूजनविचार' भी एक ऐसी ही पुस्तक है। आखिरी दो पुस्तकों में केवल विषय से सम्बन्धित विचार उद्धृत कर दिए गए हैं। इसीलिए इन पुस्तकों को ग्रन्थावली में शामिल नहीं किया गया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की सभी रचनाओं का संकलन 'हरिश्चन्द्र कला' के नाम से खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना से छपा था। 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली' का सम्पादन श्रीब्रजरत्नदास ने किया है। यह ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा काशी से 1943 ई. में तीन खंडों में प्रकाशित हुई है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने पुनः 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' की योजना शिवप्रसाद मिश्र ('रुद्र' काशिकेय) के सम्पादन में बनाई। इस योजना के अन्तर्गत ग्रन्थावली का पहला खंड ही 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समस्त नाटकों का संग्रह' शीर्षक से प्रकाशित हो सका।

'भारतेन्दु समग्र' का सम्पादन हेमन्त शर्मा ने किया है। इसका प्रकाशन हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशंस प्रा. लि. वाराणसी से हुआ है। इन ग्रन्थावलियों के अलावा हरिश्चन्द्र के सम्पूर्ण नाटक एक जिल्द में उपलब्ध हैं। इसका सम्पादन डॉ. गोविन्द चातक ने किया है जो तक्षशिला प्रकाशन, नयी दिल्ली से 1998 ई. में प्रकाशित हुआ है। भारतेन्दु की रचनाओं का प्रकाशन अनेक जगहों में हुआ है फिर भी ग्रन्थावली की आवश्यकता बनी हुई थी। इस बीच में भारतेन्दु की अनेक रचनाएं प्राप्त हुईं। कुछ रचनाओं को लेकर विवाद था, अब इस विवाद का निराकरण हो गया है। ऐसी दशा में यह आवश्यकता बनी हुई थी कि भारतेन्दु ग्रन्थावली-पाठ की प्रामाणिकता के साथ प्रकाशित हो।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली की योजना बात ही बात में बन गई। दरअसल साहित्यिक जगत में इधर नवजागरण और नवजागरणकालीन रचनाकारों की चर्चा पर कुछ अधिक जोर है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस काल के प्रारम्भिक रचनाकार तो हैं ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भी हैं। उनके हाथों साहित्य की भाषा, भाव और विधाओं का निर्माण हुआ है। खड़ी बोली गद्य के उन्नायकों में उनका अग्रणी स्थान है। हिन्दी क्षेत्र में वे नवजागरण के अग्रदूत माने जाते हैं। ऐसे साहित्यकार की रचनाओं का सम्पादन करना अपने आप में चुनौतीपूर्ण है। यदि रचनाकार को लेकर विवाद हो तो चुनौती की मात्रा और अधिक हो जाती है। साहित्यिक जगत में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व को लेकर अनेक सवाल खड़े हुए हैं। उनकी रचनाओं के उल्टे-सीधे अर्थ लगाए गए हैं। अप्राप्य सामग्री को लेकर मनमाने निष्कर्ष निकाले गए हैं। ऐसे में, उनके सम्पूर्ण रचनाकर्म को एकत्रित कर देना मुझे प्रासंगिक लगा। इसी से प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली के स्वत्वाधिकारी श्री हरीशचन्द्र शर्मा ने जब मेरे सामने 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' के सम्पादन का प्रस्ताव रखा तो मैंने स्वीकार कर लिया। हालांकि कार्य की गम्भीरता और अपनी बीमारी से मैं आतंकित था। फिर भी जोखिम उठाने से मैं पीछे न हटा। मुझे प्रसन्नता है कि हरीशचन्द्र शर्मा ने मेरी स्थिति को समझा और धैर्यपूर्वक इस कार्य के परिपूर्ण होने का इन्तजार किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली के सम्पादन कार्य की चर्चा मैंने सबसे पहले प्रो. बच्चन सिंह जी से की थी। स्व. आचार्य इस सूचना से बच्चों के समान पुलकित हो उठे थे और कहा था—"यह दूसरा आणविक विस्फोट होगा।" मैं उनके कथन के अर्थ को समझ रहा था। आ. शुक्ल ग्रन्थावली को वे पहला आणविक विस्फोट मान रहे थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली के सिलसिले में उनसे कई बार बात हुई। उनसे कुछ परम उपयोगी सुझाव मिले। तमाम स्रोतों की उन्होंने जानकारी दी। अक्सर बनारस से फोन कर कार्य की प्रगति पूछते। उनके जीवनकाल में ग्रन्थावली प्रकाशित

न हो सकी। मुझे पूरा विश्वास है कि प्रकाशित ग्रन्थावली को देखकर वे सर्वाधिक प्रसन्न होते। वे हमारे बीच नहीं हैं, मैं आचार्यश्री की स्मृति को नमन करता हूं।

यह ग्रन्थावली छह खंडों में विभक्त है। पहले खंड की शुरुआत भारतेन्दु के बहुचर्चित आलोचनात्मक निबन्ध 'नाटक' से की गई है। इसके बाद उनके मौलिक नाटक दिए गए हैं। दरअसल, एक नाटककार के रूप में भारतेन्दु की प्रतिष्ठा सबसे अधिक है। उनके रचना संसार में नाट्य साहित्य का सर्वाधिक महत्त्व है। भारतेन्दु के नाटकों को समझने में उनका यह निबन्ध सहायक है। इसीलिए इसे सबसे पहले रखा गया है। भारतेन्दु के मौलिक नाटकों की संख्या दस है। आप देखेंगे कि इस खंड में ग्यारह नाटक दिए गए हैं। 'भारत जननी' भारतेन्दु का नाटक नहीं है, इसकी जानकारी मुझे बाद में हुई। तब तक यह खंड कम्पोज हो चुका था। मैंने मुद्रित सामग्री से छेड़छाड़ करना उचित न समझा। नाटक के अन्त में एक टिप्पणी जोड़कर सूचना दे दी गई कि यह भारतेन्दु का नाटक नहीं है। वास्तविक नाटककार का नाम भी यथास्थान दे दिया गया है।

ग्रन्थावली के दूसरे खंड में भारतेन्दु द्वारा अनूदित नाटक दिए गए हैं। इसी खंड में भारतेन्दु द्वारा लिखित संवाद और चरितावली भी दी गई है। श्री रामलीला एक ऐसी रचना है जो इन विधाओं में पूरी तरह फिट नहीं हो रही थी। हां संवाद के निकट अवश्य थी इसीलिए इसे संवाद के अन्तर्गत रखा गया है। भारतेन्दु कुशल अनुवादक थे। कई भाषाओं के नाटकों का उन्होंने हिन्दी अनुवाद किया था। संस्कृत, बंगला, अंगरेजी आदि भाषाओं में उनकी अच्छी गति थी। इन भाषाओं के श्रेष्ठ नाटकों का उन्होंने अनुवाद किया है। इस खंड में ऐसे नाटक संगृहीत हैं।

ग्रन्थावली के खंड तीन और चार में भारतेन्दु की कविताएं दी गई हैं। उनकी ज्यादातर कविताएं व्रजभाषा में हैं। कुछ कविताएं उर्दू और खड़ी बोली में हैं। एक-दो कविताएं अन्य भारतीय भाषाओं में भी हैं। इसी तरह इनकी कुछ कविताएं लम्बी हैं और कुछ कविताएं छोटी। दरअसल किसी एक भाव पर इनके काव्य-ग्रन्थ भी हैं और फुटकर पद भी। स्वाभाविक रूप से काव्य-ग्रन्थ पदों के समुच्चय हैं। कथ्य के आधार पर भारतेन्दु की कविताओं को विभाजित करते हुए मुझे ऐसा लगा कि इनकी अधिकांश कविताओं में केन्द्रीय तत्त्व के रूप में प्रेम विद्यमान है। यह जरूर है कि कहीं यह प्रेम ईश्वर के प्रति है, कहीं अंगरेजी राजघराने और सरकार के प्रति है और कहीं शुद्ध शरीरी। भारतेन्दु के प्रेम निवेदन में कहीं भी ओछापन नहीं है। खंड तीन में केवल ऐसी कविताएं हैं जिनमें केन्द्रीय भाव के रूप में प्रेम विद्यमान है। खंड चार में प्रेम, राजभक्ति और अन्य विषयों की कविताएं है। खंड तीन में प्रेमार्पण की लम्बी कविताएं ही रखी गई हैं। खंड चार में प्रेमार्पण की छोटी कविताएं हैं। कुछ कविताएं ऐसी हैं जिनमें भारतेन्दु ने अपनी राजभक्ति की भावना का इजहार किया है। ऐसी कविताएं खंड चार में रखी गई हैं। इसी भाग में अन्य विषय की

कविताओं के अन्तर्गत भारतेन्दु की तमाम ऐसी कविताओं को शामिल कर लिया गया है जो उक्त विषय से बाहर की हैं।

खंड पांच में भारतेन्दु का गद्य लेखन संकलित है। इस खंड में ऐसी गद्य रचनाएँ रखी गई हैं जो धार्मिक, पुरातात्त्विक और ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। भारतेन्दु ने इन क्षेत्रों में काफी कुछ लिखा है, उस पर विस्तार से लिखना यहाँ मेरा उद्देश्य नहीं है।

ग्रन्थावली का छठां और अन्तिम खंड विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस खंड को मैंने 'सृजन के विविध आयाम' नाम दिया है। इस खंड में भारतेन्दु के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक महत्त्व के लेख हैं। भाषा के सम्बन्ध में जो कुछ उन्होंने लिखा है, इसी भाग में संकलित किया गया है। इसी भाग में भारतेन्दु की व्यंग्य प्रधान गद्य रचनाएं हैं। अपने यात्रा वृत्तान्तों के लिए भारतेन्दु विशेष रूप से जाने जाते हैं। इस खंड में उनके सभी यात्रा वृत्तान्त संकलित हैं। इसी खंड में उनकी दो रचनाएं—'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती' और 'मदालसा' जो आख्यान के नाम से जानी जाती हैं—रखी गई हैं। भारतेन्दु ने कुछ पुस्तकों की भूमिका लिखी थी, अपनी पत्रिकाओं में तमाम विषयों पर वे टिप्पणियां लिखते थे, खबरें छापते थे और विज्ञापन प्रकाशित करते थे, बानगी के तौर पर ऐसे लेखन को भी यहां दिया गया है। भारतेन्दु के अंगरेजी लेखन से कम लोग ही परिचित हैं। इस खंड में उनका उपलब्ध अंगरेजी लेखन मौजूद है। भारतेन्दु ने तमाम लोगों को पत्र लिखा था। समय के प्रवाह में उनके लिखे पत्र बड़ी तेजी से विलुप्त हो गए। यहां उनके कुछ पत्र दिए गए हैं। मुझे कुछ ऐसे पत्र भी मिले थे जो भारतेन्दु को लिखे गए हैं परन्तु ग्रन्थावली में मैंने केवल उन पत्रों को ही शामिल किया है जो भारतेन्दु द्वारा लिखे गए हैं। हां, दो पत्र इस कथन के अपवाद हैं—मल्लिका द्वारा भारतेन्दु को लिखा गया पत्र और राधालाल द्वारा गोकुलचन्द्र को लिखा गया पत्र। इन पत्रों को विशेष प्रयोजन से दिया गया है। भारतेन्दु के कुछ चित्र भी इसी खंड में दिए गए हैं।

इस तरह से भारतेन्दु द्वारा लिखित सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री को छह खंडों में विभाजित किया गया है। विभाजन के आधार को मैंने स्पष्ट करने की कोशिश की है, यह जानते हुए भी कि ऐसे कार्य में आम सहमति नहीं बन पाती।

ग्रन्थावली में मैं और चित्र देना चाहता था। मुझे पूरा विश्वास था कि भारतेन्दु भवन से मुझे कई चित्र मिल जाएंगे। भारतेन्दु भवन का भी चित्र मैं देना चाहता था। इसी कार्य हेतु मैंने डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह से भारतेन्दु भवन जाकर प्रो. गिरीशचन्द्र चौधरी (भारतेन्दु की चौथी पीढ़ी) से मिलने का अनुरोध किया। डॉ. देवेन्द्र वहां गए पर भारतेन्दु भवन की उन्होंने जो हालत बतायी उसके अनुसार चित्र लेना सम्भव न था। बिजली और टेलीफोन के तारों तथा तिरपाल से आच्छादित भारतेन्दु भवन अब अपना वैभव खो चुका है। डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह की सूचना के अनुसार उन्होंने प्रो. गिरीशचन्द्र चौधरी से भारतेन्दु के चित्रों की बात की। गिरीशजी ने कहा कि

मैं इस सन्दर्भ में सोचूंगा, कुछ दिनों बाद मिलिए। उनके इस कथन का आशय क्या था, इसे समझना देवेन्द्र जैसे बनारसी व्यक्ति के लिए कठिन न था।

भारतेन्दु के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर ढेर सारी सामग्री मौजूद है। अनेक पत्रिकाओं ने भारतेन्दु पर विशेषांक निकाला है। तब से अब तक अनेक लोगों ने उनका जीवन-चरित लिखा है। महत्त्वपूर्ण आलोचकों ने भारतेन्दु पर आलोचनात्मक लेखन किया है। अनेक शोधार्थियों (देशी-विदेशी) ने भारतेन्दु पर शोधकार्य किया है, शोध-प्रबन्ध लिखा है जो प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं। इन सभी ग्रन्थों की चर्चा कर पाना यहां सम्भव नहीं है। जिन ग्रन्थों से मैं विशेष लाभान्वित हुआ हूं उनका नामोल्लेख जरूरी है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र और उनकी रचनाओं के बारे में सबसे पहले श्रीराधाकृष्णदास ने 'भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का सचित्र जीवन चरित्र' शीर्षक से 1903 ई. में लिखा था। यह पुस्तक तारा प्रेस, बनारस से छपी थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पर दूसरी उल्लेखनीय पुस्तक बाबू शिवनन्दन सहाय की 'हरिश्चन्द्र' है। यह पुस्तक हिन्दी समिति, उत्तरप्रदेश शासन, लखनऊ से 1905 ई. में प्रकाशित हुई थी। भारतेन्दु के जीवन और साहित्य पर इस पुस्तक में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। भारतेन्दु के दौहित्र श्री ब्रजरत्नदास ने भी उनके जीवन और साहित्य पर केन्द्रित पुस्तक 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' की रचना की है। यह पुस्तक हिन्दुस्तानी अकेडमी, इलाहाबाद से 1935 ई. में प्रकाशित हुई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन और साहित्य पर केन्द्रित एक और पुस्तक है—'प्यारे हरिचन्दजू'। इसे प्रतिभा अग्रवाल ने लिखा है, जिसका प्रकाशन 1997 ई. में प्रवीण प्रकाशन, नयी दिल्ली से हुआ है। इस पुस्तक का समर्पण वाक्य है—''अपने पूर्वजों के प्रति मेरा सश्रद्ध शब्द तर्पण''। प्रतिभा अग्रवाल भारतेन्दु के परिवार से जुड़ी हुई हैं। उन्हीं के शब्दों में—''मेरे दादाजी बाबू राधाकृष्णदास भारतेन्दुजी के सगे फुफेरे भाई थे, उम्र में उन से पन्द्रह साल छोटे थे, पितृहीन होने के कारण उनका बचपन ननिहाल में ममेरे भाइयों के संरक्षण में बीता। भारतेन्दुजी की छत्रछाया में उन्होंने लिखना-पढ़ना शुरू कर दिया था, उनकी मृत्यु के बाद उनका अधूरा काम पूरा किया, उनका पहला जीवन-चरित लिखा। मेरे पिता बाबू बालकृष्णदास भारतेन्दु भवन में आमृत्यु रहे, मेरा जन्म वहीं हुआ, बचपन के पन्द्रह वर्ष उसी भवन के छत-आंगन में बीते। [प्यारे हरिचन्दजू, प्रतिभा अग्रवाल, पृ. 11] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन और कृतित्व पर केन्द्रित एक और छोटी सी पुस्तक है—मदन गोपाल की 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'। भारतीय साहित्य के निर्माता सीरीज के अन्तर्गत यह पुस्तक 1978 ई. में साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली से प्रकाशित है।

आ. रामचन्द्र शुकल ने 'भारतेन्दु साहित्य' शीर्षक से एक पुस्तक सम्पादित

की है। इस पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय (बिहार) से सन 1928 ई. में हुआ था। यद्यपि आ. शुक्ल ने इसमें भारतेन्दु की चुनी हुई गद्य रचनाओं से कुछ अंश संकलित किया है पर अपनी लम्बी भूमिका के कारण यह पुस्तक विशेष महत्त्वपूर्ण है। भूमिका में शुक्लजी ने भारतेन्दु के साहित्यिक महत्त्व को भलीभांति स्पष्ट किया है।

अपनी दो प्रसिद्ध पुस्तकों—''भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं (1953)।'' और ''भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा (1975)'', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित—में रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु युग, उनके साहित्य और नवजागरण पर अच्छी तरह से विचार किया है। हिन्दी आलोचना में रामविलास शर्मा पहले आलोचक हैं जिन्होंने भारतेन्दु के साहित्य को उनके युग के साथ रखकर विवेचित विश्लेषित किया है। 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय की 1941 ई. में इलाहाबाद से प्रकाशित प्रसिद्ध पुस्तक है। यद्यपि यह पुस्तक सीधे-सीधे भारतेन्दु पर केन्द्रित नहीं है, पर भारतेन्दु साहित्य के अध्येताओं के लिए एक जरूरी पुस्तक है। इसी तरह की एक और पुस्तक है—'आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका'। डॉ. धीरेन्द्रनाथ सिंह की यह पुस्तक 1986 ई. में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना से प्रकाशित है। इस पुस्तक में भारतेन्दु से सम्बन्धित दुर्लभ सामग्री मौजूद है। इसी क्रम में 'खत्री स्मारक ग्रन्थ' सम्पादक—शिवपूजन सहाय और नलिनविलोचन शर्मा की चर्चा कर लेना प्रासंगिक होगा। इस ग्रन्थ का प्रकाशन बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना से 1960 में हुआ है। यद्यपि यह ग्रन्थ अयोध्यानाथ खत्री की स्मृति में प्रकाशित है और उनसे सम्बन्धित सामग्री से भरी पड़ी है पर इसमें कुछ अन्य लेखकों के साथ भारतेन्दु की भी एक-दो रचनाएं दी गई हैं। भारतेन्दु की इन रचनाओं का महत्त्व इसलिए बढ़ जाता है कि ये अन्यत्र नहीं मिलतीं।

सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली से 2002 ई. में 'रस्साकशी' नाम से वीर भारत तलवार की पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, उनके सहयोगी लेखक, उनका युग, खेमेबन्दी आदि पर एक खास दृष्टि से विचार किया गया है। पुस्तक के केन्द्र में हैं—राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। उस काल की साहित्यिक खेमेबन्दी, युगीन अन्तर्विरोध, उठापटक आदि के विवेचन-विश्लेषण में लेखक ने नयी दृष्टि का परिचय दिया है। इस पुस्तक में भारतेन्दु से सम्बन्धित अनेक सूचनाएं मौजूद हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य पर अंगरेजी में भी कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं। मैं इस सन्दर्भ में सबसे पहले वसुधा डालमिया और उनकी पुस्तक 'द नेशनलाइजेशन आफ हिन्दू ट्रेडिशन : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एंड नाइन्टीन्थ सेन्चुरी बनारस' (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली-1997) का उल्लेख करना चाहूंगा। इसी तरह सुधीरचन्द्र ने अपनी पुस्तक 'द आप्रेसिव प्रजेन्ट' (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली-1992) में भी भारतेन्दु

युग और उनके साहित्य पर विचार-विमर्श किया है। पॉल आर. ब्रास की पुस्तक 'लैंग्वेज, रिलीजन ऐंड पॉलिटिक्स इन नार्थ इंडिया' (कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस 1974 ई.) और क्रिस्टोफर आर. किंग की पुस्तक 'वन लैंग्वेज टू स्क्रिप्ट्स : द हिन्दी मूवमेंट इन नाइन्टीन्थ सेन्चुरी नार्थ इंडिया (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बाम्बे, 1994 ई.) भले ही शीर्षक में भारतेन्दु का नाम न धारण करती हों पर चर्चा के केन्द्र में भारतेन्दु और उनका युग ही है। भारतेन्दु और उनके साहित्य को अंगरेजी या हिन्दी आलोचकों ने किस दृष्टि से देखा है, मेरे लिए यह महत्त्वपूर्ण न था। मेरे लिए तो महत्त्वपूर्ण था कि कौन सी पुस्तक ग्रन्थावली के लिए कितनी कारगर होगी। इन पुस्तकों से मुझे अनेक सूचनाएं प्राप्त हुई हैं, दिशा निर्देश मिला है, दुर्लभ सामग्री मिली है और दृष्टिकोण विकसित हुआ है। इसीलिए ये पुस्तकें मुझे विशेष उपयोगी लगीं।

ग्रन्थावली सम्पादन के क्रम में सबसे कठिन काम था—सही पाठ का निर्धारण। पाठ की प्रामाणिकता कैसे निर्धारित हो, यह एक बड़ा परेशान करने वाला प्रश्न था। भारतेन्दु युगीन साहित्य, पत्र-पत्रिकाएं आदि प्राप्त करना कठिन कार्य था। उपलब्ध सामग्री से मुझे सन्तोष न था। ऐसे समय में नागरी प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय से मुझे विशेष लाभ मिला। यहां अधिकांश भारतेन्दु साहित्य पुस्तिकाओं के रूप में मौजूद था। भारतेन्दु की सभी ग्रन्थावलियां थीं। पुरानी पत्रिकाओं में छपे कुछ लेख थे। इन सबसे मुझे पाठ निर्धारण में सुविधा हुई। भारतेन्दु साहित्य का पाठ घिसते-घिसते लगभग आज की भाषा बोली में हो गया है। ग्रन्थावलियों में भी इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया गया है कि भारतेन्दु के काल में भाषा का स्वरूप क्या था, शब्द कैसे लिखे जाते थे, वर्तनी कैसी थी आदि। इस कार्य में मैंने पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली है, ऐसा दावा तो मैं नहीं करता पर भारतेन्दु साहित्य को मूल पाठ के निकट पहुंचाने का श्रम मैंने अवश्य किया है। पाठ शोधन में सबसे अधिक परेशानी संस्कृत की रचनाओं को लेकर हुई पर जहां चाह वहां राह वाली उक्ति से कार्य निकलता गया।

इस ग्रन्थावली का संकलन-सम्पादन कितना कठिन होगा, इसका आभास केवल मुझे ही नहीं प्रकाशक श्री हरीशचन्द्र शर्मा को भी था। वे ग्रन्थावली का प्रकाशन जल्दी करना चाह रहे थे। इसीलिए शुरू में ही उन्होंने मुझसे एक सहायक रखने की बात कह दी थी। संकलन-सम्पादन के कार्य में जिस धैर्य और लगन की जरूरत होती है, उससे युक्त सहायक ढूंढ़ना एक कठिन कार्य था। अनुज कृष्णप्रकाश चिन्तामणि भाग-4 और आ. रामचन्द्र शुक्ल ग्रन्थावली के लिए सामग्री-संकलन, पांडुलिपि निर्माण और प्रूफ शोधन का कार्य कर चुके थे। इस बीच पी-एच.डी. का शोध-प्रबन्ध जमा कर वे मौखिकी परीक्षा का इन्तजार कर रहे थे। मैंने उन्हें दिल्ली बुला लिया। बनारस के पुस्तकालयों से वे पूर्व परिचित थे। फिर शुरू हुआ सामग्री संकलन और पांडुलिपि निर्माण का

सिलसिला। इस कार्य में लगभग साल भर का समय लगा। सामग्री-संकलन और पांडुलिपि के निर्माण में कृष्णप्रकाश ने घनघोर श्रम किया। इसी श्रम का परिणाम था कि प्रेस कापी जल्दी तैयार हो गई वरना मैं अकेले न कर पाता। प्रूफरीडिंग के कार्य में भी वे सही अर्थ में मेरे सहायक साबित हुए। कृष्णप्रकाश के श्रम के लिए उन्हें धन्यवाद देना छोटी बात होगी। परिश्रम से ही व्यक्ति बड़ा बनता है, इस सूत्र वाक्य को दोहराते हुए वे आगे और अधिक श्रम के लिए तैयार रहें।

पूर्व प्रकाशित भारतेन्दु-ग्रन्थावलियों की छायाप्रति श्री सत्यपाल शर्मा, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने उपलब्ध कराई, मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. अमरनाथजी को वहां के पुस्तकालयों से सामग्री संकलन के लिए मैं समय-समय पर कष्ट देता रहा। यह उनकी महानता है कि मेरे अनुरोध को उन्होंने तुरन्त कार्य रूप में परिणत कर दिया। मैं उनका आभारी हूं। इसी क्रम में मैं डॉ. श्रीनारायण पांडेय (इलाहाबाद) का भी आभार स्वीकार करता हूं। हंटर कमीशन के समक्ष दिया गया भारतेन्दु का बयान उन्हीं के श्रम से प्राप्त हुआ।

ग्रन्थावली के सन्दर्भ में वाराणसी प्रवास के दौरान डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह ने मेरी हर सम्भव सहायता की है। वे अधिकांश समय मेरे साथ रहते, कुछ कार्य तो उनके बिना सम्भव ही न हो पाते। उन्हें धन्यवाद देकर मैं उनके महत्त्व को कम करना नहीं चाहता।

विवेकानन्द उपाध्याय, अविनाश कुमार सिंह, अमरेन्द्र त्रिपाठी, सुशील कुमार यादव, शीतांशु और अनुपमा आदि शोध छात्रों ने इस कार्य में पर्याप्त श्रम किया है। मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं।

आर्यभाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी में कार्यरत श्री अमलेश पांडेय ने दुर्लभ सामग्रियों को तत्परता से उपलब्ध कराया, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

भारतेन्दु के कुछ हस्तलिखित पत्रों की छायाप्रति मुझे नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, तीन मूर्ति भवन, नयी दिल्ली से प्राप्त हुई है। इस हेतु मैं वहां के कर्मचारियों को हार्दिक धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

श्री श्यामलाल वर्मा ने प्रूफशोधन के कार्य में कठिन श्रम किया है। कार्य के प्रति वर्मा जी जैसे ईमानदार व्यक्ति कम मिलते हैं। मैं उन्हें धन्यवाद ज्ञापित करता हूं।

–ओमप्रकाश सिंह

भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली
गुरुपूर्णिमा, सन 2008

इस खंड में

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली का यह पहला खंड है। इस खंड का शीर्षक है—नाटक (निबन्ध) और मौलिक नाटक। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का लेखन कार्य साहित्य की अनेक विधाओं में फैला हुआ है पर इसमें दो राय नहीं है कि नाटक विधा पर उन्होंने सर्वाधिक जोर दिया था। अपनी बातों के प्रचार-प्रसार के लिए उन्हें यह विधा सर्वाधिक उपयुक्त लगी थी।

हम जानते हैं कि भारतेन्दु के समय तक नाटकों की रचना या नाटकों के विवेचन-विश्लेषण के सन्दर्भ में कोई एक निश्चित परिपाटी नहीं बन पाई थी। भारतेन्दु से पूर्व के नाटककार नाटक विधा के रूप को स्थिर न कर सके थे। ले-देकर जिन दो-चार नाटकों की रचना हुई थी वे नाम परिगणन की दृष्टि से भले ही महत्त्वपूर्ण हों पर विधागत विकास में कोई योग न दे सके थे। कहना यह है कि भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी में नाटक विधा का रूप स्थिर न हो सका था। भारतेन्दु पहले नाटककार हैं जिनका ध्यान इस कमी की ओर गया। इसीलिए उन्होंने नाटकों का प्रणयन तो किया ही अनेक भाषाओं से नाटकों का हिन्दी अनुवाद भी किया। इनके अनूदित नाटकों की संख्या इतनी अधिक है कि ग्रन्थावली में उसका एक अलग खंड ही बनाना पड़ा।

नाटकों के स्वरूप विवेचन पर भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सर्वप्रथम ध्यान दिया था। उन्होंने 'नाटक' शीर्षक से लम्बा निबन्ध लिखा। दरअसल, इसी निबन्ध से हिन्दी आलोचना की शुरुआत होती है। यह निबन्ध हिन्दी नाटकों की उत्पत्ति और विकास पर तो प्रकाश डालता ही है संस्कृत और पाश्चात्य नाटकों के विवेचन-विश्लेषण का गम्भीर प्रयास भी करता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाट्य-साहित्य को समझने में इस निबन्ध की निर्णायक भूमिका है। इसीलिए इसे ग्रन्थावली के प्रारम्भ में दिया गया है।

ग्रन्थावली के इस खंड में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मौलिक नाटक कालक्रमानुसार संकलित हैं। यहां यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि भारतेन्दु के नाटकों की मौलिकता पर सवाल उठता रहा है। उनके नाटकों की मौलिक-अर्धमौलिक श्रेणियां बनती रही

हैं। कुछ नाटकों को तो सुधार भर देने से ही लेखक के रूप में उनका नाम दे दिया गया। 'माधुरी' ऐसा ही नाटक है, इसे ग्रन्थावली में संकलित न करने का मूल कारण यही है।

'भारत जननी' दूसरा ऐसा नाटक है जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का लिखा हुआ नहीं है। इस सन्दर्भ में उनकी स्वीकारोक्ति का पता मुझे देर से चला और तब तक यह नाटक इस खंड में (मौलिक नाटकों की श्रेणी में) कम्पोज हो चुका था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की स्वीकारोक्ति मैंने ग्रन्थावली में यथास्थान दे दी है और 'भारत जननी' के अन्त में अपनी टिप्पणी भी लगा दी है। कृपया इस नाटक को उल्लिखित श्रेणी में ही परिगणित करें।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों की मौलिकता को उभारा जा सके, इस योजना में आदि से अन्त तक यह चिन्ता मुझे रही है। इस प्रयास में मुझे कितनी सफलता मिली है, आपके सामने है। इति।

—ओमप्रकाश सिंह

अनुक्रम

नाटक (निबन्ध) 1

मौलिक नाटक

- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति 47
- पांचवें पैगम्बर 73
- प्रेमजोगिनी 79
- भारतदुर्दशा 111
- श्रीचन्द्रावली (नाटिका) 139
- विषस्यविषमौषधम् 195
- सत्यहरिश्चन्द्र 205
- भारत जननी 267
- अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा 281
- नीलदेवी 303
- सती प्रताप 337

नाटक

(निबन्ध)

सन 1883 ई.

उपक्रम

मुद्राराक्षस का जब मैंने अनुवाद किया तब यह इच्छा थी कि नाटकों के वर्णन का विषय भी इस के साथ दिया जाय। किन्तु एक तो ग्रन्थ के बढ़ने के भय से दूसरे कई मित्रों के अनुरोध सं यह विषय स्वतन्त्र, पुस्तकाकार मुद्रित हुआ। इस के लिखित विषय दशरूपक, भारतीय नाट्यशास्त्र, साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, विल्सन्स हिन्दू थिएटर्स, लाइफ आव दि एमिनेंट परसन्स, ड्रामेटिस्ट्स ऐंड नॉवेलिस्ट्स, हिस्टरी डि इटालिक थिएटर्स और आर्य्य दर्शन से लिये गए हैं। आशा है कि हिन्दी भाषा में नाटक बनानेवाले का यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी होगा। एक तो मनुष्यबुद्धि ही भ्रमात्मिका है, दूसरे मेरी ठीक रुग्णावस्था में यह विषय लिखा गया है; इस से बहुत सी अशुद्धियां सम्भव हैं। आशा है कि सज्जनगण गुणमात्र ग्रहण कर के मेरा काम सफल करैंगे। इस के निर्माण में मुझ को जिस से सहायता मिली है उस को धन्यवाद देने की आवश्यकता नहीं क्यौंकि दक्षिण हस्त के परिवर्त्त में वाम हस्त जो कार्य्य करै वह भी निज कृत ही है।

चैत्र शुक्ला 15, संवत् 1940 — हरिश्चन्द्र

समर्पण

हे मायाजवनिकाच्छन्न! जगन्नाटक-सूत्रधार! मदंगरंग-नायक! नट नागर!

जिस ने इसे इतने बड़े संसार नाटक को रचकर खड़ा किया है, जगदन्तःपाती वस्तुमात्र उसी को समर्पणीय है, विशेषकर नाटक सम्बन्धी और वह भी उसी के एक अभिमानी जन की।

नाथ! आज एक सप्ताह होता कि मेरे इस मनुष्य-जीवन का अन्तिम अंक हो चुकता, किन्तु न जानै क्या सोच कर और किस पर अनुग्रह कर के उस की आज्ञा नहीं हुई। नहीं तो यह ग्रन्थ प्रकाश भी न होने पाता। यह भी आप ही का खेल है कि आज इस के प्रकाश का दिन आया। जब प्रकाश होता है तो समर्पण भी होना अवश्य हुआ। अतएव–

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

अपनाए हुए की वस्तु समझ कर अंगीकार कीजिए।

यद्यपि संसार के कुरोग से मन-प्राण तो नित्य ग्रस्त थे ही किन्तु चार महीने से शरीर से भी रोगग्रस्त।

बपु लख चौरासी सजे नट सभ रिझवन तोहि।
निरखि रीझि गति देहु कै खीझि निवारहु मोहि ॥

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपंजरांते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रवाणसमये कफवातपित्तैः
कंठावरोधनविधौ स्मरणं कृतस्ते॥

चैत्र शुक्ला पूर्णिमा
महारास की समाप्ति, संवत् 1940

तुम्हारा
हरिश्चन्द्र

नाटक अथवा दृश्य काव्य

न्ाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। नट कहते हैं विद्या के प्रभाव से अपने वा किसी वस्तु के स्वरूप के फेर कर देने वाले को, वा स्वयं दृष्टि रोचन के अर्थ फिरने को। नाटक में पात्रगण अपना स्वरूप परिवर्तन कर के राजादिक का स्वरूप धारण करते हैं वा वेषविन्यास के पश्चात रंगभूमि में स्वकीय कार्य्य साधन के हेतु फिरते हैं। काव्य दो प्रकार के हैं– दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है जो कवि की वाणी को उस के हृदयगत आशय और हाव भाव सहित प्रत्यक्ष दिखला दे। जैसा कालिदास ने शाकुन्तल में भ्रमर के आने पर शकुन्तला की सूधी चितवन से कटाक्षों को फेरना जो लिखा है, उस को प्रथम चित्रपटी द्वारा उस स्थान का शकुन्तला वेषसज्जित स्त्री द्वारा उस के रूप, यौवन और वनोचित श्रृंगार का; उस के नेत्र, सिर, हस्तचालनादि द्वारा उस के अंगभंगी और हाव भाव का; तथा कवि कथित वाणी के उसी के मुख से कथन द्वारा काव्य का, दर्शकों के चित्त पर खचित कर देना ही दृश्यकाव्यत्व है। यदि श्रव्यकाव्य द्वारा ऐसी चितवन का वर्णन किसी से सुनिए या ग्रन्थ में पढ़िए तो जो काव्य जनित आनन्द होगा, यदि कोई प्रत्यक्ष अनुभव करा दे तो उस से चतुर्गुणित आनन्द होता है। दृश्यकाव्य की संज्ञा रूपक है। रूपकों में नाटक ही सब से मुख्य है। इस से रूपक मात्र को नाटक कहते हैं। इसी विद्या का नाम कुशीलवशास्त्र भी है। ब्रह्मा, शिव, भरत, नारद, हनुमान, व्यास, वाल्मीकि, लव-कुश, श्रीकृष्ण, अर्जुन, पार्वती, सरस्वती और तुम्बुरू आदि इस के आचार्य्य हैं। इन में भरत मुनि इस शास्त्र के मुख्य प्रवर्त्तक हैं।

अथ भेद

नाटक शब्द की अर्थग्राहिता यदि रंगस्थ खेल ही में की जाय तो हम इस के तीन भेद करैंगे। काव्यमिश्र, शुद्ध कौतुक और भ्रष्ट। शुद्ध कौतुक यथा कठपुतली वा खिलौने आदि से सभा इत्यादि का दिखलाना, गूंगे, बहिरे का नाटक, बाजीगरी वा घोड़े के तमाशे में संवाद, भूत, प्रेतादि की नकल और सभ्यता की अन्यान्य दिल्लगियों को कहैंगे। भ्रष्ट अर्थात जिन में अब नाटकत्व नहीं शेष रहा है यथा–भांड़, इन्द्रसभा,

रास, यात्रा, लीला और झांकी आदि। पारसियों के नाटक, महाराष्ट्रों के खेल आदि यद्यपि काव्यमिश्र हैं तथापि काव्यहीन होने के कारण वे भी भ्रष्ट ही समझे जाते हैं। काव्यमिश्र नाटकों को दो श्रेणी में विभक्त करना उचित है। प्राचीन और नवीन—

अथ प्राचीन

प्राचीन समय में अभिनय नाट्य, नृत्य, नृत्त, तांडव और लास्य इन पांच भेदों में बंटा हुआ था। इन में नृत्य भावसहित नाचने को, नृत्त केवल नाचने को और तांडव और लास्य भी एक प्रकार के नाचने ही को कहते हैं। इस से केवल नाट्य में नाटक आदि का समावेश होगा; शेष चारों नाचने वालों पर छोड़ दिए जायंगे। नाट्य रूपक और उपरूपक दो भेदों में बंटा है। रूपक के दश भेद हैं। यथा—

1. नाटक

काव्य के सर्वगुण संयुक्त खेल को नाटक कहते हैं। इस का नायक कोई महाराज (जैसा दुष्यन्त) वा ईश्वरांश (जैसा श्रीराम) वा प्रत्यक्ष परमेश्वर (जैसा श्रीकृष्ण) होना चाहिए। रस शृंगार वा वीर। अंक पांच के ऊपर और दस के भीतर। आख्यान मनोहर और अत्यन्त उज्ज्वल होना चाहिए। उदाहरण शाकुन्तल, वेणीसंहार आदि।

2. प्रकरण

यह और बातों में नाटक के तुल्य होना चाहिए किन्तु इस का उपाख्यान लौकिक हो। नायक कोई मन्त्री, धनी वा ब्राह्मण हो। इस की नायिका मन्त्रिकन्या, किसी के घर में आश्रित भाव से रहने वाली, वा वेश्या हो। प्रथमावस्था में शुद्ध और द्वितीयावस्था में प्रकरण की संकर संज्ञा होती है। उदाहरण मल्लिकामारुत, मालतीमाधव और मृच्छकटिक।

3. भाण

भाण में एक ही अंक होता है। इस में नट ऊपर देख देख कर, जैसे किसी से बात करैं आप ही सारी कहानी कह जाता है। बीच में हंसना, गाना, क्रोध करना, गिरना इत्यादि आप ही दिखलाता है। इस का उद्देश्य हंसी होता; भाषा उत्तम और बीच बीच में संगीत भी होता है। उदाहरण 'विषस्यविषमौषधम्।'

4. व्यायोग

युद्ध का निदर्शन, स्त्री पात्र रहित और एक ही दिन की कथा का होता है।

नायक कोई अवतार[1] वा वीर होना चाहिए। ग्रन्थ नाटक की अपेक्षा छोटा। उदाहरण 'धनंजय विजय।'

5. समवकार

यह तीन अंक में हो। इस में 12 तक नायक हो सकते हैं। कथा दैवी हो। छन्द वैदिक हों। युद्ध, आश्चर्य्य, माया इत्यादि इस में दिखलाई जाती हैं। उदाहरण भाषा में नहीं है।

6. डिम

यह भी वैसा ही किन्तु इस में उपद्रव, दर्शन विशेष होता है। अंक चार नायक देवता वा दैत्य का अवतार। (उदाहरण नहीं)

7. ईहामृग

चार अंक, नायक ईश्वर वा अवतार। नायिका देवी। प्रेम इत्यादि वर्णित होता है। नायिका द्वारा युद्धादि कार्य्य सम्पादन होता है। (उदाहरण नहीं)

8. अंक

एक ही अंक में खेल दिखलाना। नायक गुणी और आख्यान प्रसिद्ध हो। (उदाहरण नहीं)

9. वीथी

भाण की भांति एक अंक में। इस में दो पुरुष आकर बात कर सकते हैं। अपनी वार्ता में विविध भाव द्वारा किसी का प्रेम वर्णन करैंगे किन्तु हंसाते जायंगे। (उदाहरण नहीं)

10. प्रहसन

हास्यरस का मुख्य खेल। नायक राजा वा धनी वा ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो। इस में अनेक पात्रों का समावेश होता है। यद्यपि प्राचीन रीति में इस में एक ही अंक

---

1. अवतारों का वर्णन भक्तमाल में एक ही छप्पय में लिखा है—

जय जय मीन वराह कमठ नरहरि बलि बावन।
परसुराम रघुवीर कृष्ण कीरति जगपावन॥
बौध कलंकी व्यास पृथू हरि हंस मन्वन्तर।
यज्ञ ऋषभ हयग्रीव ध्रुवहि वर देन धन्वन्तर॥
ब्रदीपति दत्त कपिल देव सनकादिक करुना करौ।
चौबीस रूप लीला रुचिर अग्रदास उर पद धरौ॥

होना चाहिए किन्तु अब अनेक दृश्य दिए बिना नहीं लिखे जाते। उदाहरण—हास्यार्णव, वैदकी हिंसा, अन्धेर नगरी।

महानाटक

नाटक के लक्षणों से पूर्ण ग्रन्थ यदि दश अंकों में पूर्ण हो तो उस को महानाटक कहते हैं।

अथ उपरूपक

उपरूपक के अठारह भेद हैं। यथा—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित (श्रीरासिका) शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका।

नाटिका

नाटिका में चार अंक होते हैं और स्त्री पात्र अधिक होते हैं तथा नाटिका की नायिका कनिष्ठा होती है। अर्थात नाटिका के नायक की पूर्व्व प्रणयनी के वश में रहती हैं। उदाहरण रत्नावली, चन्द्रावली इत्यादि।

त्रोटक

इस में सात, आठ नौ या पांच अंक होते हैं और प्रायः प्रति अंक में विदूषक होता है। नायक दिव्य मनुष्य होता है। उदाहरण—'विक्रमोर्वशी'।

गोष्ठी

नौ या दस साधारण मनुष्य और पांच, छह स्त्री जिस में हों और कौशिकी वृत्ति तथा एक ही अंक हो। (उदाहरण नहीं)

सट्टक

जो सब प्राकृत में हो और प्रवेशक विष्कम्भक जिस में न हों और शेष सब नाटिका की भांति हो वह सट्टक है। उदाहरण—'कर्पूरमंजरी'।

नाट्यरासक

इस में एक अंक, नायक, उदात्त, नायिका बासकसज्जा, पीठमर्द उपनायक और अनेक प्रकार के गान, नृत्य होते हैं।

अथ शेष उपरूपक

यौं ही थोड़े थोड़े भेद में और भी शेष उपरूपक होते हैं। न तों सबों के भाषा में उदाहरण हैं न इन सबों का काम ही विशेष पड़ता है। इस से सविस्तर वर्णन नहीं किया गया।

भरत मुनि ने उपरूपकों के भेद नहीं लिखे हैं। दश प्रकार के रूपक लिख कर नाटक के दो भेद और माने हैं यथा—नाटिका और त्रोटक। 'मल्लिकामारुत' प्रकरणकार दंडी कवि रूपकमात्र को मिश्रकाव्य नाम से व्यवहृत करते हैं।

अथ नवीन भेद

आज कल योरोप के नाटकों की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं और बंगदेश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं वह सब नवीन भेद में परिगणित हैं। प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारम्बार दृश्यों के बदलने में है और इसी हेतु एक-एक अंक में अनेक अनेक गर्भांकों की कल्पना की जाती है क्योंकि इस समय में नाटक के खेलों के साथ विविध दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है। इस अंक और गर्भांकों की कल्पना यों होनी चाहिए, यथा—पांच वर्ष के आख्यान का एक नाटक है तो उस में वर्ष वर्ष में इतिहास के एक एक अंक और उस अंक के अन्तःपाती विशेष विशेष समयों के वर्णन का एक एक गर्भांक अथवा पांच मुख्य घटना विशिष्ट कोई नाटक है तो प्रत्येक घटना के सम्पूर्ण वर्णन का एक एक अंक और भिन्न भिन्न स्थानों में विशेष घटनान्तः पाती छोटी छोटी घटनाओं के वर्णन में एक एक गर्भांक। ये नवीन नाटक मुख्य दो भेदों में बंटे हैं—एक नाटक, दूसरा गीतिरूपक। जिन में कथा भाग विशेष और गीति न्यून हो वह नाटक और जिस में गीति विशेष हो वह गीतिरूपक। यह दोनों कथाओं के स्वभाव से अनेक प्रकार के हो जाते हैं किन्तु उन के मुख्य भेद इतने किए जा सकते हैं यथा—(1) संयोगान्त—अर्थात प्राचीन नाटकों की भांति जिस की कथा संयोग पर समाप्त हो। (2) वियोगान्त जिस की कथा अन्त में नायिका वा नायक के मरण वा और किसी आपद घटना पर समाप्त हो। (उदाहरण 'रणधीर प्रेममोहिनी')। (3) मिश्र—अर्थात जिस के अन्त में कुछ लोगों का तो प्राण वियोग हो और कुछ सुख पावैं।

इन नीवन नाटकों की रचना के मुख्य उद्देश्य ये होते हैं यथा—(1) शृंगार, (2) हास्य, (3) कौतुक, (4) समाज संस्कार, (5) देशवत्सलता। शृंगार और हास्य के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं, जगत में प्रसिद्ध हैं। कौतुकविशिष्ट वह है जिस में लोगों के चित्तविनोदार्थ किसी यन्त्रविशेष द्वारा या और किसी प्रकार अद्भुत घटना दिखाई जाय। समाज संस्कारक नाटकों में देश की कुरीतियों का दिखलाना मुख्य कर्तव्य कर्म्म है। यथा—शिक्षा की उन्नति विवाह सम्बन्धी कुरीतिनिवारण अथवा धर्म्म सम्बन्धी अन्यान्य विषयों में संशोधन इत्यादि। किसी प्राचीन कथा भाग का इस बुद्धि से संगठन कि देश की उस से कुछ उन्नति हो, इसी प्रकार के अन्तर्गत हैं। (इस के उदाहरण सावित्री चरित्र, दुःखिनीबाला, बाल्यविवाहविदूषक, जैसा काम वैसा ही परिणाम, जय नारसिंह की, चक्षुदान इत्यादि।) देशवत्सल नाटकों का उद्देश्य पढ़ने वालों वा देखने वालों के हृदय में स्वदेशानुराग उत्पन्न करना है और ये प्रायः करुण और वीररस के होते हैं। (उदाहरण—भारतजननी, नीलदेवी, भारतदुर्दशा इत्यादि) इन पांच उद्देश्यों को छोड़ कर वीर, सख्य इत्यादि अन्य रसों में भी नाटक बनते हैं।

अथ नाटक रचना

प्राचीन समय में संस्कृत भाषा में महाभारत आदि का कोई प्रख्यात वृत्तान्त अथवा कवि प्रौढ़ोक्ति सम्भूत, किम्वा लोकाचार संघटित, कोई कल्पित आख्यायिका अवलम्बन कर के, नाटक प्रभृति दशविध रूपक और नाटिका प्रभृति अष्टादश प्रकार उपरूपक लिपिबद्ध होकर, सहृदय सभासद लोगों की तात्कालिक रुचि अनुसार, उक्त नाटक नाटिका प्रभृति दृश्यकाव्य किसी राजा की अथवा राजकीय उच्चपदाभिषिक्त लोगों की नाट्यशाला में अभिनीत होते रहे हैं।

प्राचीनकाल के अभिनयादि के सम्बन्ध में तात्कालिक कवि लोगों की और दर्शक मंडली की जिस प्रकार रुचि थी वे लोग तदनुसार ही नाटकादि दृश्यकाव्य रचना कर के सामाजिक लोगों का चित्त विनोदन कर गए हैं किन्तु वर्त्तमान समय में इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगों की रुचि उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है, इस से सम्प्रति प्राचीन मत अवलम्बन करके नाटक आदि दृश्यकाव्य लिखना युक्तिसंगत नहीं बोध होता।

जिस समय में जैसे सहृदय जन्म ग्रहण करैं और देशीय रीति नीति का प्रवाह जिस रूप से चलता रहे, उस समय में उक्त सहृदय गण के अन्तःकरण की वृत्ति और सामाजिक रीति पद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना कर के नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना योग्य है।

नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करै यह आवश्यक नहीं है क्योंकि जो सब प्राचीन रीति वा पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिका होंगी, वह सब अवश्य ग्रहण होंगी। नाट्यकला कौशल दिखलाने को देश, काल और पात्रगण के प्रति विशेष रूप से दृष्टि रखनी उचित है। पूर्व्वकाल में लोकातीत असम्भव कार्य्य की अवतारणा सभ्यगण को जैसी हृदयहारिणी होती थी वर्त्तमान काल में नहीं होती।

अब नाटकादि दृश्यकाव्य में अस्वाभाविक सामग्री परिपोषक काव्य सहृदय सभ्य मंडली को नितान्त अरुचिकर है, इसलिए स्वाभाविकी रचना ही इस काल के सभ्यगण की हृदयग्राहिणी है, इस से अब अलौकिक विषय का आश्रय कर के नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना उचित नहीं है। अब नाटक में कहीं 'आशीः'[1] प्रभृति नाट्यालंकार, कहीं 'प्रकरी'[2], कहीं 'विलोभन'[3], कहीं 'सम्फेट'[4], 'पंचसन्धि',[5] वा ऐसे ही अन्य विषयों

1. आशीः—नाटक में जो आशीर्वाद कहा जाय। यथा—
शाकुन्तल में 'ययातिरेव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता भव'।
2. 'प्रकरी नायकस्य स्यान्नाटकीय फलान्तरम्'।
3. 'गुणाख्यानम् विलोभनम' यथा—वेणीसंहार में 'नाध किम दुक्करं तुए परिकुविदेते'।
4. 'सम्फेटो रोष भाषणम' यथा—वेणीसंहार में 'राजा—अरे मरुतनय! वृद्धस्य राज्ञः पुरतो निन्दितमप्यात्पकर्म श्लाघयसि'।
5. पंचसन्धि यथा—'मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्ष उपसंहृतिः। इति पंचास्य भेदाः स्युः'।

की कोई आवश्यकता नहीं रही। संस्कृत नाटक की भांति हिन्दी नाटक में इन का अनुसंधान करना, वा किसी नाटकांग में इन को यत्न पूर्व्वक रख कर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षण रख कर आधुनिक नाटकादि की शोभा सम्पादन करने से उलटा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है। संस्कृत नाटकादि रचना के निमित्त महामुनि भरत जी जो सब नियम लिख गए हैं उन में जो हिन्दी नाटक रचना के नितान्त उपयोगी हैं और इस काल के सहृदय सामाजिक लोगों की रुचि के अनुयायी हैं वे ही नियम यहां प्रकाशित होते हैं।

अथ प्रतिकृति (Scenes)

किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्व्वत, वन वा उपवन आदि की प्रतिच्छाया दिखलाने को प्रतिकृति कहते हैं। इसी का नामान्तर अन्तःपटी वा चित्रपट वा दृश्य वा स्थान है[1]। यद्यपि महामुनि भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र में, चित्रपट द्वारा प्रासाद, वन, उपवन, किम्वा शैल प्रभृति की प्रतिच्छाया दिखाने का कोई नियम स्पष्ट नहीं लिखा है, किन्तु अनुधावन करने से बोध होता है कि तत्काल में भी अन्तःपटी परिवर्त्तन द्वारा वन, उपवन वा पर्वतादि की प्रतिच्छाया अवश्य दिखलाई जाती थी। ऐसा न होता तो पौर जानपदवर्ग के अपवाद भय से श्रीरामकृत सीता परिहार के समय में उसी रंगस्थल में एक ही बार अयोध्या का राजप्रासाद और फिर उसी समय वाल्मीकि का तपोवन कैसे दिखलाई पड़ता? इस से निश्चय होता है कि प्रतिकृति के परिवर्त्तन द्वारा पूर्व्वकाल में यह सब अवश्य दिखलाया जाता था। ऐसे ही अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक के अभिनय करने के समय सूत्रधार एक ही स्थान में रह कर पर्दा बदले बिना कैसे कभी तपोवन और कभी दुष्यन्त का राजप्रासाद दिखला सकैगा[2] यही सब बात प्रमाण हैं कि उस काल में भी चित्रपट अवश्य होते थे। ये चित्रपट नाटक में अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु हैं और इन के बिना खेल अत्यन्त नीरस होता है।

---

1. वर्त्तमान समय में जहां जहां ये दृश्य बदलते हैं उसी को गर्भांक कहते हैं।
2. मुद्राराक्षस में भी कई उदाहरण इस के प्रत्यक्ष मिलते हैं। मलयकेतु राक्षस से मिलने जाता है यह कह कर उसी अंक में कहते हैं कि आसन पर बैठा राक्षस दिखलाई पड़ा। श्मशान से चन्दनदास को ले कर चांडाल कुछ बढ़ कर पुकारता है कि भीतर कौन है, अमात्य चाणक्य से कहो इत्यादि। अर्थात पूर्व्व के दोनों दृश्य बदल कर राक्षस के और चाणक्य के घर के दृश्य दिखलाई पड़े। यह न हो तब तो नाटक निरे व्यर्थ हो जाते हैं जैसा रास में और महाराष्ट्रों के नाटक में शतरंजी और मशालची को दिखला कर नायिका नायक कहते हैं कि अहा देखो! यह फुलवारी वा नदी कैसी सुन्दर है। इस से जहां पात्र जैसे स्थान का अपने वाक्य में वर्णन करैं वा जिस स्थान की वह कथा हो उस का चित्र पीछे पड़ा रहना बहुत ही आवश्यक है।

जवनिका का बाह्यपटी (Drop Scene)[1]

कार्य अनुरोध से समस्त रंगस्थल को आवरण करने के लिए नाट्यशाला के सम्मुख जो चित्र प्रक्षिप्त रहता है उस का नाम जवनिका वा बाह्यपटी है। जब रंगशाला में चित्रपट परिवर्तन का प्रयोजन होता है उस समय यह जवनिका गिरा दी जाती है। संस्कृत नाटकों में जवनिका पतन का नियम देखने से और भी प्रतीत होता है कि अन्तःपटी परिवर्तन द्वारा गिरि, नदी आदि की प्रतिच्छाया उस काल में भी अवश्य दिखलाई जाती थी।

''ततः प्रविशन्त्यपटीक्षेपेणाप्सरसः''

अर्थात् जवनिका बिना गिराए ही (उर्वशी विरहातुर) अप्सरागण ने रंगस्थल में प्रवेश किया इत्यादि दृष्टान्त ही इस के प्रमाण हैं।

अथ प्रस्तावना

नाटक की कथा आरम्भ होने से पूर्व्व नटी विदूषक किम्वा पारिपार्श्वक सूत्रधार से मिल कर प्रकृत प्रस्ताव विषयक जो कथोपथन करैं, नाटक के इतिवृत्त सूचक उस प्रस्ताव को प्रस्तावना कहते हैं। नाटक की नियमावली में मुनिवर भरताचार्य्य ने पांच प्रकार की प्रस्तावना लिखी है। वह पांचों प्रणाली अति आश्चर्य्यभरित और सुन्दर हैं। उन में से चार हिन्दी नाटक में भी व्यवहार की जा सकती हैं। सूत्रधार के पार्श्वचर बन्धु को पारिपार्श्वक कहते हैं। पारिपार्श्वक की अपेक्षा नट कुछ न्यून होता है। अब पूर्व्व लिखित पांच प्रकार की प्रस्तावना लिखते हैं।

यथा—(1) उद्घात्यक, (2) कथोद्घात, (3) प्रयोगातिशय, (4) प्रवर्त्तक और (5) अवगलित।

अथ उद्घात्यक

सूत्रधार प्रभृति की बात सुन कर अन्य प्रकार अर्थ प्रतिपादनपूर्व्वक जहां पात्र प्रवेश होता है उसे उद्घात्यक प्रस्तावना कहते हैं।

उदाहरण—मुद्राराक्षस।

सूत्रधार—प्यारी, मैंने जोतिःशास्त्र के चौंसठों अंगों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो रसोई तो होने दो। पर आज ग्रहन है यह तो किसी ने तुम्हें धोखा ही दिया है। क्यौंकि—

चन्द्रबिम्बपूरन भए, क्रूर केतु हठ दाप।

---

1. इस पर्दे पर कोई सुन्दर मनोहर नदी, पर्व्वत, नगर इत्यादि का दृश्य वा किसी प्रसिद्ध नाटक के किसी अंक का चित्र दिखलाना अच्छा होता है।

बल सों करि हैं ग्रास कह–

(नेपथ्य में)

हैं! मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रास कर सकता है?

सूत्रधार–जेहि बुध रच्छत आप।

यहां सूत्रधार ने तो ग्रहण का विषय कहा था किन्तु चाणक्य ने चन्द्र शब्द का अर्थ चन्द्रगुप्त प्रगट कर के प्रवेश करना चाहा, इसी से उद्घात्यक प्रस्तावना हुई।

अथ कथोद्घात

जहां सूत्रधार की बात सुन कर उस के साथ वाक्य के अर्थ का मर्म्म ग्रहण कर के पात्र प्रविष्ट होते हैं उसे कथोद्घात कहते हैं।

यथा रत्नावली में सूत्रधार के इस कहने पर कि ईश्वरेच्छा से द्वीपान्तर किम्वा समुद्र के मध्य की वस्तु भी सहज में मिल जाती है; यौगन्धरायण का आना।

यहां सूत्रधार के वाक्य का मर्म यह था कि जिस नाटक में द्वीपान्तर की नायिका आती है, खेला जायगा इसी को समझ कर अन्य नट मन्त्री बन कर आया।

अथ प्रयोगातिशय

एक प्रयोग करते करते घुणाक्षरन्याय से दूसरे ही प्रकार का प्रयोग कौशल में प्रयुक्त और उसी प्रयोग का आश्रय कर के पात्र प्रवेश करैं तो उस को प्रयोगातिशय प्रस्तावना कहते हैं।

जैसे कुन्दमाला नामक नाटक में सूत्रधार ने नृत्य प्रयोग के निमित्त अपनी भार्य्या को आह्वान करने के प्रयोग विशेष द्वारा सीता और लक्ष्मण का प्रवेश सूचित किया।[1] इस प्रकार से नाटक की प्रस्तावना शेष होने पर पात्र प्रवेश और नाटकीय इतिवृत्त की सूचना होगी।

अथ चर्चरिका

जब जब एक एक विषय समाप्त होगा जवनिका पात कर के पात्रगण अन्य विषय दिखलाने को प्रस्तुत होंगे तब तब पटाक्षेप के साथ ही नेपथ्य में चर्चरिका आवश्यक है, क्योंकि बिना उस के अभिनय शुष्क हो जाता है। जहां बहुत स्वर मिल कर कोई बाजा बजे या गान हो उस को चर्चरिका कहते हैं। इस में नाटक की कथा

---

1. जान पड़ता है कि यहां भूल से प्रवर्त्तक और अवगलित की कारिका छूट गयी है। जहाँ सूत्रधार किसी गुप्त बात का वर्णन करता है और उसी के आश्रय से किसी पात्र का प्रवेश होता है, उसे प्रवर्त्तक कहते हैं और जहां एक प्रयोग में किसी प्रकार के सादृश्य आदि की उद्भावना के द्वारा किसी पात्र के प्रवेश की सूचना दी जाय उसे अवगलित कहते हैं।

के अनुरूप गीतों का वा रागों का बजना योग्य है। जैसे सत्यहरिश्चन्द्र में प्रथम अंक की समाप्ति में जो चर्चरिका बजै वह भैरवी आदि सबेरे के राग की और तीसरे अंक की समाप्ति पर जो बजै वह रात के राग की होनी चाहिए।

कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती वृत्ति

अथ कैशिकी वृत्ति

जो वृत्ति अति मनोहर, स्त्री, जनोचित भूषण से भूषित और रमणी बाहुल्य नृत्य[1] गीतादि परिपूर्ण और भोगादि विविध विलास युक्त होती है उस का नाम कैशिकी वृत्ति है। यह वृत्ति शृंगाररस प्रधान नाटकों की उपयोगिनी है।

अथ सात्वती वृत्ति

जिस वृत्ति द्वारा शौर्य, दान, दया और दाक्षिण्य प्रभृति से विरोचिता विविध गुणान्विता आनन्द विशेषोद्भाविनी सामान्य विलास-युक्ता, विशोका और उत्साहवर्द्धिनी वाग्भंगी नायक कर्तृक प्रयुक्त होती है उस का नाम सात्वती वृत्ति है। वीररस प्रधान नाटक में इस की आवश्यकता होती है।

अथ आरभटी

माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात, प्रतिघात और बन्धनादि विविध

---

1. हिन्दुस्तान से नृत्यविद्या उठ गई। यह विद्या आगे इस देश में ऐसी प्रचलित थी कि सब अच्छे लोग इस को सीखते थे। इस के शास्त्र अब तक कहीं कहीं लब्ध होते हैं और उन से इस विद्या का महत्त्व प्रत्यक्ष प्रकट होता है। संगीतशास्त्र का यह एक अंग है। वाद्य, नृत्य और गाना यह तीनों वस्तु जिस में हो उस की संगीत संज्ञा है। इस काल में हिन्दुस्तान में संगीतशास्त्र जानने वालों का कुछ आदर नहीं और लोग इस विद्या से लज्जा करते हैं परन्तु यही इस देश के दुर्दिन का उदाहरण है। अब भी भारतवर्ष के जिस प्रदेश में यह विद्या बच गई है वहां बहुत अच्छी है। जैसा कि 1871 ई. में श्री महाराज व्यंकटगिरि के संग एक नर्त्तकी शारदा नाम की आई थी। निस्सन्देह वह इस विद्या में बहुत प्रवीण थी। नृत्त और नृत्य दोनों में अपूर्व्व काम करती थी। इस देश की नर्त्तकी तो केवल मुखावलोकन ही के योग्य होती हैं, गुण तो उन के पास से भी नहीं निकलता परन्तु वह "यथानाम तथागुणाः" को सत्य करती थी। नृत्य और नृत्त में यह भेद है कि "भवेद्भावाश्रयंनृत्तं-नृत्यंताललयाश्रयम्" जिस में भाव मुख्य हो वह नृत्त और जिस में लय मुख्य हो वह नृत्य कहलाता है। भाव नेत्र, भौंह, मुख, हाथ और स्वर से भी प्रकट होते हैं। लय भी हाथ, पैर, गले और भौंह से होती है। नृत्य के शास्त्रों में 108 भेद लिखे हैं और लाग डांट, उड़प, तिरप, हस्तक भेद इत्यादि इस के अंग हैं, जिस में केवल घुंघरू बजाने के 7 मुख्य भेद हैं। लास्य और तांडव इस के दो मुख्य अंग हैं और यह नृत्त एक से लेकर बहुत से मनुष्यों से भी होता है। पुरुष और स्त्री दोनों इस के अधिकारी हैं परन्तु नृत्तभेद से किसी में केवल पुरुष, किसी में केवल स्त्री और किसी में दोनों होते हैं। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि यह विद्यासम्बन्धी संगीतशास्त्र हम लोगों में फैले और यह प्रचलित मूर्खतामय लज्जा का कारण विषयरूपी संगीत हमारे शत्रुओं को मिलै।

रौद्रोचितकार्यजड़ित वृत्ति का नाम आरभटी है। रौद्र रस वर्णन के स्थल में इस वृत्ति पर दृष्टि रखनी चाहिए।

अथ भारती

साधुभाषाबाहुल्य वृत्ति का नाम भारती वृत्ति है। बीभत्स रस वर्णन स्थल में यह व्यवहृत होती है। नाटककर्त्ता ग्रन्थगुम्फन करने के समय यदि आद्यरस प्रधान नाटक लिखने की इच्छा करेंगे, तो उन को कैशिकी वृत्ति ही में समस्त वर्णन करना योग्य है। आद्यरस वर्णन करने के समय ताल ठोकना, मुगूदर घुमाना, वा असिक्षेप प्रभृति विरोचित विषयक कोई भी वर्णन नहीं करना चाहिए। सात्वती प्रभृति वृत्तियों के पक्ष में भी ठीक यही चाल है।

अथ उपक्षेप

अभिनय कार्य के प्रथम संक्षेप में समस्त नाटकीय विवरण कथन का नाम उपक्षेप है।

पूर्व्वकाल में मुद्रायन्त्र[1] की सृष्टि नहीं हुई थी, इस हेतु रंगस्थल में नट नटी सूत्रधार अथवा पारिपार्श्वक कर्तृक उपक्षेप का उल्लेख होता है। आजकल मुद्रायन्त्र के प्रभाव से इस की कुछ आवश्यकता नहीं रही प्रोग्राम बांट देने ही से वह काम सिद्ध हो जायगा।

---

1. यद्यपि छापे की विद्या बहुत दिनों से भारतवर्ष में प्रचलित है। इस में कुछ सन्देह नहीं, किन्तु आजकल जैसी इस की उन्नति है और इस से पत्र और पुस्तक आदि छप छप के प्रकाशित होते हैं, यह भी कभी यहां था कि नहीं सो कुछ निश्चय नहीं है। श्रीकृष्ण के समय जब राजा शाल्व ने द्वारवतीपुरी को आक्रमण किया, उस समय वहां यह बन्दोबस्त किया था कि "नचा मुद्रो भिनिर्याति नैवान्तः प्रविशेदपि" महाभारत वनपर्व ; अर्थात् बिना राजकीय नाम की मोहर छाप के कोई नगर से निकल नहीं सकै और कोई भीतर भी न आवै। यहां स्पष्ट ही देख लीजिए कि छापे की मुद्रा से, एक जगह के अक्षर दूसरी जगह उतारे जाते थे। मुद्राराक्षस नाटक, जो राजा चन्द्रगुप्त के समसामयिक वा कुछ उत्तरवर्ती काल में बना है, यहां भी राक्षस नामांकित मुद्रा प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार यद्यपि मुद्रण विधि का मूल तो आर्य्यशास्त्रों में प्रायः मिलता है, किन्तु इस की उन्नति कर के देशान्तरीय लोगों ने जैसा इस से लाभ उठाया है वैसा भारतीय आर्य्य लोगों ने कुछ भी नहीं किया, यह सभी कोई कह सकते हैं; अतएव यह मुद्रण विद्या देशान्तर ही से चली और अनार्य्य लोग ही इस के आद्य आचार्य्य हुए, यह बात हम को भी खुले मुंह कहनी पड़ती है।

छापा यन्त्र बनाने के निमित्त अनेक लोग ही सम्मान प्राप्त होने के योग्य हैं, किन्तु वास्तव में इंग्लैंड देश के हार्लेमू नगर में यह यन्त्र पहले ही पहले निर्मित हुआ, यह प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। उक्त नगर के शासन कर्त्ता लौरेंस कोम्भर साहिब ने 1440 शक (चौदह सौ चालीस) में इस का निर्माण किया और आद्य प्रादुर्भाव कर्त्ता के निमित्त, सब से प्रथम वही सम्माननीय हुआ। वह एक दिन अपने समीपस्थ किसी बगीचे में जा के एक वृक्ष की गीली त्वचा काट के, उस से अपने नाम के अक्षर बना बना एक क्रीड़ा सी कर रहा था। वे ही अक्षर काट काट के जब उस ने एक किसी कागज के ऊपर →

पूर्व्वकाल में नाटक मात्र में उपक्षेप उपन्यस्त होता था, यह नियम नहीं था क्यौंकि सब नाटकों में उपक्षेप का उल्लेख दिखाई नहीं पड़ता। 'वेणीसंहार' में इस का उल्लेख है किन्तु यह भीमकृत उपन्यस्त हुआ है।

यथा भीम–

''लाक्षागृहानलविषान्नसभा प्रवेशैः प्राणेषुवित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य आकृष्य पांडववधूपरिधानकेशान् सुस्था भवन्ति मयि जीवतिधार्त्तराष्ट्राः?''

अथ प्ररोचना

जिस के अनुष्ठान द्वारा अभिनयदर्शन में सामाजिक लोगों की प्रवृत्ति जन्मती है उस का नाम प्ररोचना है। यह सूत्रधार, नट, पारिपार्श्वक या नटी के द्वारा विगीत होती है।

अथ नेपथ्य

रंगस्थल के पश्चात् भाग में जो एक गुप्त स्थान रहता है उस का नाम नेपथ्य है। अलंकारयिता इसी स्थान में पात्रों के वेश, भूषणांदि से सजाते हैं। जब रंगभूमि में आकाशवाणी दैवीवाणी अथवा और कोई मानुषीवाणी का प्रयोजन होता है तो वह नेपथ्य ही में से गाई या कही जाती है।

अथ उद्देश्यबीज

गुम्फित आख्यायिका के समग्र मर्म्म का नाम उद्देश्यबीज है। कवि जो इस का साधन न कर सकैगा तो उस का ग्रन्थ नाटक में परिगणित न होगा।

→ रख दिए थे, उसी समय एक वायु का झोंका आया और वे अक्षर जो उस वृक्ष के रस से गीले हो रहे थे, उनकी समस्त आकृति वायुवेग से हठात् उस कागज पर उखड़ आयी। साहिब ने जब उक्त घटना देखी तो पीछे अपनी विवेचना द्वारा वह और-और भी अनेक प्रकार की परीक्षा करने लगा, फिर उस ने काष्ठ के अक्षर बना के एक प्रकार सघन और द्रव वस्तु में उन को डुबा के छापा किया, तब और भी कुछ उत्तम छपा हुआ मालूम दिया। शेष में उस ने शीशा एवं शीशा और रांगा मिले हुए धातु से अक्षर बना के, यन्त्र के निमित्त एक स्वतन्त्र स्थान निर्माण किया। इस प्रकार उस काल से ले के अद्य पर्यन्त इस उत्तम मुद्रणविद्या की वृद्धि होती ही चली आती है। उक्त लौरेंस साहिब के पास एक उस का नौकर 'योहनूफस्त्' नामक रहता था। उस ने गुप्त भाव से अपने स्वामी की विद्या चुरायी और वहां से आ के मेंडस नामक नगर में, उक्त मुद्रण विद्या का प्रकाश किया। अतएव वह उस देश में उस नूतन विद्या द्वारा विद्वान और मायावी के नाम से स्वयं विख्यात हुआ।

भारतवर्षीय उन्नति के समय और उस के बाद जब यूनान और रोम देशीय लोगों की उन्नति का समय आया तो, वहां भी केवल जो धनी और बड़े आदमी होते थे, अथवा अधिक परिश्रम करते थे, वही हस्तलिखित पुस्तकों द्वारा विद्या उपार्जन कर सकते थे, किन्तु आज छापे द्वारा विविध विद्याविभूषित पुस्तकें, सर्वसाधारण को सहज ही में प्राप्त हो सकती हैं, इस से मनुष्य समाज में एक नूतन युग सा आविर्भूत हुआ दिखाई देता है, इस में कुछ सन्देह नहीं। (ध.दि.)

अथ वस्तु

नाटकीय इतिहास अथवा कोई विवरण विशेष का नाम वस्तु है। वस्तु दो प्रकार की हैं यथा—आधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु।

अथ आधिकारिक वस्तु

जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उस को अधिकारी कहते हैं। अधिकारी का आश्रय कर के जो वस्तु विरोचित होती है उस का नाम आधिकारिक वस्तु है। जैसा—उत्तरचरित।

अथ प्रासंगिक वस्तु

इस आधिकारिक इतिवृत्त का रस पुष्ट करने के लिए प्रसंगक्रम में जो वृत्त लिखा होता है, उस का नाम प्रासंगिक वस्तु है। जैसा बालरामायण में सुग्रीव, विभीषणादि का चरित्र।

अथ मुख्य उद्देश्य

प्रसंग क्रम से नाटकों में कितनी भी शाखा, प्रशाखा विस्तृत हों, और गर्भांक के द्वारा आख्यायिका के अतिरिक्त और कोई विषय वर्णित हो किन्तु मूल प्रस्ताव निष्कम्प रहै तो उस की रसपुष्टि करने को मुख्य उद्देश्य कहा जाता है।

अथ अभिनय

कालकृत अवस्था विशेष के अनुकरण का नाम अभिनय है। अवस्था यथा—रामाभिषेक, सीता निर्वासन, द्रौपदी का केशभाराकर्षण इत्यादि।

अथ पात्र

जो लोग राम, युधिष्ठिरादि का रूप धारण कर के, कथित अवस्था का अनुकरण करते हैं, उन लोगों को पात्र कहते हैं। नाटक के जो सब अंश स्त्रीगणकर्तृक प्रदर्शित होते हैं, उन में भाव, हाव, हेला प्रभृति यौवन सम्भूत अष्टाविंशति प्रकार के अलंकारों का उन लोगों को अभ्यास नहीं करना पड़ता किन्तु पुरुषों को स्त्री वेश धारण के समय अभ्यास द्वारा वह भाव दिखलाना पड़ता है।

अथ अभिनय प्रकार

अभिनय चार प्रकार का होता है। यथा—आंगिकाभिनय, वाचिकाभिनय, आहार्याभिनय और सात्विकाभिनय।

अथ आंगिकाभिनय

केवल अंगभंगी द्वारा जो अभिनयकार्य्य साधन करते हैं, उस का नाम आंगिकाभिनय है। जैसे सती नाटक में नन्दी। सती ने शिव की निन्दा श्रवण कर के देह त्याग किया। यह सुन कर महावीर नन्दी ने जब त्रिशूल हस्त में लेकर के रंगस्थल में प्रवेश किया तब केवल आंगिकभाव द्वारा क्रोध दिखलाना चाहिए।

अथ वाचिकाभिनय

केवल वाक्यविन्यास द्वारा जो अभिनय कार्य्य समाहित होता है, उस का नाम वाचिकाभिनय है। यथा–तोतले आदि का वेश।

अथ आहार्याभिनय

वेष, भूषणादि निष्पाद्य का नाम आहार्याभिनय है। जैसा सत्यहरिश्चन्द्र में चोबदार वा मुसाहिब लोग जब राजा के साथ रंगस्थल में प्रवेश करते हैं। तब इन को कुछ बात नहीं करनी पड़ती। केवल आहार्याभिनय के द्वारा आत्मकार्य निष्पन्न करना होता है।

अथ सात्विकाभिनय

स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, कम्प और अश्रु प्रभृति द्वारा अवस्थानुकरण का नाम सात्विकाभिनय है। जैसा सती का मृत देह देख कर नन्दी का व्यवहार और अश्रुपात इत्यादि।

अथ बीभत्साभिनय

एक पात्र द्वारा जब कथित अभिनय में से दो वा तीन अथवा सब प्रदर्शित होते हैं तो उस को बीभत्साभिनय कहते हैं।

अथ अंगांगी भेद

नाटक में जो प्रधान नायक होता है उस को समस्त इतिवृत्त का अंगी कहते हैं। जैसे 'सत्यहरिश्चन्द्र' में हरिश्चन्द्र।

अथ अंग

अंगी के कार्यसाधक पात्रगण अंग कहलाते हैं। जैसे वीरचरित में सुग्रीव, विभीषण, अंगद इत्यादि।

अथ वैषम्यपात दोष

नाटक में अंगी को अवनत कर के अंग का प्राधान्य करने से वैषम्यपात नामक दोष होता है।

R
021
सिंह-भ

अथ अंक लक्षण

नाटक के एक एक विभाग को एक एक अंक कहते हैं। अंक में वर्णित नायक, नायिकादि पात्र का चरित्र और आचार, व्यवहारादि दिखलाया जाता है। अनावश्यक कार्य का उल्लेख नहीं रहता। अंक में अधिक पद्य का समावेश दूषणावह होता है।

अथ अंकावयव

नाटक का अवयव बृहत् होने से, एक रात्रि में अभिनय कार्य समाहित नहीं होगा। इस हेतु दश अंक से अधिक नाटक निर्माण विधि और युक्ति के विरुद्ध है। प्रथम अंक का अवयव जितना होगा द्वितीयांक का अवयव तदपेक्षा न्यून होना चाहिए। ऐसे ही क्रम क्रम से अंक का अवयव छोटा कर के ग्रन्थ समाप्त करना चाहिए।

अथ विरोधक

नाटक में जिन विषयों का वर्णन निषिद्ध है, उन का नाम विरोधक है। उदाहरण—दूरास्वान, अति विस्तृत युद्ध, राज्य देशादि का विप्लव, प्रबल वात्या, दन्तच्छेद, नखक्षत, अश्वादि बृहत्काय जन्तु का अति वेग से गमन, नौका परिचालन और नदी में सन्तरण प्रभृति अघटनीय विषय।

अथ नायक निर्वाचन

विनय, शीलता, वदान्यता, दक्षता, क्षिप्रता, शौर्य, प्रियभाषिता, लोकरंजकता, वाग्मिता—प्रभृति गुणसमूह सम्पन्न, सद्धशसम्भूत युवा को नायक होने का अधिकार है। नायक की भांति नायिका में भी यथासम्भव वही गुण रहना आवश्यक है। प्रहसन आदि रूपकविशेष के नायकादि अन्य प्रकार के होते हैं।

अथ परिच्छद विवेक

नाटकान्तर्गत कौन पात्र कैसा परिच्छद पहिरैं—यह ग्रन्थकार कर्तृक उल्लिखित नहीं होता, न किसी प्राचीन नाटककार ने इस का उल्लेख किया है। नाटक में किसी किसी स्थान में उत्तम परिच्छद का परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। जैसा सत्यहरिश्चन्द्र में "दरिद्र वेष से हरिश्चन्द्र का प्रवेश।"

ऐसी अवस्था भिन्न स्पष्ट रूप से परिच्छद का वर्णन किसी स्थान में उल्लिखित नहीं रहता, इस से अभिनय में वेश रचयिता पात्रगण का स्वभाव और अवस्था विचार करके वेश रचना कर दें। नेपथ्य कार्य सुंदर रूप से निर्वाह के हेतु एक रसज्ञ वेष विधायक की आवश्यकता रहती है।

अथ देशकाल प्रवाह

अति दीर्घकाल सम्पाद्य घटना सकल नाटक में अल्पकाल के मध्य में वर्णन करना यद्यपि दूषणावह नहीं है तथापि नाटक में देशगत और कालगत वैलक्षण्य वर्णन करना अतिशय अनुचित है।

अथ विष्कम्भक

नाटक में विषकम्भक रखने का तात्पर्य यह है कि नाटकीय वस्तुरचना में जो जो सब अंश अत्यन्त नीरस और आडम्बरात्मक हैं उन के सन्निवेशित होने से सामाजिक लोगों को विरक्ति और अरुचि हो जाती है। नाटक प्रणेतृगण इन घटनाओं को पात्र विशेष के मुख से संक्षेप में विनिर्गत कराते हैं।

अथ नाटक रचना प्रणाली

नाटक लिखना आरम्भ करके, जो लोग उद्देश्यवस्तु परम्परा से चमत्कारजनक और अति मधुर वस्तु निर्व्वाचन कर के भी स्वाभाविक साम्रगी परिपोष के प्रति दृष्टिपात नहीं करते उन का नाटक नाटकादि दृश्य काव्य लिखने का प्रयास व्यर्थ है क्यौंकि नाटक आख्यायिका की भांति श्रव्य काव्य नहीं है।

ग्रन्थकर्त्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रगण की बातचीत रचना करैं कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो वैसी ही उस की बात भी विरचित हो। नाटक में वाचाल पात्र की मितभाषिता, मितभाषी की वाचालता, मूर्ख की वाक्पटुता और पंडित का मौनीभाव विडम्बनामात्र है। पात्र की बात सुन कर उस के स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है। नाटक में वाक्प्रपंच एक प्रधान दोष है। रसविशेष द्वारा दर्शकों के अन्तःकरण को उन्नत अथवा एकबारगी शोकावनत करने को समधिक वागाडम्बर करने से कभी उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। नाटक में वाचालता की अपेक्षा मितभाषिता के साथ वाग्मिता का ही सम्यक् आदर होता है। नाटक में प्रपंच रूप से किसी भाव को व्यक्त करने का नाम गौण उपाय है और कौशलविशेष द्वारा थोड़ी बात में गुरुतर भाव व्यक्त करने का नाम मुख्योपाय है। थोड़ी सी बात में अधिक भाव की अवतारणा ही नाटक जीवन का महौषध है। जैसा उत्तररामचरित में महात्मा जनकजी आ कर पूछते हैं–'क्वास्ते प्रजावत्सलो रामः'? यहां प्रजावत्सल शब्द से महाराज जनक के हृदय के कितने विकार बोध होते हैं केवल सहृदय ही इस का अनुभव करैंगे। चित्रकार्य्य के निमित्त जिन-जिन उपकरणों का प्रयोजन और स्थान विशेष की उच्चता नीचता दिखलाने को जैसी आवश्यकता होती है वैसे ही वही उपकरण और उच्चता नीचता प्रदानपूर्वक अति सुन्दर रूप से मनुष्य के बाह्य भाव और कार्यप्रणाली के चित्रण द्वारा सहज भाव से उन का दिखलाना प्रशंसा का विषय है।

जो इस भांति दूसरे का अंतरभाव व्यक्त करने को समर्थ हैं, उन्हीं को नाटककार सम्बोधन दिया जा सकता है और उन्हीं के प्रणीत ग्रन्थ नाटक में परिगणित होते हैं।

नाटक में अन्तर का भाव कैसे चित्रित किया जाता है इस का एक अति आश्चर्य दृष्टान्त अभिज्ञान शाकुन्तल[1] से उद्धृत किया गया।

---

1. इस प्रसिद्ध नाटक के मंगलाचरण का श्लोक 'यास्रष्टु सृष्टिराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री। ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्यविश्वम्। या 'माहुस्सर्ववीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः प्रत्यक्षाभिः प्रसन्न स्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः'। बहुत प्रसद्धि है और सव टीकाकारों ने इस के अनेक अर्थ किये हैं तथापि मुझे ऐसा निश्चित होता है कि कालिदास ने क्षिति इत्यादि शब्दों में श्रीशिवजी का विराट स्वरूप वर्णन नहीं किया है क्यौंकि उन मूर्त्तियों का 'प्रत्यक्षाभिः' यह विशेषण दिया है और लोग ''यास्रष्टु; सृष्टिराद्या'' इस का अर्थ आकाश करते हैं तो आकाश क्या अक्षि का विषय है? इस से मेरे ध्यान में आता है कि शिवजी की जो प्रत्यक्ष परम सुन्दरी मूर्त्ति है यह उसी का वर्णन है।

या स्रष्टुः सृष्टिराद्या' अर्थात् जल 'शीर्षे च मंदाकिनी जिस मूर्त्ति में जल सव के ऊपर है।

'वहति विधिहुतं या हविः' अर्थात् अग्नि, 'वन्दे सूर्य्यशशाङ्कवह्निनयनं' जिस मूर्त्ति का एक मुख्य अंग अर्थात् नेत्र अग्नि है वा मुख वर्णन किया 'मुखो वै अग्निः मुखादग्निः।'

'या च होत्री' अर्थात् यजमानस्वरूपा जो मूर्ति कर्म्ममार्ग स्थापन करनेवाली है 'असिवाद्यो महाकर्म्मा स्थापन करनेवाली है 'असिवाद्यो महाकर्म्मा तपस्वी भूतभावनः' 'सर्व्वकर्म्मा', 'सर्व्वयज्ञकृत' इत्यादि नाम प्रसिद्ध हैं, 'तं यज्ञं बर्हिषि प्रौरं पुरुषं' इत्यादि की दो-तीन ऋचा में यज्ञोत्पत्ति कही है।

'ये द्वे कालं विधत्तः' अर्थात् चन्द्रमा और सूर्य्य 'सूर्य्यशशाङ्कवह्निनयनं' जिस की दो नेत्र स्वरूप मूर्तियाँ काल का विधान करती हैं और शिव के निमिष में प्रलयादिक होते हैं यह भी पुराण-प्रसिद्धि वा सूर्य्य नेत्र चन्द्रमा सिर पर मन स्वरूप 'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोसूर्य्यो अज्ञायत।'

'श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वं' अर्थात् वाणिस्वरूपी मूर्त्ति, जिस की वाणी वेद स्वरूप विश्व को अपने नियम में व्याप्त कर रहे हैं क्यौंकि शिवजी वाणी के अधिदेवता 'वागीश', 'अहंकलानां ऋषीभोपि', 'विद्याकामस्तु गिरिशं', 'वाणी व्याकरणं यस्य' इत्यादि पुराण में प्रसिद्ध हैं वा वेदों का विषय होकर जो मूर्त्ति एक देशवच्छिन्ना होकर भी विश्व को व्याप्त करके स्थित है, 'स भूमिं सर्व्वतोवृत्वा अत्यतिष्ठदृशांगुलम्' वा नाभि अंग का वर्णन किया है, 'यस्यं नाभिवै आकाशः' 'नाभ्या आसीदतिरक्षं' इत्यादि।

'यामाहुः सर्व्वबीजप्रकृतिरिति' अर्थात् पृथ्वी को आपने भस्म स्वरूप में सर्व्वांग में धारण किया है, 'भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गः' भस्मोद्धूलित' विग्रहः' इत्यादि वा पृथ्वी, गंगा, शिर, नेत्र, मुख, नाभि इत्यादि अंगों को वर्णन कर के चरण का वर्णन करते हैं कि जिस के चरण पृथ्वी स्वरूप है 'चरणे धरा' 'पद्भ्याम्भूमिः' इत्यादि।

'यया प्राणिनः प्राणवंतः' अर्थात् आत्मा, तो इस में मूर्त्ति ही में आत्मा का वर्णन इस हेतु किया जिस में भगवान के देह में आत्मा अलग है यह सन्देह न हो क्यौंकि 'यथा 'सैंधवघनो' इत्यादि परमात्मा का स्वरूप है तो सब मूर्त्तियों का वर्णन करके 'श्रोत्राद्यायुश्च प्राणश्च' वा आप प्राणायामस्थ हैं यह ध्यान किया है।

तो इन आठों मूर्त्तियों से, विशिष्ट प्रत्यक्ष शिवजी का वर्णन कालिदास ने किया, कुछ संसार स्वरूप भगवान का वर्णन नहीं है क्यौंकि अन्त में भी 'नीलल.ाहतः' विशेषण दिया है और यों मानने से क्रम से शिर में गंगा फिर मुख और उन के यज्ञादिक क· और चन्द्रचूड़ तथा च नेत्र फिर वाणी का वा नाभि का और भस्मधारण का तथा चरण का और फिर मुख स्वस्थ आत्मा का क्रमशः वर्णन हो गया तो मेरी बुद्धि में आना है कि कालिदास का अभिप्राय भी यही होगा क्यौंकि 'प्रत्यक्षाभिः' का दोष और नाटक के उपसंहार में सगुण शिव नीललोहित कर के वर्णन इत्यादि का इस अर्थ में विरोध नहीं आता।

शकुन्तला श्वशुरालय में गमन करैगी इस पर भगवान कण्व जिस भांति खेदप्रकाश करते हैं वह यह है–

आहा आज शकुन्तला पतिगृह में जायगी यह सोच कर हमारा हृदय कैसा उत्कंठित होता है, अन्तर में जो वाष्पभर कर उच्छ्वास हुआ है उस से वाग्जड़ता हो गई है और दृष्टिशक्ति चिन्ता से जड़ीभूत हो रही है। हाय! हम वनवासी तपस्वी हैं सो जब हमारे हृदय में ऐसा वक्तव्य होता है तो कन्या के वियोग के अभिनव दुःख में बिचारे गृहस्थों की क्या दशा होती होगी।

सहृदय पाठक! आप विवेचना कर के देखिए कि इस स्थान में कविश्रेष्ठ कालिदास कुलपति कण्व ऋषि का रूप धारण कर के ठीक उन का मानसिक भाव व्यक्त कर सके हैं कि नहीं?

इस के बदले कालिदास यदि कण्व ऋषि का छाती पीटकर रोना वर्णन करते तो उन के ऋषि जनोचित धैर्य्य की क्या दुर्दशा होती अथवा कण्व का शकुन्तला के जाने पर शोक ही न वर्णन करते तो कण्व का स्वभाव मनुष्य स्वभाव से कितना दूर जा पड़ता। इसी हेतु कविकुलमुकुटमाणिक्य भगवान कालिदास ने ऋषि जनोचित भाव ही में कण्व का शोक वर्णन किया।

नाटक रचना में शैथिल्य दोष कभी न होना चाहिए। नायक, नायिका द्वारा किसी कार्य्य विशेष की अवतारणा कर के अपरिसमाप्त रखना अथवा अन्य व्यापार की अवतारणा कर के उस का मूलच्छेद करना नाटक रचना का उद्देश्य नहीं है। जिस नाटक की उत्तरोत्तर कार्य्यप्रणाली संदर्शन कर के दर्शक लोग पूर्व्वकार्य्य विस्मृत होते जाते हैं वह नाटक कभी प्रशंसा भाजन नहीं हो सकता। जिन लोगों ने केवल उत्तम उत्तम वस्तु चुन कर एकत्र किया है उन की गुम्फित वस्तु की अपेक्षा जो उत्कृष्ट मध्यम और अधम तीनों का यथा स्थान निर्वाचन कर के प्रकृति की भाव भंगी उत्तम रूप से चित्रित करने में समर्थ है वहीं काव्यामोदी रसज्ञ मंडली को अपूर्व्व आनन्द वितरण कर सकते हैं। कालिदास, भवभूति और शेक्सपियर प्रभृति नाटककार इसी हेतु पृथ्वी में अमर हो रहे हैं। कोई सामग्री संग्रह नहीं है, अथ च नाटक लिखना होगा यह अलीक संकल्प कर के जो लोग नाटक लिखने को लेखनी धारण करते हैं उन का परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। यदि किसी को नाटक लिखने की वासना हो तो नाटक किस को कहते हैं इस का तात्पर्य हृदयंगम कर के, नाटक रचयिता को सूक्ष्मरूप से ओतप्रोत भाव में मनुष्य प्रकृति की आलोचना करनी चाहिए। जो अनालोचित मानव प्रकृति है उन के द्वारा मानवजाति के अन्तर्भाव सब विशुद्ध रूप से चित्रित होंगे, यह कभी सम्भव नहीं है। इसी कारण से कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल और शेक्सपियर के मैकबेथ और हैमलेट इतने विख्यात हो के पृथ्वी के सर्व स्थान में एकादर से परिभ्रमण करते हैं। मानव प्रकृति की समालोचना करनी हो तो नाना देशों में भ्रमण करके नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करैं; तथा नाना प्रकार के समाज में गमन कर के विविध लोगों का आलाप सुनैं तथा नाना प्रकार

के ग्रन्थ अध्ययन करैं; वरंच समय में अश्वरक्षक, गोरक्षक, दास, दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करैं। यह न करने से मानवप्रकृति समालोचित नहीं होती। मनुष्यों की मानसिक वृत्ति परस्पर जिस प्रकार अदृश्य है उन लोगों के हृदयस्थभाव भी उसी रूप से अप्रत्यक्ष हैं। केवल बुद्धि वृत्ति की परिचालना द्वारा तथा जगत के कतिपय बाह्य कार्य्यों पर सूक्ष्म दृष्टि रख कर उस के अनुशीलन में प्रवृत्त होना होता है। और किसी उपकरण द्वारा नाटक लिखना झख मारना है।

राजनीति, धर्म्मनीति, आन्वीक्षिकी, दंडनीति, सन्धि, विग्रह प्रभृति राजगुण, मन्त्रणा चातुरी, आद्य, करुणा प्रभृति रस, विभाव, अनुभाव, व्यभिचार भाव तथा सात्विक भाव तथा व्यय, वृद्धि, स्थान प्रभृति त्रिवर्ग की समालोचना में सम्यक् रूप समर्थ हों तब नाटक लिखने को लेखनी धारण करैं।

स्वदेशीय तथा भिन्न देशीय सामाजिक रीति, व्यावहारिक रीति पद्धति का निदान फल और परिणाम इन तीनों का विशिष्ट अनुसंधान, नाटक रचना का उत्कृष्ट उपाय है।

वेश और वाणी दोनों ही पात्र के योग्यतानुसार होनी चाहिए। यदि भृत्यपात्र प्रवेश करै तो जैसे बहुमूल्य परिच्छद उस के हेतु अस्वाभाविक हैं वैसे ही पंडितों के सम्भाषण की भांति विशेष संस्कृत गर्भित भाषा भी उस के लिए अस्वाभाविकी है। महामुनि भरताचार्य्य पात्र स्वभावानुकूल भाषण रखने का वर्ण अत्यन्त सविस्तर कर गए हैं, यद्यपि उन के नान्दी रचनादि विषय के नियम हिन्दी में प्रयोजनीय नहीं किन्तु पात्र स्वभाव विषयक नियम तो सर्व्वथा शिरोधार्य हैं।

नाटक पठन वा दर्शन में स्वभावरक्षा मात्र एक उपाय है जो पाठकों और दर्शकों के मनः समुद्र को भाव तरंगों से आस्फालित कर देता है।

अथ विदूषक

नाटक दर्शकगण विदूषक के नाम से अपरिचित नहीं है किन्तु विदूषक का प्रवेश किस स्थान में योग्य है इस का विचार लोग नहीं करते। बहुत से नाटकलेखकों का सिद्धान्त है कि अथ इति की भांति विदूषक की नाटक में सहज आवश्यकता है किन्तु यह एक भ्रम मात्र है। वीर वा करुण रस प्रधान नाटक में विदूषक का प्रयोजन नहीं रहता। शृंगार की पुष्टि के हेतु विदूषक का प्रयोजन होता है, सो भी सब स्थलों में नहीं, क्यौंकि किसी-किसी अवसर पर विदूषक के बदले विट, चेट, पीठमर्द, नर्मसखा प्रभृति का प्रवेश विशेष स्वाभाविक होता है। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार कुसुमवसंतादिक नामधारी, नाटा, मोटा, वामन, कुबड़ा, टेढ़े अंग का वा और किसी विचित्र आकृति का, किम्वा हकला, तोतला, भोजनप्रिय, मूर्ख, असंगत, किन्तु हास्य रस के अविरुद्ध बात कहने वाला विदूषक होना चाहिए और उस का परिच्छद भी ऐसा हो जो हास्य का उद्दीपक हो।

संयोग शृंगार वर्णन में इस की स्थिति विशेष स्वाभाविकी होती है।

अथ रस वर्णन

शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्‌भुत, बीभत्स, शान्त, भक्ति वा दास्य, प्रेम वा माधुर्य्य, सख्य वात्सल्य, प्रमोद वा आनन्द।

शृंगार, संयोग और वियोग दो प्रकार का। यथा—शाकुन्तल के पहले और दूसरे अंक में संयोग, पांचवें, छठें अंक में वियोग।

हास्य, यथा—भाण और प्रहसनों में।

करुण, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में शैव्या के विलाप में,

रौद्र, यथा धनंजय विजय में युद्धभूमि वर्णन।

वीर रस 4 प्रकार। यथा—दानवीर, सत्यवीर, युद्धवीर और उद्योगवीर। दानवीर, यथा—सत्यहरिश्चन्द्र में 'जेहि पाली इक्ष्वांकु सों' इत्यादि। सत्यवीर यथा—सत्य हरिश्चन्द्र में 'बेचि देह दारा सुअन' इत्यादि। युद्धवीर यथा—नीलदेवी। उद्योगवीर[1] मुद्राराक्षस। भयानक चन्द्रो अद्‌भुत और बीभत्स, यथा—सत्यहरिश्चन्द्र में श्मशानवर्णन।

शान्त—यथा प्रबोध चन्द्रोदय में; भक्ति यथा संस्कृत चैतन्यचन्द्रोदय चन्द्र में, प्रेम यथा चन्द्रावली में, वात्सल्य और प्रमोद के उदाहरण नहीं हैं।

अथ रसविरोध

नाटकरचना में विरोधी रसों को बहुत बचाना चाहिए। जैसे शृंगार के हास्य वीर विरोधी नहीं किन्तु अति करुण बीभत्स, रौद्र, भयानक और शान्त विरोधी हैं तो जिस नाटक में शृंगाररस प्रधान अंगी भाव से हो उस में ये न आने चाहिए। अति करुण लिखने का तात्पर्य यह कि सामान्य करुण तो वियोग में भी वर्णित होगी किन्तु पुत्रशोकादिवत् अति करुण का वर्णन शृंगार का विरोधी है। हां नवीन (ट्रैजेडी) वियोगान्त नाटक लेखक तो यह रस विरोध करने को बाधित हैं। नाटकों की सौन्दर्य्यरक्षा के हेतु विरोधी रसों को बचाना भी बहुत आवश्यक कार्य्य है अन्यथा होने से कवि का मुख्य उद्देश्य नष्ट हो जाता है।

अथ अन्य स्फुट विषय

नाटक रचना के हेतु पूर्वोक्त कथित विषयों के अतिरिक्त कुछ नायिकाभेद और कुछ अलंकारशास्त्र जानने की भी आवश्यकता होती है। ये विषय रसरत्नाकर भारतीभूषण, लालित्यलता आदि ग्रन्थों में विस्तृत रूप से वर्णित हैं।

आज कल की सभ्यता के अनुसार नाटकरचना में उद्देश्यफल उत्तम निकलना बहुत आवश्यक है। यह न होने से सभ्यशिष्टगण ग्रन्थ का तादृश आदर नहीं करते।

---

1. मुद्राराक्षस में मुख्य अंगीभाव से कोई रस न पाकर मुझ को उद्योगवीर की कल्पना करनी पड़ी।

अर्थात् नाटक पढ़ने या देखने से कोई शिक्षा मिलै जैसे सत्यहरिश्चन्द्र देखने से आर्य्यजाति की सत्यप्रतिज्ञा, नीलदेवी सें देशस्नेह इत्यादि शिक्षा निकलती है। इस मर्य्यादा की रक्षा के हेतु वर्त्तमान समय में स्वकीया नायिका तथा उत्तम गुण विशिष्ट नायक को अवलम्बन कर के नाटक लिखना योग्य है। यदि इस के विरुद्ध नायिका नायक के चरित्र हों तो उस का परिणाम बुरा दिखलाना चाहिए। यथा—नहुष नाटक में इन्द्राणी पर आसक्त होने से नहुष का नाश दिखलाया गया है। अर्थात् चाहे उत्तम नायिका नायक के चरित्र की समाप्ति सुखमय दिखलाई जाय किम्वा दुश्चरित्र पात्रों के चरित्र की समाप्ति कंटकमय दिखलाई जाय। नाटक के परिणाम से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पावैं।

अथ अभिनय विषयक अन्यान्य स्फुट नियम

नाटक की कथा— नाटक की कथा की रचना ऐसी विचित्र और पूर्व्वापर बद्ध होनी चाहिए कि जब तक अन्तिम अंक न पढैं किम्वा न देखैं, यह न प्रकट हो कि खेल कैसे समाप्त होगा। यह नहीं कि 'सीधा एक को बेटा हुआ, उस ने यह किया वह किया' प्रारम्भ ही में कहानी का मध्य बोध हो।

पात्रों के स्वर—शोक, हर्ष, हास, क्रोधादि के समय में पात्रों को स्वर भी घटाना बढ़ाना उचित है। जैसे स्वाभाविक स्वर बदलते हैं, वैसे ही कृत्रिम भी बदलैं। 'आप ही आप' ऐसे स्वर में कहना चाहिए कि बोध हो कि धीरे-धीरे कहता है, किन्तु तब भी इतना उच्च हो कि श्रोतागण निष्कंटक सुन लें।

पात्रों की दृष्टि—यद्यपि परस्पर वार्त्ता करने में पात्रों की दृष्टि परस्पर रहैगी किन्तु बहुत से विषय पात्रों को दर्शकों की ओर देख कर कहने पड़ैंगे। इस अवसर पर अभिनयचातुर्य्य यह है कि यद्यपि पात्र दर्शकों की ओर देखैं किन्तु यह न बोध हो कि वह बातैं वे दर्शकों से कहते हैं।

पात्रों के भाव—नृत्य की भांति रंगस्थल पर पात्रों को हस्तक भाव वा मुख, नेत्र, भ्रू के सूक्ष्मतर भाव दिखलाने की आवश्यकता नहीं, स्वर भाव और यथायोग्य स्थान पर अंगभंगी भाव ही दिखलाने चाहिए।

पात्रों का फिरना—एक यह साधारण नियम भी माननीय है कि फिरने वा जाने के समय जहां तक हो सके पात्रगण अपनी पीठ दर्शकों को बहुत कम दिखलावैं। किन्तु इस नियम पालन का इतना आग्रह न करैं कि जहां पीठ दिखलाने की आवश्यकता हो वहां भी न दिखलावैं।

पात्रों का परस्पर कथोपकथन—पात्रगण आपस में जो वार्त्ता करैं उन को कवि निरे काव्य की भांति न ग्रथित करै। यथा—नायिका से नायक साधारण काव्य की भांति 'तुम्हारे नेत्र कमल हैं, कुच कलश हैं' इत्यादि न कहैं। परस्पर वार्त्ता में हृदय के भावबोधक वाक्य ही व्यक्त करने योग्य है। किसी मनुष्य वा स्थानादि के वर्णन में लम्बी चौड़ी काव्यरचना नाटक के उपयोगी नहीं होती।

अथ नाटकों का इतिहास

यदि कोई हम से यह प्रश्न करैं कि सब के पहिले किस देश में नाटकों का प्रचार हुआ तो हम क्षण मात्र का भी विलम्ब किए बिना मुक्त कंठ से कह देंगे 'भारतवर्ष' में। इस का प्रमाण यह है कि जिस देश में संगीत और साहित्य प्रथम परिपक्व हुए होंगे वहीं प्रथम नाटक का भी प्रचार हुआ होगा। हम नहीं समझ सकते कि पृथ्वी की और कोई जाति भी भारतवर्ष के सामने इस विषय में मुंह खोले। आर्य्यों का परम शास्त्र वेद संगीत और साहित्यमय है। और जाति में संगीत और साहित्य प्रमोद के हेतु होते हैं किन्तु हमारे पूज्य आर्य्य महर्षियों ने इन्हीं शास्त्रों द्वारा आनन्द में निमग्न हो कर परमेश्वर की उपासना की है। यहां तक कि हमारे तीसरे वेद साम की संज्ञा ही गान है। और किस के यहां धर्म्म संगीत साहित्य-मय है? हमारे यहां लिखा है–

वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गम् प्रयच्छति॥1॥
काव्यालापाश्च येकेचित् गीतिकान्यखिलानि च।
शब्दरूपधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः॥2॥

तो जब हमारे धर्म्म के मूल ही में संगीत और साहित्य मिले हैं तब इस में क्या सन्देह है कि इस रस के प्रथमाधिकारी आर्य्यगण ही हैं। इस के अतिरिक्त नाटकरचना में रंग नट इत्यादि जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे सब प्राचीन काव्य, कोष, व्याकरण और धर्म्मशास्त्रों में पाये जाते हैं। इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि नाटकरचना हमारे आर्य्यगणों पर पूर्व्वकाल ही से विदित हैं।

सर्व्वदा नट लोगों के ही द्वारा ये नाटक नहीं अभिनीत होते थे। आर्य्य राजकुमार और कुमारीगण भी इस को सीखते थे। महाभारत के खिल हरिवंश पर्व्व के विष्णु पर्व्व के 93 अध्याय में प्रद्युम्न साम्बादि यादव राजकुमारों का वज्रनाभ के पुर में जाना और वहां नट बन कर (कौवेरम्भाभिसार) नाटक खेलना बहुत स्पष्ट रूप से वर्णित हैं। वहां लिखा है कि जब प्रद्युम्न आदिक वीर वज्रनाभ के पुर में गए तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कुमारों को नाटक करने की आज्ञा देकर भेजा था। प्रद्युम्न सूत्रधार थे, सांब विदूषक थे और गद पारिपार्श्वक थे। यहां तक कि स्त्रियां भी गाने बजाने का साज ले कर साथ गई थीं। पहले दिन इन लोगों ने रामजन्म नाटक किया जिस में लोमपाद राजा की आज्ञा से गणिकाओं का शृंगी ऋषि को ठग कर लाना बहुत अच्छी रीति से दिखलाया गया था। दूसरे दिन फिर रम्भाभिसार नाटक किया[1] इस में पहिले इन लोगों ने नेपथ्य बांधा[2] फिर स्त्रियों ने भीतर से बड़े सुन्दर स्वर से गान

1. 'भैमापि बद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा। कार्यार्थ भीम कर्माणो नृत्यार्थ मुपचक्रमुः॥ इत्यादि 21 श्लोक से 32 श्लोक तक।
2. अर्थात् बिना नेपथ्य में महाराष्ट्रों की भांति शतरंजी और मशालची के भरोसे नहीं खेला।

किया[1] पीछे गंगा जी के वर्णन में प्रद्युम्न, गद और साम्ब ने मिल कर नान्दी गायी[2] और तदनन्तर प्रद्युम्नजी ने विनय के श्लोक पढ़ कर सभा को प्रसन्न किया।[3] और तब नाटक आरम्भ हुआ। इस में शूर नामक यादव रावण बना, मनोवती नाम्नी स्त्री रम्भा[4] प्रद्युम्न नल कूबर और साम्ब विदूषक। इसी प्रकरण से यह बात सिद्ध होती है कि केवल नट ही नहीं, प्राचीन काल से आर्य्यकुल में बड़े-बड़े लोग भी इस विद्या को भली भांति जानते थे[5]।

---

1. इस से विदित हुआ कि बाह्यपटी उठने के पहले गान होना भी प्राचीन रीति है।
2. नांदी विषयक दृढ़ नियम उसी काल से प्रचलित है।
3. विनय के श्लोक पढ़े अर्थात् प्रस्तावना हुई।
4. इस से एक बात यह बहुत बड़ी प्रमाणित हुई कि प्राचीन काल में स्त्री का वेष स्त्री लेती थी।
5. अव के लोगों को नाटक के अनुशीलन वा अनुकरण करने में उत्साह नहीं होता वरन इस को तुच्छ और बुरा समझ के इस से दूर भागते हैं और नाटक करने वाले चतुरों को लोग साधारण ढोल बजाने वाले नट जान कर इस काम में अपनी घृणा प्रकाश करते हैं, परन्तु बड़े शोच की बात है कि जो सब से अच्छी वस्तु है और जिस के करने वाले लोग महा सभ्यता के निकेतन हैं इन्हीं दोनों बातों में देश के कुसंस्कार से लोगों को अरुचि हो गई। नाटकों का अभिनय करना सहृदय जनों के समाज को कितनी प्रीति देनेवाला, देश की कुचालों को सुधारने वाला और कैसा कुशल करने वाला है इस का सब गुण उन नाटकों को देखने ही से उन पर प्रकट हो जायगा और इसी भांति प्रतिकूलता के बन्धन से छूट कर अनुकूलता भूषण से भूषित होकर नाटक दर्शन रूपी अलौकिक कुसुम कानन में घूमने फिरने से अनिर्वचनीय आनन्द पावैंगे और उस के काव्यों के वायु के ठंडे और सुगन्धित झकोरों से उन के जी की कली खिल जायगी। नाटकों के अभिनय करने में जो स्वच्छन्दता होती है उसे छोड़ कर उस से देश का कितना उपकार होता है कि हम लिख नहीं सकते देखिये कि यदि एक बड़ा राजा वा कोई धनी अथवा कोई पंडित किसी बुरे काम में प्रवृत्त होय तो उस को हम लोग सभा में कभी शिक्षा न दे सकैंगे और जो कुसंस्कार की दावाग्नि बहुत काल से प्रकट हो कर हम लोगों के मंगलमय सभ्यता वन को जला रही है उस महा दावाग्नि को हम लोग दोषकथन वारि से घर बैठे बुझाना चाहैंगे तो कभी न बुझैगी। इस में अब हम लोगों को कुशलता के उद्योग बीजों को अवश्य बोना चाहिए और वह किसी एक मनुष्य के प्रयत्न से कभी अंकुरित न होगी परन्तु यदि नाटकों के अभिनय का आरम्भ हो जायगा तो यह सब कुचाल आप से आप छूट जायगी और उसी भांति फिर सब लोग अच्छी बातों से रुष्ट न होकर प्रचार में प्रयत्न करैंगे।

   जैसे वेश्यासक्त पुरुषों का वेष धारण करने वाले नटों से वेश्यासक्त पुरुषों को घृणा होगी और कुलटात्व दोष निवारण के हेतु कुलटा वेषधारी नट के आने से उस का दुर्दशा का दिखाना, मद्यपों के वेष से मद्यपों की बुरी अवस्था का अनुभव कराना इसी भांति जुवारी, झूठ बोलने वाले ऋणी, अपने बन्धुओं के विरोध करने वाले, वृथा आचरण करने वाले, वृथा व्यय करने वाले, कर्कश बोलने वाले, और मूर्खों के वेष और सम्भाषण से इन की दुर्दशा दिखाने से अनायास ही पूर्व्वोक्त दुर्दशा वाले मनुष्य सभा में बातों ही के चोट से चैतन्य हो जायंगे और इस रस रूपी उपदेश से सावधान हो कर बुरी बातों से बचैंगे। और जो नाटक करना कोई बुरी बात होती तो सभ्य शिरोमणि विद्यासागर अंग्रेज लोग इसके होने में क्यौं प्रयत्न करते और बड़ी-बड़ी रंगशालाओं में नित्य नित्य बड़े बड़े अधिकारी लोग क्यौं वेष धारण कर के नाटकाभिनय करते? जो कहो कि यह नाटक भरतखंड के हेतु एक नयी बात है सो नहीं, देखिए पूर्व्वकाल में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने पुत्र साम्ब और श्रीप्रद्युम्न का और अपने छोटे भाई →

मध्य समय के नाटक

मध्य समय में नाटककारों में कविकुलगुरु भगवान कालिदास[1] मुख्यतम हैं। भवभूति[2] और धावक दूसरी श्रेणी में हैं। राजशेखर, जयदेव, भट्टनारायण, दंडी[3] इत्यादि तीसरी श्रेणी में हैं। अब जितने नाटक प्रसिद्ध हैं उन में मृच्छकटिक सब से प्राचीन है। इसके पीछे शकुन्तला और विक्रमोर्वशी बने हैं। यहां पर एक बड़ी प्रसिद्ध बात का विचार करना है। प्रायः सभी प्राचीन इतिहास लेखकों ने लिखा है कि श्रीहर्ष कालिदास के पूर्व्व हुआ, क्योंकि मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने धावक का नाम लिया है, किन्तु राजतरंगिणी में हर्ष नामक जो राजा हुआ है वह विक्रमादित्य[4] के कई सौ वर्ष पीछे हुआ

→ गद को एक बड़े समाज के साथ नाटक करने की आज्ञा दी थी और उन लोगों ने रामाभिनय नाटक किया था और इसी भांति से भरतखंड भूषण भी महाराज विक्रमादित्य और महाराज भोज के समय इस का सम्पूर्ण रूप से प्रचार था इस में विशेष प्रमाण का कुछ काम नहीं है, उस समय के शकुन्तला और रत्नावली इत्यादि नाटक के अब भी प्रमाण आदर्शरूप से वर्त्तमान हैं और पढ़नेवालों को अपूर्व्व आनन्द देते हैं। अहा! हे नाटकविरोधी मानवगण! आप लोग इस चमत्कार कार्य्य में क्यों उत्साह नहीं बढ़ाते और इस आनन्दमय रस समुद्र में क्यों नहीं स्नान करते और बड़े-बड़े महात्मा और रसिक शिरोमणि दुष्यन्त युधिष्ठिर, राम और वत्सराज ऐसे लोगों के साक्षात् दर्शन और उन के गुण स्वभाव श्रवण की इच्छा क्यों नहीं करते? इस हेतु अब यही हमारी प्रार्थना है कि आप लोग इस बात को सुन कर कान में रूई देके न बैठें जहां तक हो सके इस की उन्नति में प्रयत्न करें जिस से हमारे इस देशवासियों का उपकार हो।

1. पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः। अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावात् अनामिका सार्थवती बभूव॥1॥
2. भवभूतेः सम्बन्धात् भूधरभूरेव भारती भाति। एतत्कृत कारूण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥1॥
3. जाते जगति वाल्मीको कविरित्यभिधा भवत्। कवि इतिततोव्यासे कवयस्त्वयि दंडिनि॥1॥ प्रसिद्ध कवि कालिदास और दंडी स्पर्द्धिनी दो स्त्रियां भी कवि हुई थीं। यथा—'नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता। वृथैव दंडिना प्रोक्तं सर्व शुक्ला सरस्वती।' तथा सरस्वतीव कर्णाटी विजयांका जयत्यसौ। या वैदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम्॥1॥'

   भास नामक कोई कवि नाटककार हुआ है किन्तु उस का नाटक प्रसिद्ध नहीं है। सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटकैर्वहुभूमिकै :। सपताकैर्यशो लेभे भासो देव कुलैरिव॥1।' भासोहास : कवि कुलगुरु : कालिदासो विलासः॥1॥
4. विक्रमादित्य के समय में इतिहास के देखने से अत्यन्त गोलमाल मालूम होती है। परन्तु जिस विक्रमादित्य का संवत् चलाया है वह 19 सौ से ऊपर हुए यह ठीक है परन्तु राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने अपने इतिहास तिमिरनाशक तीसरे खंड में यौं लिखा है—

   यहां तक कि सन ईस्वी से 57 बरस पहले विक्रम उज्जैन के शैव राजा ने दिल्ली फतह कर के अपना अमल कश्मीर तक पहुंचाया और बौद्धमत को बड़ा धक्का लगाया। ब्राह्मणों ने फिर बल पाया। इस ने पंडितों का नवरत्न बनाया। कालिदास सब का शिरोमणि था। उसी के समय में कुमारसम्भव ग्रन्थ बना। मृच्छकटिक नाटक भी सन ईस्वी के आरम्भ ही में रचा गया। उस से उस समय का हाल बहुत मालूम होता है। उस में वसन्त* नाम की एक वेश्या के मकान की तारीफ लिखी है। चौकठ रंगी हुई, झाड़ दी हुई, पानी छिड़का हुआ, बन्दनवार बंधी हुई, बालाखाना बुलन्द, पीले झंडे, गमलों में आम के पौधे, पहले चौक में वेदपाठी ब्राह्मणों की तरह दर्बान ऊंघते, कव्वे दही भात खाकर यज्ञ के बचे हुए →

→ खाने से बेपर्वा, दूसरे चौक में अस्तबल, उस में रथ के वैल, लड़ाई के मेढ़े और बन्दर, बंधे हुए, हाथी भात और घी के गोले खाते हुए, तीसरे चौक में जवान जूआ खेलते हुए, चौथे चौक में नाच गाना नाटक बाजा, पांचवें चौक में रसोई, तेल और हींग की बू से महकी हुई जानवरों की खालें धोई जाती हैं। मिठाई और पकवान बन रहे हैं। छठे चौक में दर्वाजा मिहराबदार ; जौहरी सुनार पटवे गहने बना रहे हैं। हक्काक अपना काम कर रहे हैं कोई केसर के थैले सुखला रहा है और कोई मुश्कनाफे हिलाता है, कोई चन्दन का इतर निकाल रहा है, कोई और और खुशबू की चीजें बना रहा है। सातवें चौक में चिड़ियाखाना कबूतर तोते मैना कोयल मौजूद, आठवें चौक में उस वेश्या का भाई रेशमी कपड़े पहने गहनों से चमचमाता हुआ लोट-पोट कर रहा है मानो उस के हड्डी के जोड़ ही उखड़ गए हैं और उस की मां जामदानी का कपड़ा पहने तेल से चमकते हुए पैरों में जूती ऐसी मोटी कि शायद वहां उसे बैठा कर उस मकान की दीवार बनायी गयी थी। बाग में वसन्त टहल रही थी उस की सवारी के रथ पर पर्दे पड़े हुए थे चारुदत्त ब्राह्मण इस वेश्या का यार था चोरी करना भी विद्या में गिना जाता था! एक ब्राह्मण चोर दीवार में जनेऊ से नाप कर शास्त्र के बमूजिब स्वस्तिक और घड़े की शकल पर सेंध लगा रहा है। राजा वेश्या के पीछे बाजार में दौड़ता है, उसे घायल करता है। एक बौद्ध भिक्षुक बचाता है। आर्यक अहीर जिस की आंखें तांबे के रंग की लिखी हैं राजा को मार कर उज्जैन की गद्दी पर आप बैठता है। जो हो इस में संदेह नहीं कि विक्रम के समय में (शक लोग नाग की पूजा करते थे और नाग ही उन का चिन्ह था कौन जाने यहीं यहां नागवंशियों की जड़ हुए हों रामगढ़ सिरगुजा के नागवंशी राजा अब तक अपनी मुहर में नाग का चिन्ह खुदवाते हैं यूनान का पुराना इतिहासवेत्ता हेरोदोतस लिखता है कि शक लोग अपने तईं एक-एक ऐसी स्त्री की औलाद बतलाते थे जिस का नीचे का धड़ सांप का था इसी से शायद इस देश वालों को नागकन्या का ख्याल बंधा) हूण जट (Jits, Getes, Gaeti) तैमूर के समय तक यह तातार में वहां की एक कौम गिनी जाती थी) इत्यादि तातारी कौमों ने इस देश पर भारी चढ़ाई की थी और विक्रम ने उन से अच्छी लड़ाई जीती वरन इसी लिए वह शकारि कहलाया विक्रम नाम के इतने (आठ से अधिक) राजा हुए हैं कि उन के इतिहास मिलजुल जाने के कारण बहुत गड़बड़ हो गए हैं यहां तक कि अकसर साहिब लोग संवत् को विक्रम का चलाया नहीं मानते हैं क्योंकि उस समय उज्जैन में किसी बड़े महाराजाधिराज विक्रम का कहीं कुछ पक्का पता नहीं मिलता। एक बड़ा विक्रम सन 500 और 600 ईस्वी के बीच में महाराजाधिराज हुआ। मातृगुप्त को भेज के कश्मीर फतह किया। वहां का राजा तोरमान कैद हो गया लेकिन विक्रम के मरने पर और मातृ गुप्त को काशीवास करने को चले आने पर तोमरमान के बेटे प्रवरसेन ने कश्मीर से निकल कर विक्रम के बेटे शिलादित्य को कैद कर लिया और जिस तरह नादिरशाह दिल्ली से तख्तताऊस ले गया था विक्रम का बत्तीस पुतलियों वाला सिंहासन उठा ले गया। एक साहिब ऐसा भी अनुमान करते हैं कि यहां संवत् गुप्तों के राज से चला था बीच में लुप्त हो गया था फिर किसी गुप्त विक्रम ने जारी किया इसी से विक्रम का कहलाया। कौन जाने यही बड़ा विक्रम दूसरा चन्द्रगुप्त विक्रम रहा हो। बराहमिहिर का समय सन 587 ईस्वी ठीक निश्चय हो गया है वह इसी विक्रम के समय में हुआ जिस ने सन 500 और 600 के बीच में राज किया और अमरसिंह कोशकर्त्ता और कालिदास कवि भी बराहमिहिर के साथ इसी विक्रम की सभा के रत्न थे। (एक पंडित मातृगुप्त ही को कालिदास ठहराते हैं।) लेकिन सन ईस्वी से कोई 26 बरस पहले यहां सिन्ध मालवा इत्यादि देशों में तातारियों का राज हो गया था इन के सिक्कों से जो मिलते हैं मालूम होता है कि वह आग पूजते थे। क्योंकि उन के देवता अर्दथ्रो (Ardethro) अर्थात् अग्निदेव की जो उन पर तस्वीर है उस के कंधों से अग्नि की शिखा निकल रही है और फिर पिछले सिक्कों पर शिव की मूर्त्ति भी त्रिशूल हाथ में लिये नन्दी के सहारे से खड़ी है परन्तु आंख दो और सिर में अग्नि की शिखा प्रज्वलित। दूसरी ओर उन्हीं सिक्कों पर हलिओस (Helios) अर्थात् हरि : अर्थात् सूरज, माओ (Mao) अर्थात् माह अर्थात् चांद और नानाइया (Nanaia) अर्थात् नानदेवी खुदा हुआ है। इसी नानदेवी को अब अफगानिस्तान →

→ वाले बीवी नानी कहते हैं। और याज्ञवल्क्य स्मृति में इन्हीं सिक्कों को नानक वा नाणक (इस दलील से यह ग्रन्थ विक्रम से पीछे बना मालूम होता है) लिखा है। कनकीं राजा का जो सिक्का मिला है उस पर बुद्ध की मूर्ति है लेकिन अग्नि की शिखा के साथ यह वही राजा है जिसे बौद्ध और ब्राह्मणों ने कनिष्क (पिशावर के पास मनिकयाला का स्तूप इसी कनिष्क का बनवाया है। सन ईस्वी से 33 बरस पहले के रूमी सिक्के उस में से निकले हैं) लिखा है! राजतरंगिणी में लिखा है कि कश्मीर में तीन राजा तुरूष्ण अर्थात् तुर्क वंश के हुए और लंका के इतिहास वाले लिखते हैं कि इन तीनों का नाम हुठक जुठक और कनिष्क नगर विहार स्तूप और विद्यालय बनाये बौद्ध मत को रौनक दी नागार्जुन तान्त्रिक योगी जिसका नाम नागसेन भी लिखा है और विदर्भ में जनमा था उन का गुरु था। नागार्जुन के चेले माध्यमिक कहलाये। इस ने कश्मीर में बौद्धों का चौथा संघ अर्थात् समाज किया। तातार से ले के यवद्वीप (Java) तक बुद्ध का मत फैलाया। चीन वाले इन राजाओं को ऐसा जबर्दस्त लिखते हैं कि उन्होंने ओल में चीन से शाहजादे मंगाये थे। जाड़े में हिन्दुस्तान में बाहर में कन्धार में, और गर्मी में काबूल के उत्तर कोहिस्तान में रहते थे। निदान इन तुरुष्कवंशी राजाओं ने बौद्ध शैव और अग्नि पूजन को खूब मिलाया मानो तीनों को एक मत कर डाला। गुप्तराजा—लेकिन सन 144 ईस्वी से अर्थात् बौद्ध राजा मेघवाहन के मरने से बौद्धों का असली जोर घटने और ब्राह्मणों का बढ़ने लगा था। जब फाहियान आया गुप्तवंशी दूसरा चन्द्रगुप्त विक्रम सारे भारतवर्ष का महाराजाधिराज था। यह शायद आखिरी बौद्ध चक्रवर्ती राजा हुआ वह समुद्रगुप्त का जिसका नाम सैदपुरभितरी और इलाहाबाद की लाटों पर खुदा है, बेटा था और उस के दादा पहले चन्द्र के दादा। गुप्त से गुप्त संवत गिना जाता था (अभी हम लिख आए हैं कि "एक साहिब ऐसा भी अनुमान करते हैं कि यहां सवंत गुप्तों के राज से चला था बीच में लुप्त हो गया था फिर किसी गुप्त विक्रम ने जारी किया इस से विक्रम का कहलाया; सो वह विक्रम यही दूसरा चन्द्रगुप्त हो सकता है। विक्रम अथवा विक्रमादित्य उस का खिताब था और इसी तरह शिलादित्य अवश्य उस के बेटे कुमार गुप्त महेन्द्र का खिताब रहा होगा इस से पहले कहीं विक्रम के नाम से किसी संवत का कुछ पता नहीं लगता है। .....वाड साहिब के वमूजिब सोमनाथ में एक पत्थर और संवत 1320 और बल्लभी 954 और हिजरी 662 लिखा हुआ मिला है पस मुतावकत् बहुत अच्छी हो जाती है। अर्थात् ईस्वी सन् 319 अर्थात गुप्त संवत् 376 में कि विक्रम के संवत के बराबर है गुजरात से गुप्तों के निकलने पर गुप्त संवत लुप्त होकर बल्लभी का संवत शुरू हुआ। जब विक्रम ने गुप्त संवत का उद्धार करके उसे फिर चलाया वह अर्थात् गुप्त संवत अर्थात् विक्रम का चलाया संवत 1930 बल्लभी संवत 954 के जैसा कि पत्थर पर लिखा है बराबर आया। इसी दूसरे चन्द्रगुप्त विक्रम के पोते स्कन्दगुप्त का कीर्तिस्तम्भ गोरखपुर के जिले में सलीमपुर मझौली के पास कुहाव गांव में अब तक मौजूद है। उस में लिखा है कि एक सौ राजा उस के सामने सिर झुकाते थे। स्कन्दगुप्त के बाप कुमारगुप्त महेन्द्र की तस्वीर जो उस के सिक्के पर है उस से जाहिर है कि वह थोड़ी मुहरी का पाजामा और बुटामदार कोट पहनता था। गुप्त राजाओं के सिक्कों पर अकसर शिव पार्वती नदी मयूर सिंह (मयूर कार्तिकेय का बाहन है और सिंह पार्वती का और नन्दी शिव का यह तो हर कोई जानता है) इत्यादि का चिन्ह मिलता है। समुद्रगुप्त और स्कन्दगुप्त दोनों निश्चय वैदिक और शैव थे। सन 319 ईस्वी में इन गुप्तों को सेन राजाओं ने गुजरात से निकाल दिया और अपनी राजधानी बल्लभी (कहते हैं कि बल्लभी का राज सन 200 ई. से कुछ पहले सूर्य्यवंशी कनकसेन ने अवध में जाकर जमाया था।) का संवत कायम किया। यह सेन भी बड़े नामी राजा हुए। निदान ह्वांगत्सांग के समय तक अर्थात् सन 600 ईस्वी से इधर तक बौद्धमत मध्यदेश में बना रहा, फिर घटते-घटते ऐसा घटा कि सन बारह-तेरह सौ ईस्वी से भारतवर्ष में अब नाम को भी वाकी न रहा। ह्वांगत्सांग लिखता है कि बनारस में 100 शिवालय और 10000 शैव मौजूद थे और बिहार में कुल तीस और बौद्ध पांच हजार से भी कम रह गए थे। इस में सन्देह नहीं कि कन्नौज के भवभूति ने सन 720 ईस्वी में मालतीमाधव नाटक बनाया है उस में लिखा है कि बिहार के राजा →

है। अनन्त देव नामक राजा भोज के समय में था! अनन्त का पुत्र कलस हुआ जिस ने आठ बरस राज्य किया। इसका पुत्र हर्ष था जिस ने कई दिन मात्र राज्य किया था। कनिंघम के मत से हर्ष सन् 1088 ई. में और बिल्सन के मत से 1054 ई. में हुआ था। यद्यपि राजतरंगिणीकार ने हर्ष को कवि लिखा है और बिल्हण और बिल्हण कवि भी इस के समय में लिखे हैं किन्तु धावक का नाम तथा रत्नावली इत्यादि के बनने का प्रसंग कोई नहीं लिखा। राजतरंगिणीकार के मत से हर्ष के समय अत्यन्त उपद्रव रहा। और चारों ओर राजकुमार तथा उच्च कुल के लोगों की रुधिर की नदी बहती थी। हर्ष श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती की भांति मूर्त्तिपूजा के भी विरुद्ध था इसी हेतु प्रजा उस को तुरुष्क पुकारती थी। इन बातों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि या तो धावक वाला श्रीहर्ष दूसरा है, कश्मीर का नहीं। या मालविकाग्निमित्रकार कालिदास वह जगतप्रसिद्ध शकुन्तला का कालिदास नहीं। दूसरी बात विशेष सम्भव बोध होती है क्यौंकि शकुन्तला और मालविकाग्निमित्र की संस्कृत ही में भेद नहीं, काव्य की उत्तमता मध्यमता में भी आकाश पाताल का बीच है।

राजतरंगिणी में लिखा है कि कश्मीर के राजा तुंजीन के समय में चन्द्रक कवि ने बड़ा सुन्दर नाटक बनाया। यह तुंजीन राजतरंगिणी के हिसाब से गत कलि 3582 में अर्थात् आज से 1402 वर्ष पहिले, ट्रायर के मत से 103 ई. पूर्व्व अर्थात् आज से 1986 वर्ष पहिले, कनिंघम के मत से ईस्वी सन् 319 में अर्थात् 1564 वर्ष पहिले, विल्सन के मत से 104 ई. पूर्व्व. अर्थात् 1987 वर्ष पहिले, विल्फर्ड के मत से सन 54 ईस्वी में अर्थात् 1829 वर्ष पहिले हुआ था।

जिन-जिन संस्कृत नाटकों की स्थिति मुझ को उपलब्ध हुई है उन की एक तालिका प्रकाशित की जाती है इनमें* ऐसा चिन्ह जिन पर दिया है वे नाटक मेरे पढ़े हुए हैं और छपे भी हैं और जिन पर X ऐसा चिन्ह है वे मैंने पढ़े तो हैं किन्तु छपे नहीं हैं और शेष भारतवर्ष में मिलते तो हैं किन्तु मेरे देखे हुए नहीं हैं। इन्हीं नाटकों में कोई कोई ऐसे भी होंगे जो मृच्छकटिक के पूर्व्व के बने होंगे किन्तु अब इस बात का पता नहीं लग सकता है यह सारी सृष्टि दो हजार वर्ष की है। जिस काल के अनन्त उदर में हम आर्य्यों के अनन्त ग्रन्थरत्न गल पच गए वहां इस के पूर्व्व के नाटक भी गए। कालिदास, भवभूति प्रभृति महाकवियों के जीवनचरित स्वतन्त्र आलोच्य विषय हैं; इस हेतु यहां नहीं लिखे गए।

→ का लड़का माधव न्याय सीखने के लिए उज्जैन में एक बौद्ध गुरनी के पास गए और वहां मन्त्री की लड़की मालती भी पढ़ने को आती थी परन्तु दिल्ली में तोमर कन्नौज में राठौर महोबे में चन्देल सब शैव और वैष्णव थे। बुद्ध ने चाहा था कि ज्ञान जो बुद्धि से परे और केवल अनुभवसिद्ध है और थोड़ों को ही प्राप्त हो सकता है सब को दान दे और इन सब लोगों का हाल यह है कि मोटी बात चाहते हैं जो दिखलाई दे उसी को पूजा करते हैं। निदान यही मूर्त्ति प्रतिमापूजन की जड़ हुई। यहां तक कि स्तूप, वृक्ष, पशु, राख, हड्डी, ईंट, पत्थर इत्यादि सब पूजने लगे।

अथ संस्कृत-नाटक तालिका

शाकुन्तल •	(कालिदास)	महारामायण	...
मालविकाग्निमित्र •	...	अंगदनाटक	...
विक्रमोर्वशी •	...	हनुमन्नाटक	...
मालतीमाधव •	(भवभूति)	मुद्राराक्षस •	(विशाखदत्त)
महावीरचरित •	...	वेणीसंहार •	(नारायण भट्ट)
उत्तररामचरित •	...	धनंजयविजय •	(कांचन)
रत्नावली •	(श्रीहर्ष)	मृच्छकटिक •	(शूद्रक)
नागानन्द •	...	जामदग्नजय	...
प्रियदर्शिका •	...	समुद्रमन्थन	...
धूर्त्तसमागम •	(राजशेखर)	त्रिपुरदाह	...
कर्पूरमंजरी ×	...	शारदातिलक	(शङ्कर)
विद्धशालभंजिका •	...	ययातिचरित	(रुद्र भट्ट)
प्रचंडपांडव	...	ययातिशर्म्मिष्ठा	...
बालरामायण •	...	मृगांकलेखा	(विमल्लदेव के पुत्र विश्वनाथ)
प्रसन्नराघव •	(जयदेव)	हास्यार्णव ×	...
अनर्घ्यराघव •	(मुरारि)	विदग्धमाधव ×	(रूप गोस्वामि)
पुष्पमाला •	(चन्द्रशेखर)	वसन्ततिलक भाण •	(वरदाचार्य्य)
उदात्तराघव	...	मुकुन्दानन्द ×	...
राधामाधव	...	नटक मेलक प्रहसन •	...
पारिजातक	...	दानकेलिकौमुदी ×	...
कमलिनीकलहंस	(चूड़ामणि दीक्षित)	अभिराममणि	(सुन्दर मिश्र)
तपतीसंवरण	(त्रावंकोरराज)	मधुरानिरुद्ध	(चन्द्रशेखर)
मालमंगल भाण	(मालमंगल)	कंसवध	(कृष्णकविशेष)
कलावतीकामरूप	...	प्रद्युम्नविजय	(बालकृष्ण के पुत्र शंकर दीक्षित)
नग्नभूपतिग्रह नाटक	...	श्रीरामचरित	साम्राज्य दीक्षित
प्रियदर्शना	...	धूर्त्तनर्त्तक	साम्राज्य दीक्षित
यादवोदय	...	कौतुकसर्वस्व	(गोपीनाथ पं.)
बालिवध	...	प्रबोधचन्द्रोदय •	(कृष्ण मिश्र)
अनेकमूर्त्त	...		
मयंकपालिका	...		

क्रीड़ारसातल	...
कनकावतीमाधव	...
विन्दुमती	...
केलिरैवतक	...
कामदत्ता	...
सुदर्शनविजय	...
वासंतिकापरिणय	...
चित्रयज्ञ	(वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य)
वृषभानुजा नाटिका ×	(मथुरादास कायस्थ)
उषारागोदया ×	(रुद्रचन्द्र देव)
मल्लिकामारुत ∘	(उद्दंड)
ताराशशांक	(श्रीधर)
चंडकौशिक • '	(आर्य्य क्षेमीश्वर)
जानकीराघव	...
रुक्मिणीपरिणय ×	(रामचन्द्र)
गृहवृक्षवाटिका	...
कुलपत्यंग	...
वध्यशिला	...
तरंगदत्त (प्रकरण)	
लीलामधुकर	...
दूतांगद ×	...
मुंडित प्रहसन ×	(सुभट)
नाटक सर्वस्व	
उदयनचरित	...
कृत्यारावण	...
रामाभिनन्द	...
रामचरित	...
चन्द्रकला	(विश्वनाथ)
प्रभावतीपरिणय	...
पार्वतीस्वयंवर	...

चैतन्यचन्द्रोदय ×	(कर्णपूर)
संकल्पसूर्योदय	(वेदान्ताचार्य्य)
रामाभ्युदय	...
कुन्दमाला	...
सौगंधिकाहरण	...
रैवतकमदनिका	...
कुसुमशेखरविजय	
नर्मवती	...
विलासवती	...
शृंगारतिलक	(रुद्रभट्ट)
देवीमहादेव	...
आनन्दविलास	...
सेवंतिकापरिणय	...
कनकवल्लीपरिणय	...
रामनाटक	...
सुभद्राधनंजयविजय	(गुरुराम)
वकुलमालिनीपरिणय	(कृष्ण दीक्षित)
वसन्तभूषण भाण	...
इन्दिरापरिणय	...
कल्याणीपरिणय	...
कुसुमबाणविलास	...
बटुचरित्र नाटक	...
मरकतवल्लीपरिणय	...
चूड़ामणि नाटक	...
सामवत नाटक	(पं. अंबिकादत्त व्यास साहित्याचार्य्य)
सौगन्धिकाहरण	...
कुसुमशेखरविजय	...
छलितराम	...
कन्दर्पकेलि	...
स्तम्भितरम्भ	...

सुभद्राविजय	...
सुभद्राहरण	...
भैमीपरिणय	...
रुक्मिणीकल्याण	(चूड़ामणि)
वसुमती-चित्रसेन	...
विद्यापरिणय	(वेदकवि स्वामी)
अहल्या-संक्रन्दन	...
प्रद्युम्नानन्दनीय	(वेंकटाचार्य्य)
पंचवाणविजय	...
रविकिरणकूर्चिका	...
सुभद्राधनंजय	(गुरुराम)
कन्यामाधव	...
त्रिपुरारि	...
सत्यभामापरिणय	(कृष्णकवींद्र)
भिक्षाटन नाटक	...
मन्त्रांग नाटक	...
संवरणा नाटक	...
सीताराघव नाटक	...
हरिश्चन्द्र यशश्चन्द्रिका	...
नरकासुर व्यायोग	...
अरुणामोदिनी	...
वृहन्नाटक	...

विजयपारिजात वा	(हरिजीवन)
आसामविजय	
पुष्पदूषितक (प्रकरण)	...
ललिता नाटिका	...
जानकीपरिणय ×	(रामभद्र दीक्षित)
माधवाभ्युदय	(वेदान्ताचार्य्य)
काशिदास प्रहसन	...
अंबाल भाण	(श्रीवरदाचार्य्य)
कृष्णभक्तिचन्द्रिका	(अनन्त देव)
नाटक ×	
अतन्द्रचन्द्रिका	(विद्यानिधि)
पार्थपराक्रम	...
भर्तृहरिनिर्वेद	...
धर्मविजय नाटक	(शुक्ल भूदेव)
सत्संगविजय नाटक	(वैद्यनाथ)
चन्द्रप्रभा ×	...
कर्णसुन्दरी नाटिका	...
रतिवल्लभ ×	(जगन्नाथ पंडितराज)
जगन्नाथवल्लभ	...
ध्रुवचरित्र	(पं. दामोदर शास्त्री)

अथ भाषानाटक

हिन्दी भाषा में वास्तविक नाटक के आकार में ग्रन्थ की सृष्टि हुए पच्चीस वर्ष से विशेष नहीं हुए। यद्यपि नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, वेदान्त विषयक भाषा ग्रन्थ समयसार नाटक, ब्रजवासीदास के प्रबोधचन्द्रोदय प्रभृति नाटक के भाषा अनुवाद, नाटक नाम से अभिहित हैं किन्तु इन सबों की रचना काव्य की भांति है अर्थात् नाटक रीत्यनुसार पात्रप्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है। भाषा कविकुल मुकुट माणिक्य देवकवि का 'देवमायाप्रपंच नाटक' और श्रीमहाराज काशिराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्रीमहाराज विश्वनाथसिंह रीवा का आनन्दरघुनन्दन नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं किन्तु नाटकीय यावत नियमों का प्रतिपालन इन में नहीं हैं और ये छन्दप्रधान ग्रन्थ हैं। विशुद्ध नाटक रीति से पात्रप्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक

मेरे पिता पूज्यचरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्दजी) का है। इस में इन्द्र को ब्रह्महत्या लगना और उस के अभाव में नहुष का इन्द्र होना, नहुष का इन्द्रपद पाकर मद, उस की इन्द्रानी पर कामचेष्टा, इन्द्रानी का सतीत्व, इन्द्रानी के भुलावा देने से सप्तऋषि को पालकी में जोत कर नहुष का चलना, दुर्वासा का नहुष को शाप देना और फिर इन्द्र का पूर्वपद पाना, यह सब वर्णित हैं। मेरे पिता ने बिना अंग्रेजी शिक्षा पाए इधर क्यों दृष्टि दी यह बात आश्चर्य की नहीं। उन के सब विचार परिष्कृत थे। बिना अंग्रेजी की शिक्षा के भी उन को वर्त्तमान समय का स्वरूप भली भांति विदित था। पहले तो धर्म्म के विषय में ही वे इतने परिष्कृत थे कि वैष्णवव्रत पूर्णपालन के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उठा दिए थे। टामसन साहब लेफ्टिनेंट गवर्नर के समय काशी में पहला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बड़ी बहिन को उन्होंने उस स्कूल में प्रकाश रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य्य उस समय में बहुत ही कठिन था क्योंकि इस में बड़ी ही लोकनिन्दा थी। हम लोगों को अंग्रेजी शिक्षा दी। सिद्धान्त यह कि उन की सब बातें परिष्कृत थीं और उन को स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है। नहुष नाटक बनने का समय मुझ को स्मरण है। आज पच्चीस बरस हुए होंगे जब कि मैं सात बरस का था नहुष नाटक बनता था। केवल सत्ताईस वर्ष की अवस्था में मेरे पिता ने देहत्याग किया किन्तु इसी अवसर में चालीस ग्रन्थ (जिन में बलरामकथामृत, गर्गसंहिता, भाषावाल्मीकि रामायण, जरासन्धवध महाकाव्य और रसरत्नाकर ऐसे बड़े-बड़े भी हैं) बनाए।

हिन्दी भाषा में दूसरा ग्रन्थ वास्तविक नाटककार राजा लक्ष्णसिंह का शकुन्तला नाटक है। भाषा के माधुर्य्य आदि गुणों से यह नाटक उत्तम ग्रन्थों की गिनती में है। तीसरा नाटक हमारा विद्यासुन्दर है। चौथे के स्थान में हमारे मित्र लाला श्रीनिवासदास का तप्तीसंवरण, पंचम हमारा वैदिकीहिंसा, षष्ठ प्रियमित्र बाबू तोताराम का केटोकृतान्त और फिर तो और भी दो, चार कृत विद्य लेखकों के लिखे हुए अनेक हिन्दी नाटक हैं। सर विलियम म्यौर[1] साहिब के काल में अनेक ग्रन्थ बने हैं क्योंकि वे ग्रन्थ बनाने वालों को पारितोषिक देते थे। इसी से रत्नावली भी हिन्दी में बनी[2] और छपी है किन्तु इस की ठीक वही दशा है जो पारसी नाटकों की है। काशी में पारसी नाटक वालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उस में धीरोदात्त नायक दुष्यन्त

1. सन 1876 ई. जुलाई में मैंने भी एक कवित्त भेजा था जिस पर इन्होंने अनेक धन्यवाद दिया था। जो कवित्त मैंने भेजा था वह यह है–
देखि भूमि हरित अधिक हरखात गात ईस कृपा जल सों विसेष सुख जाके है।
सबै तुम्हैं मोर कहै सहज सनेह बस प्रजा दुख दलन सहस्र दृग ताके है॥
आसुतोस ऐसे आसु तोसत सबन तुम याही तें जगत नीलकंठ बने बांके है।
त्रासत अनेक खल सर्पन सदर्प तुम वलभ मयूर सुख पूरक प्रजा के है॥
2. इस को बरेली कॉलेज के संस्कृत के प्रोफेसर पंडित देवदत्त तिवारी ने उल्था किया है। वह महाशय देवकोश अर्थात् अमर कोश भाषा-विवरण सहित के कर्त्ता भी हैं।

खेमटेवालियों की तरह कमर पर हाथ रख कर मटक-मटक कर नाचने और 'पतरी कमर बलखाय' यह गाने लगा तो डाक्टर थिबो, बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान यह कह कर उठ आये कि अब देखा नहीं जाता। ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं। यही दशा बुरे अनुवादों की भी होती है। बिना पूर्व्व कवि के हृदय से हृदय मिलाए अनुवाद करना शुद्ध झख मारना ही नहीं कवि की लोकान्तर स्थित आत्मा को नरक कष्ट देना है।

इस रत्नावली की दुर्दशा के दो, चार उदाहरण यहां दिखलाए जाते हैं। यथा—तब यह प्रसंग हुआ कि यौगन्धरायण प्रसन्न हो कर रंगभूमि में आया और यह बोला ''और गान कर कहता है कि 'अए मदनिके' ''। अब कहिए यह राम कहानी है कि नाटक?

और आनन्द सुनिए, 'जो आज्ञा रानीजी की ऐसा कर तैसा ही करती है हाहाहा!!!'

एक आनन्द और सुनिए। नाटकों में कहीं-कहीं आता है 'नाट्येनोपविश्य' अर्थात् पात्र बैठने का नाट्य करता है। उस का अनुवाद हुआ है 'राजा नाचता हुआ बैठता है' 'नाट्येनोल्लिख्य' की दुर्दशा हुई है 'ऐसे नाचती हुई लिखती है' ऐसे ही 'लेखनी को लेकर नाचती हुई' 'निकट बैठ कर नाचती हुई।'

और आनन्द सुनिए 'इतिविष्कम्भकः' का अनुवाद हुआ है 'पीछे विष्कम्भक आया'। धन्य अनुवादकर्त्ता! और धन्य गवर्नमेंट जिसने पढ़ने वालों की बुद्धि का सत्यानाश करने को अनेक द्रव्य का श्राद्ध कर के इस को छापा!!

गवर्नमेंट की तो कृपादृष्टि चाहिए, योग्यायोग्य के विचार की आवश्यकता नहीं। फालेन साहब की डिक्शनरी के हेतु आधे लाख रुपये से विशेष व्यय किया गया तो यह कौन बड़ी बात है। 'सेत सेत सब एक से, जहां कपूर कपास'। यहां तो 'भेंट भए जय साहि सों भाग चाहियत भाल' वाली बात है। किन्तु ऐसी दशा में अच्छे लोगों का परिश्रम व्यर्थ हो जाता है क्योंकि 'आंधरे साहिब की सरकार कहां लौं करें चतुराई चितेरो'।

यद्यपि हिन्दी भाषा में दस, बीस नाटक बन गए हैं किन्तु हम यही कहैंगे कि अभी इस भाषा में नाटकों का बहुत ही अभाव है। आशा है कि काल की क्रमोन्नति के साथ ग्रन्थ भी बनते जायंगे। और अपनी सम्पत्ति शालिनी ज्ञान वृद्धा बड़ी बहन बंगभाषा के अक्षयरत्न भांडागार की सहायता से हिन्दी भाषा बड़ी उन्नति करे।

यहां पर यह बात प्रकाश करने में भी हम को अतीव आनन्द होता है कि लंडन नगरस्थ श्रीयुत फ्रेडरिक पिनकाट साहब ने भी शकुन्तला का हिन्दी भाषा में अनुवाद[1] किया है। वह अपने 20 मार्च के पत्र में हिन्दी ही में मुझ को लिखते हैं 'उस पर भी मैंने हिन्दी भाषा के सिखलाने के लिए कई एक पोथियां बनाई हैं उन में से हिन्दी भाषा में शकुन्तला नाटक एक है।'

हिन्दी भाषा में जो सब से पहला नाटक खेला गया वह जानकीमंगल था।

1. यह अनुवाद नहीं है। टीका-टिप्पणी सहित राजा लक्ष्मण सिंह के अनुवाद का संस्करण है।

स्वर्गवासी मित्रवर बाबू ऐश्वर्य नारायण सिंह के प्रयत्न से चैत्र शुक्ल 11 संवत् 1925 में बनारस थिएटर में बड़ी धूम धाम से यह खेला गया था। रामायण से कथा निकाल कर यह नाटक पंडित शीतला प्रसाद त्रिपाठी ने बनाया था। इस के पीछे प्रयाग और कानपुर के लोगों ने भी रणधीर प्रेममोहिनी और सत्यहरिश्चन्द्र खेला था। पश्चिमोत्तर देश में ठीक नियम पर चलने वाला कोई आर्य्य शिष्टजन का नाटक समाज नहीं हैं।

अथ हिन्दी नाटक-तालिका

नहुष नाटक	(श्रीगिरधरदास)	प्रेमयोगिनी	(हरिश्चन्द्र)
शकुन्तला	(राजा लक्ष्मणसिंह)	जैसा काम वैसा परिणाम	”
मुद्राराक्षस	(हरिश्चन्द्र)	कर्पूरमंजरी	”
सत्यहरिश्चन्द्र	”	नीलदेवी	”
विद्यासुन्दर	”	भारतदुर्दशा	”
अन्धेर नगरी	”	भारतजननी	”
विषस्य विषमौषधम्	”	धनंजय-विजय	”
सतीप्रताप	”	वैदिकी हिंसा...	”
चन्द्रावली	”	बूढ़े मुँह मुँहासे लोग	
माधुरी	”	देखें तमाशे (बूढ़ो	बाबू गोकुल-
पाखंड-विडम्बन	”	शालिकेर का अनु	चन्द्र
नवमल्लिका	”	वाद	
दुर्ल्लभबन्धु	”	अद्भुतचरित्र वा गृहचंडी	(श्रीमती...)
तपतीसंवरण	(लाला श्रीनिवासदास)	विज्ञानविभाकर	(पं. जानी
रणधीर-प्रेममोहिनी	”		बिहारीलाल)
केटो कृतान्त	(बाबू तोताराम भारतबन्धु-सम्पादक)	ललिता नाटिका	(पं. अम्बिका दत्त व्यास साहित्याचार्य्य, वैष्णव पत्रिका और पीयूष-प्रवाह के सम्पादक)
सज्जाद-सुंबुल	(बाबू केशोराम भट्ट बिहारबन्धु —सम्पादक)	देव-पुरुष-दृश्य	...
शमशाद-सौसन	”	वेणीसंहार नाटक	...
जय नारसिंह की	(पं. देवकीनन्दन तिवारी, प्रयाग समाचारपत्र—सम्पादक)	गोसंकट	...
		जानकीमंगल	(पं. शीतला-प्रसाद त्रिपाठी)

होली खगेश	,,	दुःखिनी बाला	(बाबू राधा कृष्णदास)
चक्षुदान	,,	पद्मावती	,,
पद्मावती शर्मिष्ठा चन्द्रसेन	(पं. बालकृष्ण भट्ट हिन्दी प्रदीप —सम्पादक)	महारास	(महाराजाधि-राज कुमार लाल खड्गबहादुर मल्ल युवराज मझौली राज)
सरोजिनी	(पं. गणेशदत्त)		
सरोजिनी	(राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु —सम्पादक)	रामलीला 7 कांड	(पं. दामोदर शास्त्री, विद्यार्थी-सम्पादक)
मृच्छकटिक	(पं. गदाधर भट्ट मालवीय)	बालखेल राधामाधव	,, ,,
मृच्छकटिक	(पं. दामोदर शास्त्री)		
मृच्छकटिक	(बाबू ठाकुरदयाल सिंह)	वेनिस का सौदागर	(बाबू बालेश्वर-प्रसाद काशी-पत्रिका)
वारांगनारहस्य	(पं. बदरीनारायण चौधरी, आनन्द कादम्बिनी के सम्पादक)	वेनिस का सौदागर	(बाबू ठाकुर-दयालसिंह)

योरप में नाटकों का प्रचार

योरप में नाटकों का प्रचार भारतवर्ष के पीछे हुआ है। पहिले दो मनुष्यों के सम्वाद को ही वहां नाटकों का सूत्रपात्र मानते हैं। प्राचीन ईसाई धर्म्मपुस्तक में 'बुक ऑव जाब' और सुलेमान के गीतों में ऐसे सम्वाद मिलते हैं किन्तु इन के अतिरिक्त हिब्रू भाषा में और कोई प्राचीन नाटक का ग्रन्थ नहीं। योरप में सबसे प्राचीन नाटक यूनान में मिलते हैं और यह निश्चय अनुमान हुआ है कि भारतवर्ष से वहां यह विद्या गई होगी। यूनान में एथेन्स प्रदेश में नाटकों का प्रचार विशेष था और डायोनिसस[1] नामक देवता के मेले में नाटक प्रायः खेले जाते थे। अनुमान होता है कि वैक्सस[2] नामक देवता की पूजा से वहां इन का चलन हुआ। प्राचीन काल से योरप के नाटक संयोगान्त और वियोगान्त इन दो भागों में बंटे हैं। आरिअन नामक कवि ने 580 वर्ष ईसा के पूर्व्व वियोगान्त नाटक

1. यह युद्ध का देवता था।
2. यह मद्य का देवता है। प्रिन्सिप साहब कहते हैं कि यह बलराम है।

की सृष्टि की। ट्रैजिडी (Tragedy) शब्द बकरे से निकला है जिस से अनुमान होता है कि बैक्सस देवता के सामने बकरे की बलि दी जाती थी और उसी समय पहिले यह खेल आरम्भ हुआ इस से वियोगान्त नाटक की संज्ञा ट्रैजिडी हुई। (Comedy) कॉमेडी ग्राम शब्द से निकला है अर्थात् ग्राम्यसुखों का जिन में वर्णन हो वह कामेडी (संयोगान्त) है। थेसपिस ने (536 ई. पू.) प्रथम रंगशाला में एक शिष्य का वेश देकर मनुष्यों को संवाद पढ़वाया और उसी पात्र को फ्रिनिशश ने 512 ई. पू. पहले पहल स्त्री का वेश देकर रंगशाला में सब को दिखलाया। इस के पीछे इशिलश के काल तक वियोगान्त नाटकों में फिर कोई नयी उन्नति नहीं हुई।

आरिअन ही के समय में वरन् उसी के लाग पर सुसेरियन ने संयोगान्त नाटकों का प्रचार सारे यूनान में फिर-फिर कर किया और एक छोटी सी चलती फिरती रंगशाला भी उन के साथ थी। उस काल के ये नाटक अब के बंगाली यात्रा वा रास के से होते थे। उस समय में वियोगान्त नाटक गम्भीराशय और विशेष चित्ताकर्षक होने के कारण सभ्य लोगों में और संयोगान्त ग्राम्य लोगों में खेले जाते थे। एपिकार्मस, फार्मस, मैग्नेस, क्रेटस, क्रेटनस यूपोलिस, फेटिक्रेट्स और एलिस्टेफेन्स ये सब उस काल के प्रसिद्ध कामेडी लेखक थे। बीच में लोगों ने संयोग वियोग मिला कर भी पुस्तकें लिख कर इस विद्या की उन्नति की।

वियोगान्त नाटक में इशिलस, सोफाकोलस और यूरुपिडीस ये तीन बड़े दक्ष हुए। इन कवियों ने स्वयं पात्रों को अभिनय करना सिखाया और स्वाभाविक भावभंगी दिखलाने में विशेष परिश्रम किया। अरस्तू ने इन्हीं तीनों कवियों की अपने ग्रन्थ में बड़ाई की है।

रोम वाले नाटक विद्या में ऐसे दक्ष नहीं थे। इन लोगों ने यूनान वालों ही से इस विद्या का स्वाद पाया। शोक का विषय है कि प्लाटस और टेरेन्स के अतिरिक्त इन कवियों में से किसी का न नाम मालूम है न कोई ग्रन्थ मिला। प्रसिद्ध आगष्ट्स के समय में रोम में इस विद्या की उन्नति हुई थी किन्तु सेनीका नामक नाटक के अतिरिक्त और किसी ग्रन्थ का नाम तक कहीं नहीं मिला। रोम के बड़े-बड़े महलों और वीरों के साथ वहां की विद्या और कला भी धूल में मिल गई, यहां तक कि उन का नाम लेने वाला भी कोई न बचा। जब रोम में क्रिस्तानी मत फैला तो ऐसे नाटक वा खेल राजनियम के अनुसार निषेध कर दिए गए। केवल पिता पुत्र एपोलीनारी और ग्रेंगरी ने इंजील से कथा भाग लेकर क्रिस्तानो को जी बहलाने को कुछ सुवांग इत्यादि बनाए थे।

योरप में इटली वालों ने पहले पहल ठीक तरह से नाटक के प्रचार में उद्योग किया और रोमवालों के चित्त में फिर से मुरझाए हुए इस बीज को हरा किया। सोलहवीं शताब्दीं में ट्रिसनो कवि का सोफोनिस्वा नामक वियोगान्त नाटक पहले पहल छापा गया। आरिआस्टोवैबिना और मैशियाविली ने ट्रिसीनो की भांति और कई नाटक लिखे। इसी शताब्दी के अन्त में गिएम्बाटिस्टालिआपोर्टा ने प्रहसन पहले पहल प्रकाश किया

और इस में परिहास की बातें ऐसी सुसभ्यता से वर्णन की कि लोगों ने नाटक की इस शैली को बहुत ही प्रसन्नता से स्वीकार किया। इसी समय में हिशी, बोरगिनी, ओडो और बुओनाटोरी ने जातीय स्नेह बढ़ाने वाले वीररसाश्रित इतिहास के खेल लिखे और प्रचारित किए। सत्रहवीं शताब्दीं में रिनुशिनी ने पहले पहल आपेरा (संगीत नाट्य) का आरम्भ किया। इस में उस ने ऐसे उत्तम रीति से प्रेम, देशस्नेह, वीर और करुण रस से गीत बांधे कि सब लोग और नाटकों को भूल कर इसी की ओर झुके। मैकी नामक कवि ने इस की और भी उन्नति की। अब स्पेन फरासीस चारों ओर इसी गीतिनाट्य की चर्चा फैल गयी। इस के पीछे जीनो, मेटैस्टेसिओ, गोलडोनी, मोलिएर, रिशोबिनी, गोज्जी, गालडोनी, आलफीरो, मांटी, मानजानी और निकोलिनी इत्यादि प्रसिद्ध कवियों ने पूर्व्वोक्त नाटकों के ऐसी उत्तमता से ग्रन्थ लिखे और नाट्य में ऐसी उन्नति की कि इटली इस विद्या में सारे योरप की गुरु मानी गई।

योरप के और देशों में नाटकों के प्रचार को पादरियों ने बहुत रोका। जहां कोई नाटक खेलता ये पादरी उस को धर्म्म दंड देने को दौड़ते। विलेना, सान्तिलाना, नाहरो और रूएडा नामक कवियों ने इस आपत्ति से बचने को अपनी लेखनी को धर्म्मविषयक नाटकों के लिखने पर परिचालित किया। विशेष कर के करवैन्टस ने अपने नाटक ऐसी उत्तमता से लिखे कि लोगों के चित्त से नाटकों की बुराई का संस्कार एकबारगी उठ गया। इस के पीछे कल्डिरन भी ऐसा ही उत्तम कवि हुआ कि उस को राजनियम विरुद्ध होने पर भी सैंतीस बरस के वास्ते नाटक लिखने की राजाज्ञा मिली। ये दोनों कवि सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व्व भाग में हुए थे।

फरासीस में नाटकों के विषय में बहुत सा वाद विवाद होता रहा और इस के होने के नियमों पर लोगों में बड़ी चर्चा रही किन्तु कोई बहुत उत्तम नाटक लेखक उस समय नहीं हुआ। जाडिली ने पहले पहल पांच अंक का एक वियोगान्त नाटक ठीक चाल पर बनाया और फरासीस के दूसरे हेनरी बादशाह के समाने वह खेला गया। चौदहवें लुइस के दरबार में कार्निली मोलियेर और रैसिनी क्रम से एक से दूसरे अच्छे नाटक वाले हुए। इस के पीछे वालटायर बड़ा प्रसिद्ध हुआ और फिर चार पांच और प्रसिद्ध कवि हुए।

जर्मनी के नाटक के इतिहास में अठारहवीं शताब्दीं के आरम्भ तक कोई भी विशेष बात नहीं। लेसिंग ने पहले पहल अपनी धूम धाम की समालोचना में जर्मनी का ध्यान इधर फेरा। इस के पीछे गोथे और सिलर यह दो बड़े प्रसिद्ध लेखक हुए।

इंग्लैंड के नाटकों का इतिहास अत्यन्त शृंखलाबद्ध है। पहले यहां केवल मत सम्बन्धी नाटक होते थे और इन का प्रबन्ध भी पादरियों के हाथ में रहता था। ये नाटक दो प्रकार के होते थे एक धर्म्मसम्बन्धी आश्चर्य घटनाओं के दूसरे शिक्षासम्बन्धी। इंग्लैंड के पुनस्संस्कार ने इन पुरानी बातों में कोई स्वाद बाकी न रक्खा। यहां तक कि सोलहवीं शताब्दीं के मध्य में संयोग और वियोग के नाटक स्वतन्त्र रूप से वहां

प्रचंड हुए। पहला संयोगान्त नाटक सन 1557 में निकोलस उडाल ने लिखा। ठीक उसके दस बरस पीछे बीबी नोरटेन, और लार्ड बकहर्स्ट से मारवूडाक नामक पहला वियोगान्त नाटक बनाया। उस के पीछे स्टिल, किड, लाज, ग्रीन, लायली, पील, मार्ली और नैश इत्यादि कई प्रसिद्ध नाटककार हुए। जगत विख्यात शेक्सपियर ने अपने वाक्य माधुर्य्य के आगे सब को जीत लिया। यह प्रसिद्ध कवि सन् 1564 में उत्पन्न हुआ था। इसका पिता ऊन का व्यवसाय करता था और उस के दस लड़कों में शेक्सपियर सब से बड़ा था। काल पा कर यह ऐसा प्रसिद्ध कवि हुआ कि पृथ्वी के मुख्य कवियों की गणना में एक रत्न समझा जाने लगा। इस को जैसी कविताशक्ति थी वैसी ही विचित्र कथाओं को बांधने की भी शक्ति थी। जिस के मस्तिष्क में ये दोनों शक्तियां एकत्र हों उस के बनाए हुए नाटकों का क्या पूछना है। नाटक भी इस ने बहुत बनाए और सब रस के। निस्सन्देह यह मनुष्य परमेश्वर की सृष्टि का एक रत्न हुआ है।

बेनजान्सन, व्यूमौन्ट और फ्लेचर ये तीन शेक्सपियर के समकालीन प्रसिद्ध नाटककार हुए हैं। मैसिन्जर, फोर्ड और शरली के काल तक इंग्लैंड की प्राचीन नाटक प्रणाली समाप्त होती है। सत्रहवीं शताब्दीं के अन्त में ड्राइडन ने नई प्रणाली के नाटक लिखने आरम्भ किए। अठारहवीं शताब्दीं में ली, आटबे, ग्रे, कानग्रीव, सिबर, विचरली, वैनब्रो, फारक्वहर, एडिसन जान्सन, यंग टामसन, लिलो, मूर, गैरिक, गोल्डस्मिथ कालमन्स, कम्बरलैंड, हालक्राफ्ट, बीबी इनचवाल्ड, लुइस, मैटूरिन और नैटूयूरिन तथा आधुनिक काल में शेरिडन नोल्स, बुलवरलिटन, लॉर्डवैरन, कालेरिज, हेनरी, टेलर, टालफोर्ड जेरल्ड, ब्रूक्स, मार्स्टन, टामटेलर, चार्ल्सरीड, राबर्टसन, विल्स वैरन, गिल्वर्ट, स्विनर्वन, टेनीसन और ब्रौनिंग प्रसिद्ध नाटककार गद्य-पद्य के कवि हुए हैं।

इंग्लैंड में इन नाटक लिखने वालों के हेतु एक राजनियम है जिस से अपने जीवित समय में कवि लोग और उन के पीछे उन के उत्तराधिकारी कविस्वत्व का भोग कर सकते हैं।

॥इति॥

मौलिक नाटक

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

(प्रहसन)

सन 1873 ई.

समर्पण

प्यारे!

मैं तुम्हें क्या तमाशा दिखाऊंगा। हां, धन्यवाद करूंगा क्यौंकि निस्सन्देह तुम ने ऐसा तमाशा दिखाया कि सब कुछ भूल गया। अहा! स्त्री-पुरुष, पंडित-मूर्ख, अपना-बिगाना और छोटे-बड़े सबका तमाशा देखा पर वाह! क्या ही तमाशा है—तमाशा तो है पर देखनेवाले थोड़े हैं। न हो तुम देखो, मैं देखूं; उन्हीं तमाशाओं में से यह भी एक तमाशा है देखो!

श्रावण शुद्ध 11 — तुम्हारा

सो-सं. 1930 — हरिश्चन्द्र

चश्मे मन बर चश्मे तू चश्मान तू जाए दिगर।
मन तमशाए तू बीनम तू तमाशाए दिगर॥

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

नान्दी

दोहा

बहु बकरा बलि हित कटैं, जाके बिना प्रमान।
सो हरि की माया करै, सब जग को कल्यान॥

[सूत्रधार और नटी आती हैं।]

सूत्रधार : अहा हा! आज की संध्या की कैसी शोभा है। सब दिशा ऐसी लाल हो रही है, मानों किसी ने बलिदान किया है और पशु के रक्त से पृथ्वी लाल हो गई है।

नटी : कहिए आज भी कोई लीला कीजिएगा?

सूत्रधार : बलिहारी! अच्छी याद दिलाई। हां जो लोग मांस लीला करते हैं उन की लीला करैंगे।

(नेपथ्य में) अरे शैलूषाधम! तू मेरी लीला क्या करैगा। चल भाग जा, नहीं तो तुझे भी खा जायंगे।

दोनों सभय : अरे, हमारी बात गृध्रराज ने सुन ली। अब भागना चाहिए नहीं तौ बड़ा अनर्थ करैगा।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना

पहिला अंक

स्थान–रक्त से रंगा हुआ राजभवन

(नेपथ्य में) बढ़े जाइयो! कोटिन लवा बटेर के नाशक, वेद धर्म्म प्रकाशक, मन्त्र से शुद्ध कर के बकरा खानेवाले, दूसरे के मांस से अपना मांस बढ़ाने वाले, सहित सकल समाज श्रीगृध्रराज महाराजाधिराज!

[गृध्रराज, चोबदार, पुरोहित और मन्त्री आते हैं]

राजा : (बैठ कर) आज की मछली कैसी स्वादिष्ट बनी थी।

पुरोहित : सत्य है। मानो अमृत में डुबोई थी और ऐसा कहा भी है–

केचित वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु
केचित वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु।
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षाः।
जंबीरनीर परिपूरितमत्स्यखण्डे।।[1]

राजा : क्या तुम ब्राह्मण होकर ऐसा कहते हो? ऐं तुम साक्षात् ऋषि के वंश में होकर ऐसा कहते हो!

पुरोहित : हां हां! हम कहते हैं और वेद, शास्त्र, पुराण, तन्त्र सब कहते हैं। **"जीवो जीवस्य जीवनम्"।**

राजा : ठीक है इस में कुछ सन्देह नहीं है।

पुरोहित : सन्देह होता तो शास्त्र में क्यौं लिखा जाता। हां, बिना देवी अथवा भैरव के समर्पण किये कुछ होता हो तो हो भी।

मन्त्री : सो भी क्यौं होने लगा? भागवत में लिखा है–

"लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्ति जन्तोर्नहि तत्र चोदना।"[2]

---

1. कुछ लोग कहते हैं कि अमृत स्वर्ग में है। कुछ लोगों का कहना है कि अमृत स्त्री के अधर पल्लवों में रहता है। सभी शास्त्रों के विचार में दक्ष हम यह कहते हैं कि अमृत नींबू के रस में डूबे हुए मछली के टुकड़े में रहता है।
2. संसार में मैथुन, मांस तथा मद्य का सेवन हर जीव के लिए अनिवार्य है। इसके लिए कोई नियन्त्रण नहीं है।

पुरोहित : सच है और देवी की पूजा नित्य करना, इस में कुछ सन्देह नहीं है, और जब देवी की पूजा भई तो मांस भक्षण आ ही गया। बलि बिना पूजा होगी ही नहीं और जब बलि दिया तब उस का प्रसाद अवश्य ही लेना चाहिए। अजी, भागवत में बलि देना लिखा है, जो वैष्णवों का परम पुरुषार्थ है।

'धूपोपहारबलिभिः स्सर्वकामवरेश्वरी।'[1]

मन्त्री : और **'पंचपंचनखा भक्ष्याः** यह सब वाक्य बराबर से शास्त्रों में कहते ही आते हैं।

पुरोहित : हां हां, जो इस में भी कुछ पूछना है अभी साक्षात् मनुजी कहते हैं–

'न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने'।

और जो मनुजी ने लिखा है कि :

'स्वमांस परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति'[2]

सो वही लिखते हैं–

'अनभ्यर्च्य पितृन देवान्'[3]

इस से जो खाली मांस भक्षण करते हैं उन को दोष है। महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मण गोमांस खा गये पर पितरों को समर्पित था इस से उन्हें कुछ भी पाप न हुआ।

मन्त्री : जो सच पूछो तो दोष कुछ भी नहीं है, चाहे पूजा कर के खाओ चाहे वैसे खाओ।

पुरोहित : हां जी, यह सब मिथ्या एक प्रपंच है, खूब मजे में मांस कचर कचर के खाना और चैन करना। एक दिन तो आखिर मरना ही है, किस जीवन के वास्ते शरीर को व्यर्थ वैष्णवों की तरह क्लेश देना। इस से क्या होता है?

राजा : तो कल हम बड़ी पूजा करैंगे एक लाल बकरा और बहुत से पक्षी मंगवा रखना।

चोबदार : जो आज्ञा।

पुरोहित : **(उठ कर के नाचने लगा)** अहा हा! बड़ा आनन्द भया, कल खूब पेट भरैगा।

[राग कान्हरा ताल चर्चरी]

धन्य वे लोग जो मांस खाते।

मच्छ बकरा लवा ससक हरना चिड़ा भेड़ इत्यादि नित चाभ जाते।

---

1. सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली भगवती का धूप, उपहार, बलि आदि से पूजन करना चाहिए।
2. जो दूसरों की मांस से अपना मांस बढ़ाना चाहते हैं।
3. पितरों और देवताओं की पूजा न करके।

प्रथम भोजन बहुरि होइ पूजा सुनित अति ही सुखमा भरे दिवस जाते।
स्वर्ण को वास यह लोक में है तिन्हें नित्य एहि रीति दिन जे बिताते॥

[नेपथ्य में वैतालिक]

राग सोरठ

सुनिए चित्त धरि यह बात।
बिना भक्षण मांस के सब व्यर्थ जीवन जात॥
जिन न खायो मच्छ जिन नहीं कियो मदिरा पान।
कछु कियो नहिं तिन जगत में यह सु निहचै जान॥
जिन न चूम्यौ अधर सुन्दर और गोल कपोल।
जिन न परस्यौ कुंभ कुच नहिं लखी नासा लोल॥
एकहू निसि जिन न कीना भोग, नहिं रस लीन।
जानिए निहचै ते पशु हैं तिन कछू नहिं कीन॥

दोहा

एहि असार संसार में, चारि वस्तु हैं सार।
जुआ मदिरा मांस अरु, नारी संग बिहार॥

क्योंकि—

''मांस एव परो धर्मो मांस एव परागतिः।
मांस एव परो योगी मांस एव परं तपः॥[1]

हे परम प्रचंड भुजदंड के बल से अनेक पाखंड के खंड को खंडन करनेवाले, नित्य एक अजापुत्र के भक्षण की सामर्थ्य आप में बढ़ती जाय और अस्थि माला धारण करनेवाले शिवजी आप का कल्याण करें। आप के बिना ऐसी पूजा और कौन करे? आकर बैठता है।

पुरोहित : वाह वाह! सच है सच है।

[नेपथ्य में]

पतीहीना तु या नारी पत्नीहीनस्तु यः पुमान्।
उभाभ्यां षंडरंडाभ्यान्न दोषो मनुरब्रवीत॥[2]

(सब चकित होकर)

ऐसा मालूम होता है कि कोई पुनर्विवाह का स्थापन करने वाला बंगाली आता है।

---

1. मांस ही परम धर्म है, मांस ही परम गति है, मांस ही परम योग है और मांस ही परम तप है।
2. मनु ने ऐसा कहा है कि विधवा स्त्री और विधुर पुरुष के समागम में दोष नहीं है।

[नंगे सिर बड़ी धोती पहिने बंगाली आता है]

बंगाली : अक्षर जिस के सब बे मेल, शब्द सब बे अर्थ, न छन्द वृत्ति न कुछ, ऐसे भी मन्त्र जिस के मुंह से निकलने से सब कार्य्यों को सिद्ध करने वाले हैं ऐसी भवानी और उन के उपदेष्टा शिवजी इस स्वतन्त्र राजा का कल्याण करैं।

[राजा दंडवत् करके बैठता है]

राजा : क्यौं जी भट्टाचार्य्यजी, पुनर्विवाह करना वा नहीं?

बंगाली : पुनर्विवाह का करना क्या! पुनर्विवाह अवश्य करना। सब शास्त्र की यही आज्ञा है, और पुनर्विवाह के न होने से बड़ा लोकसान होता है, धर्म्म का नाश होता है। ललनागन पुंश्चली हो जाती हैं। जो विचार कर देखिये तो विधवागन का विवाह कर देना उन को नरक से निकाल लेना है और शास्त्र की भी आज्ञा है।

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिन्यो विधीयते॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणी गच्छेद्यती गच्छेत्तपस्विनी।
अस्त्रीको विधवां गच्छेन्न् दोषो मुनरब्रवीत्॥[1]

राजा : यह वचन कहां का है?

बंगाली : यह वचन श्रीपराशर भगवान् का है जो इस युग के धर्म्मवक्ता हैं यथा—'कलौ पाराशरी स्मृतिः।'

राजा : क्यौं पुरोहितजी, आप इस में क्या कहते हैं?

पुरोहित : कितने साधारण धर्म्म ऐसे हैं कि जिन के न करने से कुछ पाप नहीं होता, जैसा—'मध्याह्ने भोजनं कुर्यात्' तो इस में न करने से कुछ पाप नहीं है, वरन् व्रत करने से पुन्य होता है। इसी तरह पुनर्विवाह भी इस के करने से कुछ पाप नहीं होता और जो न करै तो पुन्य होता है। इस में प्रमाण श्रीपाराशरीय स्मृति में—

''मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थिता।
सा नारी लभते स्वर्ग यावच्चन्द्रिदिवाकरौ॥''[2]

इस वचन से, और भी बहुत जगह शास्त्र में आज्ञा है, सो जो विधवा विवाह करती हैं उन को पाप तो नहीं होता, पर जो नहीं करतीं

---

1. पति के नष्ट हो जाने, मर जाने, लापता हो जाने, क्लीव हो जाने और पतित हो जाने पर, आपत्ति में पड़ी स्त्री के लिए दूसरे पति का विधान है।
2. पति की मृत्यु हो जाने पर जो स्त्री ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती है वह जब तक सूर्य, चन्द्र हैं तब तक स्वर्ग में स्थान पाती है।

उन को पुन्य अवश्य होता है और व्यभिचारिणी होने का जो कहो सो तो विवाह होने पर भी जिस को व्यभिचार करना होगा सो करैगी ही। जो आप ने पूछा वह हमारे समझ में तो यों आता है परन्तु सच पूछिए तो स्त्री तो जो चाहै सो करै, इन का तो दोष ही नहीं है–

'न स्त्री जारेण, दुष्यंति',[1] 'स्त्रीमुखं तु सदा शुचि',[2]

'स्त्रियस्समस्ताः सकला जगत्सु'[3] 'व्यभिचारादृतौ शुद्धिः।'[4]

इन के हेतु तो कोई विधि निषेध है ही नहीं, जो चाहैं करैं, चाहे जितना विवाह करैं, यह तो केवल एक बखेड़ा मात्र है।

सब : (एक मुख होकर) सत्य है, वाह वे क्यौं न हों, यथार्थ है।

चोबदार : संध्या भई महाराज!

राजा : सभा समाप्त करौ।

पहिला अंक समाप्त

---

1. स्त्री जार पुरुष के कारण दूषित नहीं होती।
2. स्त्री का मुख सदा पवित्र है।
3. संसार में सभी स्त्रियां कला से युक्त हैं
4. व्यभिचार के बाद ऋतुवती होने पर स्त्री शुद्ध हो जाती है।

दूसरा अंक

स्थान–पूजाघर

[राजा, मन्त्री, पुरोहित और उक्त-भट्टाचार्य्य आते हैं और अपने अपने स्थान पर बैठते हैं]

चोबदार : (आ कर) श्रीमच्छंकराचार्य्य मतानुयायी कोई वेदान्ती आया है।

राजा : आदरपूर्व्वक ले आओ।

[विदूषक आया]

विदूषक : हे भगवान्, इस बकवादी राजा का नित्य कल्याण हो जिस से हमारा नित्य पेट भरता है। हे ब्राह्मण लोगो! तुम्हारे मुख में सरस्वती हंस सहित वास करैं और उस की पूंछ मुख में न अटकै। हे पुरोहित, नित्य देवी के सामने (पशु) मराया करो और प्रसाद खाया करो।

[बीच में चूतर फेर कर बैठ गया]

राजा : अरे मूर्ख, फिर के बैठ।

विदूषक : ब्राह्मण को मूर्ख कहते हौ। फिर हम नहीं जानते जो कुछ तुम्हैं दंड मिलै, हां!

राजा : चल मुझ उद्दंड को कौन दंड देनेवाला है।

विदूषक : हां, फिर मालूम होगा।

[वेदान्ती आये]

राजा : बैठिये।

विदूषक : अद्वैतमत के प्रकाश करनेवाले भगवान् शंकराचार्य्य इस मायाकल्पित मिथ्या संसार से तुझ को मुक्त करैं।

विदूषक : क्यौं वेदान्तीजी, आप मांस खाते हैं कि नहीं?

वेदांती : तुम को इस से कुछ प्रयोजन है?

विदूषक : नहीं, कुछ प्रयोजन तो नहीं है। हम ने इस वास्ते पूछा कि आप वेदान्ती अर्थात् बिना दांत के हैं सो आप भक्षण कैसे करते होंगे।

[वेदान्ती टेढ़ी दृष्टि से देख कर चुप रह गया। सब लोग हंस पड़े]

विदूषक : **(बंगाली से)** तुम क्या देखते हो? तुम्हैं तो चैन है। बंगाली मात्र मच्छ भोजन करते हैं।

बंगाली : हम तो बंगालियों में वैष्णव हैं। नित्यानन्द महाप्रभु के सम्प्रदाय में हैं और मांस भक्षण कदापि नहीं करते और मच्छ तो कुछ मांस भक्षण में नहीं।

वेदान्ती : इस में प्रमाण क्या?

बंगाली : इस में यह प्रमाण कि मत्स्य की उत्पत्ति वीर्य और रज से नहीं है। इन की उत्पत्ति जल से है। इस हेतु जो फलादिक भक्ष्य हैं तो ये भी भक्ष्य हैं।

पुरोहित : साधु साधु! क्यों न हो। सत्य है।

वेदान्ती : क्या तुम वैष्णव बनते हो? किस सम्प्रदाय के वैष्णव हो?

बंगाली : हम नित्यानन्द महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय में हैं और श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण ही हैं, इस में प्रमाण श्रीभागवत में—

कृष्णवर्णत्विषा कृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदैः।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति ह्यणुमेधसा॥[1]

वेदान्ती : वैष्णवों के आचार्य्य तो चार हैं। तो तुम इन चारों से विलक्षण कहां से आये? अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।[2]

राजा : जाने दो, इस कोरी बकवाद का क्या फल है?

(नेपथ्य में)

उमासहायं परमेश्वर विभुं त्रिलोचनं नीलकंठं दयालुम्। (पुनः) गोविन्द नारायण माधवेति।

पुरोहित : कोई वैष्णव और शैव आते हैं।

राजा : चोबदार जा कर के आदर से ले आओ।

[चोबदार बाहर गया, वैष्णव और शैव को ले कर फिर आया]

[राजा ने उठ कर दोनों को बैठाया]

दोनों : **शंख कपाल लिए कर मैं, कर दूसरे चक्र त्रिशूल सुधारे।**
माल वनी मणि अस्थि की कंठ मैं तेज दसो दिसि मांझ पसारे॥
राधिका पारवती दिसि बाम, सबै जगनाशन पालनवारे।
चन्दन भस्म को लेप किए हरि ईश, हरैं सब दुःख ताप तुम्हारे॥

बंगाली : महाराज, शैव और वैष्णव ये दोनों मत वेद के बाहर हैं।

सर्वे शाक्त द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः।
आदिदेवीमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरतम्॥[3]

---

1. श्याम कर्ण होते हुए भी गौर कान्तियुक्त, अस्त्र पार्षद आदि से सर्वांग पूर्ण महाप्रभु का कीर्तन रूप यज्ञ से विचारवान पूजा करते हैं।
2. इस प्रकार कलयुग में चार सम्प्रदाय होंगे।
3. शाक्त द्विज कहे जाते हैं, सभी शैव और वैष्णव नहीं, क्योंकि ये आदि देवी वेदमाता गायत्री की आराधना करते हैं।

तथा—तस्मान्माहेश्वरी प्रजा। इस युग का शास्त्र तन्त्र है।

कृते श्रुत्युक्तमार्गाश्च त्रेतायां स्मृतिभाषिताः।
द्वापरे वै पुराणोक्ताः कलावागमसंभवाः॥[1]

महाराज, शैव और वैष्णव और कंठी, रुद्राक्ष, तुलसी की माला, तिलक यह सब अप्रमाण है।

शैव : मुंह संभाल के बोला करो, उस श्लोक का अर्थ सुनो, सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ताः प्रोक्ताः परन्तु शैवा वैष्णवा न शाक्ताः प्रोक्ताः। जो केवल गायत्री की उपासना करते हैं वे शाक्त हैं। 'पुराणे हरिणा प्रोक्तौ मार्गो द्वौ शैव वैष्णवौ'। और वेदों के वंद्य शिव ही हैं।

बंगाली : भवव्रतधरा ये च ये च तान्समनुव्रताः पाखंडिनश्च ते सर्व्वे सच्छास्त्रपरिपन्थिनः॥[2]
इस वाक्य में क्या कहते हैं?

शैव : इस वाक्य में ठीक कहते हैं। इस के आगे वाले वाक्यों से इस को मिलाओ। यह दोनों तान्त्रिकों ही के वास्ते लिखते हैं। वह शैव कैसे कि—

'नष्टश्शौचा मूढधियो जटा भस्मास्थिधारिणः।
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र देवं सुरासवम्॥[3]

तो जहां देव सुरा और आसव यही है अर्थात् तान्त्रिक, शैव, कुछ हम लोग शुद्ध शैव नहीं।

राजा : भला, वैष्णव और शैव मांस खाते हैं कि नहीं?

शैव : महाराज, वैष्णव तो नहीं खाते और शैवों को भी न खाना चाहिए परन्तु अब के नष्ट बुद्धि शैव खाते हैं।

पुरोहित : महाराज, वैष्णवों का मत तो जैनमत की एक शाखा है और महाराज दयानन्द स्वामी ने इन सब का खूब खंडन किया है, पर वह तो देवी की मूर्ति भी तोड़ने को कहते हैं। यह नहीं हो सकता क्योंकि फिर बलिदान किसके सामने होगा?

(नेपथ्य में) नारायण

---

1. सतयुग में वेद कथित, त्रेता में स्मृति लिखित तथा द्वापर में पुराणोक्ति मार्ग मान्य है और कलयुग में वेद सम्भव बात मान्य है।
2. महादेव का व्रत धारण करने वाले तथा उन के अनुयायी सभी अच्छे शास्त्र का मनन करते हुए पाखंडी होते हैं।
3. आचार से हीन, मूर्ख तथा जटा भस्म मुंडधारी शिव दीक्षा के लिए वहां बैठते हैं जहां देवता के लिए अमृत आसव रहता है।

राजा : कोई साधु आता है।

[धूर्तशिरोमणि गंडकीदास का प्रवेश]

राजा : आइए गंडकीदासजी!

पुरोहित : गंडकीदासजी हमारे बड़े मित्र हैं। यह और वैष्णवों की तरह जंजाल में नहीं फंसे हैं। यह आनन्द से संसार का सुख भोग करते हैं।

गंडकीदास : **(धीरे से पुरोहित से)** अजी, इस सभा में हमारी प्रतिष्ठा मत बिगाड़ो। वह तो एकान्त की बात है।

पुरोहित : वाह जी, इस में चोरी की कौन बात है?

गंडकीदास : **(धीरे से)** यहां सब वैष्णव और शैव बैठे हैं।

पुरोहित : वैष्णव तुम्हारा क्या कर लेगा! क्या किसी की डर पड़ी है?

विदूषक : महाराज, गंडकीदास जी का नाम तो रंडादास जी होता तो अच्छा होता।

राजा : क्यों?

विदूषक : यह तो रंडा ही के दास हैं।

आशंखचक्रांकिताबाहुदंडा गृहे समालिंगितबालरंडाः।
अथ च-भंडा भविष्यन्ति कलौ, प्रचंडाः।
रंडामंडलमंडनेषु पटवो धूर्ताः कलौ वैष्णवाः।[1]

शैव, वैष्णव
और वेदान्ती : अब हम लोग आज्ञा लेते हैं। इस सभा में रहने का हमारा धर्म्म नहीं।

विदूषक : दंडवत, दंडवत! जाइए भी किसी तरह।

[सब जाते हैं]

विदूषक : महाराज, अच्छा हुआ ये सब चले गये। अब आप भी चलें। पूजा का समय हुआ।

राजा : ठीक है।

[जवनिका गिरती है]

●

---

1. जिनके भुजदंड पर शंख, चक्र अंकित है और जो घर में बाल विधवा को आलिंगन करते हैं ऐसे भंडपुरुष कलयुग में बड़े उद्दंड होंगे। कलयुग के वैष्णव राड़ों को प्रसन्न करने में पटु और धूर्त होंगे।

तीसरा अंक

स्थान–राजपथ

[पुरोहित गले में माला पहिने टीका दिए, बोतल लिए उन्मत्त-सा आता है]

पुरोहित — **(घूम कर)** वाह भगवान् करै ऐसी पूजा नित्य हो, अहा! राजा धन्य है कि ऐसा धर्म्मनिष्ठ है, आज तो मेरा घर मांस, मदिरा से भर गया। अहा! और आज की पूजा की कैसी शोभा थी, एक ओर ब्राह्मणों का वेद पढ़ना, दूसरी ओर बलिदानवालों का कूद कूद कर बकरा काटना 'वाचं ते शुंधामि', तीसरी ओर बकरों का तड़पना और चिल्लाना, चौथी ओर मदिरा के घड़ों की शोभा और बीच में होम का कुंड, उस में मांस का चटचटाकर जलना और उस में से चिर्राहिन की सुगन्ध का निलकना, वैसी ही लोहू का चारों ओर फैलना और मदिरा की छलक, तथा ब्राह्मणों का मद्य पी कर पागल होना, चारों ओर घी और चरबी का बहना, मानो इस मन्त्र की पुकार सत्य होती थी–

'घृतं' घृतपावानः पिबत 'वसां' वसापावानः।'[1]

अहा! वैसी ही कुमारियों की पूजा–

'इमं ते उपस्थं मधुना सृजामि प्रजापतेर्मुखमेत
द्वितीय तस्या योनिं परिपश्यंति धीराः।'[2]

अहा हा! कुछ कहने की बात नहीं है सब बातैं उपस्थिति थीं–

'मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।[3]

ऐसे ही मदिरा की नदी बहती थी। **(कुछ ठहर कर)** जो कुछ हो मेरा तो कल्याण हो गया। अब इस धर्म्म के आगे तो सब धर्म्म तुच्छ

---

1. घी पीने वाले घी और वसा पीने वाले वसा पीएं।
2. इस आनन्देद्रिय को, जो ब्रह्मा का दूसरा मुख है, मधु से युक्त करता हूं, धीर लोग उस की योनि को देखते हैं।
3. यज्ञ के इच्छुकों के लिए सरस वायु तथा नदियां जल बहैं।

हैं और जो मांस न खाए वह तो हिन्दू नहीं, जैन हैं। वेद में सब स्थानों पर बलि देना लिखा है। ऐसा कौन सा यज्ञ है जो बिना बलिदान का है और ऐसा कौन देवता है जो मांस बिना ही प्रसन्न हो जाता है, और जाने दीजिए इस काल में ऐसा कौन है जो मांस नहीं खाता? क्या छिपा के क्या खुले खुले, अंगोछे में मांस और पोथी के चोंगे में मद्य छिपाई जाती है। उस में जिन हिन्दुओं ने थोड़ी भी अंगरेजी पढ़ी है वा जिन के घर में मुसलमानी स्त्री है उन की तो कुछ बात ही नहीं, आजाद हैं। **(सिर पकड़ कर)** हैं माथा क्यों घूमता है? अरे मदिरा ने तो जोर किया।

[उठकर गाता है]

जोर किया जोर किया जोर किया रे,
आज तो मैंने नशा जोर किया रे।
सांझहि से हम पीने बैठे पीते-पीते भोर किया रे॥
आज तो मैंने...।

[गिरता पड़ता नाचता है]

रामरस पीओ रे भाई, जो पीए सो अमर होय जाई।
चौके भीतर मुरगा पाकै जेवेलै नहाय कै
ऐसन जनम जर जाई। रामरस पीओ रे भाई...।
अरे जो बकरी पत्ती खात है ताकी काढ़ी खाल।
अरे, जो नर बकरी खात है तिनको कौन हवाल॥
रामरस पीओ रे भाई...।
यह माया हरि की कलवारिन मद पियाय राखा बौराई।
एक पड़ा भुइंया में लोटै दूसर कहै चोखी दे माई॥
रामरस पीओ रे भाई...।
अरे चढ़ी है सो चढ़ी नहिं उतरन को नाम।
भर रही खुमारी तब क्या रे किसी से है काम॥
रामरस पीओ रे भाई...।
मीन काट जल धोइए खाए अधिक पियास।
अरे तुलसी प्रीत सराहिए मुए मीत की आस॥
रामरस पीओ रे भाई...।
अरे मीन पीन पाठीन पुराना,
भरि भरि भार कंहारन आना॥
महिष खाई करि मदिरा पाना।
अरे गरजा रे कुम्भकरन बलवाना॥

रामरस पीओ रे भाई...।
ऐसा है कोई हरिजन मोदी तन की तपन बुझावैगा।
पूरन प्याला पिये हरी का फेर जनम नहिं पावैगा॥
रामरस पीओ रे भाई...।
अरे भक्तों ने रसोई की तो मरजाद ही खोई।
कलिए की जगह पकने लगी रामतरोई रे॥
रामरस पीओ रे भाई...।
भगतजी गदहा क्यौं न भयो।
जब से छोड़्यो मांस मछरिया सत्यानाश भयो।
रामरस पीओ रे भाई...।
अरे एकादशी के मछली खाई।
अरे कबौं मरे बैकुंठे जाई।
रामरस पीओ रे भाई...।
अरे तिल भर मछरी खाइबो कोटि गऊ को दान।
ते नर सीधे जात है सुरपुर बैठि बिमान॥
रामरस पीओ रे भाई...।
कंठी तोड़ो माला तोड़ो गंगा देहु बहाई।
अरे मदिरा पीओ खाइ कै मछरी बकरा जाहु चवाई॥
रामरस पीओ रे भाई...।
ऐसी गाढ़ी पीजिए ज्यौं मोरी की कीच।
घर के जाने मर गए आप नशे के बीच॥
रामरस पीओ रे भाई...।
[नाचता नाचता गिर के अचेत हो जाता है]
[मतवाले बने हुए राजा और मन्त्री आते हैं]

राजा : मन्त्री, पुरोहितजी तो बेसुध पड़े हैं।

मन्त्री : महाराज, पुरोहितजी आनन्द में हैं। ऐसे ही लोगों को मोक्ष मिलता है।

राजा : सच है। कहा भी है—

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पतित्वा धरणीतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा नरो मुक्तिमवाप्नुयात्॥

मन्त्री : महाराज संसार के सार मदिरा और मांस ही हैं।

'मकाराः पंच दुर्लभाः।'

राजा : इस में क्या सन्देह।

वेद वेद सबही कहें, भेद न पायो कोय।
बिन मदिरा के पान सो मुक्ति कहो क्यौं होय?॥

मन्त्री : महाराज, ईश्वर ने बकरा इसी हेतु बनाया ही है, नहीं और बकरा बनाने का काम क्या था? बकरे केवल यज्ञार्थ बने हैं और मद्य पानार्थ।

राजा : यज्ञो वै विष्णुः यज्ञेन यज्ञमयजंति देवाः यज्ञाद्भवति पर्ज्जन्यः, इत्यादि। श्रुतिस्मृति में यज्ञ की कैसी स्तुति है और "जीवो जीवस्य जीवनम्" जीव इसी के हेतु हैं क्योंकि—"मांस भात को छोड़िकै का नर खैहैं घास?"

मन्त्री : और फिर महाराज, यदि पाप होता भी हो तो मूर्खों को होता होगा। जो वेदान्ती अपनी आत्मा में रमण करने वाले ब्रह्मस्वरूप ज्ञानी हैं उन को क्यों होने लगा? कहा है न—

यावद्धतोस्मि हंतास्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदृक।
तावदेवाभिमानज्ञो वाध्यवाधकतामियात॥[1]
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः।[2]
नैनं छिंदति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः॥[3]
अच्छेद्योमादह्योयमक्लेद्यो शोष्य एव च।[4]
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥[5]

इस से हमारे आप से ज्ञानियों को तो केई बन्धन ही नहीं है। और सुनिए, मदिरा को अब लोग कमेटी कर के उठाया चाहते हैं। वाह बे वाह!

राजा : छिः अजी मद्यपान गीता में लिखा है "मद्याजी मां नमस्कुरु।"

मन्त्री : और इस संसार में मांस और मद्य से बढ़ कर कोई वस्तु है भी तो नहीं।

राजा : अहा! मदिरा की समता कौन करैगा जिस के हेतु लोग अपना धर्म्म छोड़ देते हैं। देखो—

मदिरा ही के पान हित, हिन्दू धर्म्म हि छोड़ि।
बहुत लोग ब्रह्मो बनत, जिन कुल सों कुल मोड़ि॥
ब्रांडी को अरु ब्रह्म को, पहिलो अक्षर एक।
तासों ब्राह्मो धर्म्म में, यामैं दोस न नेक॥

मन्त्री : महाराज, ब्रह्मो को कौन कहै हम लोग तो वैदिक धर्म्म मान कर सौत्रामणि यज्ञ करके मदिरा पी सकते हैं।

---

1. जब तक मैं मारा गया, मैं घातक हूं आदि का अपने पर आरोप करता है। तब तक उस में अहन्ता है।
2. बीती हुई या होने वाली बातों का पंडितगण सोच नहीं करते।
3. न तो इसे शस्त्र काट सकते हैं और न ही आग जला सकती है।
4. न यह करने योग्य है और न ही जलने योग्य है। न सड़ने योग्य है, न सूखने योग्य है।
5. इस नश्वर शरीर को कोई नहीं मारता।

राजा : सच है, देखो न—

मदिरा को तो अंग अरु आदि राम को नाम।
तासों तामैं दोष कछू नहिं यह बुद्धि ललाम॥
तिष्ठ तिष्ठ क्षण मद्य हम पियैं न जब लौं नीच।
यह कहि देवी क्रोंध सों हत्यौं शुम्भ रन बीच॥
मद पी विधि जग को करत, पालत हरि करि पान।
मद्यहि पी के नाश सब करत शम्भु भगवान॥
विष्णु वारुनी, पोर्ट पुरुषोत्तम मद्य मुरारि।
शांपिन शिव, गौड़ी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म विचारि॥

मन्त्री : और फिर महाराज, ऐसा कौन है जो मद्य नहीं पीता? इस से तो हमीं लोग न अच्छे जो विधि पूर्व्वक वेद की रीति से पान करते हैं और यौं छिप के इस समय में कौन नहीं करता—

ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु सैयद सेख पठान।
दै बताइ मोहि कौन जो करत न मदिरा पान॥
पियत भट्ट के ठट्ट अरु गुजरातिन के वृन्द।
गौतम पियत आनन्द सों पियत अग्र के नन्द॥
ब्राह्मण सब छिपि छिपि पियत जामैं जानि न जाय।
पोथी के चोंगान भरि बोतल बगल छिपाय॥
वैष्णव लोग कहावहीं कंठी मुद्रा धारि।
छिपि छिपि कैं मदिरा पियहिं यह जिय मांझि विचारि॥
होटल में मदिरा पियैं, चोट लगे नहिं लाज।
लोट गए ठाढ़े रहत टोटल देवै काज॥
राजा राजकुमार मिलि बाबू लीने संग।
वार-बधुन लै बाग में पीअत भरे उमंग॥

राजा : सच है इस में क्या सन्देह है।

मन्त्री : महाराज, मेरा सिर घूमता है और ऐसी इच्छा होती है कि कुछ नाचूं औ गाऊं।

राजा : ठीक है मैं भी नाचूंगा—गाऊंगा तुम प्रारम्भ करो।

[मन्त्री उठ कर राजा का हाथ पकड़ कर गिरता-पड़ता नाचता और गाता है]

पी ले अवधू के मतवाले प्याला प्रेम हरी रस का रे।
तननुं तननुं तननुं तननुं में गाने का है चसका रे॥
निनि धध पप मम गग रिरि सासा भर ले सुर अपने बस का रे।
धिधिकट धिधिकट धिधिकट धाधा बजे मृदंग थाप कस का रे॥

पी ले अवधू के...।
भट्ठी नहिं सिल लोढ़ा नहीं घोरघार।
पलकन की फेरन में चढ़त धुआंधार॥
पी ले अवधू के...।
कलवारिन मदमाती काम कलोल।
भरि भरि देत पियलवा महा ठठोल॥
पी ले अवधू के...।
अरी गुलाबी गाल को लिए गुलाबी हाथ।
मोहि दिखाव मद की झलक छलक पियालो साथ॥
पी ले अवधू के...।
बहार आई है भर दे बादए गुलगूं से पैमाना।
रहै लाखों बरस साकी तेरा आबाद मैखाना॥
संभल बैठो अरे मस्तो जरा हुशियार हो जाओ।
कि साकी हाथ में मै का लिए पैमाना आता है।
उड़ाता खाक सिर पर झूमता मस्ताना आता है।
पी ले अवधू के...अहां अहां अहां॥

यह अठरंग है लोग चतुरंग ही गाते हैं। न जाय न जाय मो सों मदना भरीलो न जाय तब फिर कहां से—ड्रिंक डीप ऑर टेस्ट नॉट द पीर्यान स्प्रिंग।

Drink deep or taste not the pierian spring

पी ले अवधू के मतवाले प्याला प्रेम हरा रस का रे।

एक दूसरे के सिर पर धौल मार कर ताल देकर नाचते हैं। फिर एक पुरोहित का सिर पकड़ता है दूसरा पैर और उस को लेकर नाचते हैं।

[जवनिका गिरती है]

●

चौथा अंक

स्थान–यमपुरी।

[यमराज बैठे हैं और चित्रगुप्त पास खड़े हैं]

[चार दूत, राजा, पुरोहित, मन्त्री गंडकीदास, शैव और वैष्णव को पकड़ कर लाते हैं]

पहला दूत : **(राजा के सिर में धौल मारकर)** चल बे चल, अब यहां तेरा राज नहीं हैं कि छत्र चंवर होगा, फूल से पैर रखता है, चल भगवान् यम के सामने और अपने पाप का फल भुगत, बहुत कूद कूद के हिंसा की और मदिरा पी, सौ सोनार की न एक लोहार की।

[दो धौल और लगाता है]

दूसरा दूत : **(पुरोहित को घसीट कर)** चलिए पुरोहितजी, दक्षिणा, लीजिए, वहां आप ने चक्र पूजन किया था, यहां चक्र में आप चलिए। देखिए बलिदान का कैसा बदला लिया जाता है।

तीसरा दूत : **(मन्त्री की नाक पकड़ कर)** चल बे चल, राज के प्रबन्ध के दिन गये, जूती खाने के दिन आए, चल अपने किए का फल ले।

चौथा दूत : **(गंडकीदास का कान पकड़ कर झोंका देकर)** चल रे पाखंडी, चल, यहां लंबा टीका काम न आवेगा। देख वह सामने पाखंडियों का मार्ग देखने वाले सर्प मुंह खोले बैठे हैं।

[सब यमराज के सामने जाते हैं]

यमराज : **(वैष्णव और शैव से)** आप लोग यहां आकर मेरे पास बैठिए।

वैष्णव और शैव : जो आज्ञा। **[यमराज के पास बैठ जाते हैं]**

यमराज : चित्रगुप्त, देखो तो इस राजा ने कौन कौन कर्म्म किए हैं।

चित्रगुप्त : **(बही देख कर)** महाराज, सुनिए, यह राजा जन्म से पाप में रत रहा, इस ने धर्म्म को अधर्म्म माना और अधर्म्म को धर्म्म माना, जो जी चाहा किया और उस की व्यवस्था पंडितों से ले ली, लाखों जीव का इस ने नाश किया और हजारों घड़े मदिरा के पी गया पर आड़

सर्व्वदा धर्म्म की रखी—अहिंसा, सत्य, शौच, दया, शान्ति और तप आदि सच्चे धर्म्म इस ने एक न किए, जो कुछ किया वह केवल वितंडा, कर्म—जाल किया, जिस में मांस भक्षण और मदिरा पीने को मिलै, और परमेश्वर प्रीत्यर्थ इस ने एक कौड़ी भी नहीं व्यय की, जो कुछ व्यय किया सब नाम और प्रतिष्ठा पाने के हेतु।

यमराज : प्रतिष्ठा कैसी, धर्म्म और प्रतिष्ठा से क्या सम्बन्ध?

चित्रगुप्त : महाराज, सर्कार, अंगरेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उस को "स्टार ऑफ इंडिया" की पदवी मिलती है।

यमराज : अच्छा! तो बड़ा ही नीच है, क्या हुआ मैं तो उपस्थित ही हूं—

"अन्तः प्रछन्न पापानां शास्ता वैवस्वतो यमः"।

भला पुरोहित के कर्म्म तो सुनाओ।

चित्रगुप्त : महाराज यह शुद्ध नास्तिक है। केवल दम्भ से यज्ञोपवीत पहने है, यह तो इसी श्लोक के अनुरूप है—

अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले॥[1]

इसने शुद्ध चित्त से ईश्वर पर कभी विश्वास नहीं किया, जो जो पक्ष राजा ने उठाए उस का समर्थन करता रहा और टके टके पर धर्म्म छोड़ कर इस ने मनमानी व्यवस्था दी, दक्षिणा मात्र दे दीजिए फिर जो कहिए उसी में पंडितजी की सम्मति है, केवल इधर उधर कमंडलाचार करते इस का जन्म बीता और राजा के संग से मांस मद्य का भी बहुत सेवन किया, सैकड़ों जीव अपने हाथ से बध कर डाले।

यमराज : अरे, यह तो बड़ा दुष्ट है। क्या हुआ, मुझ से काम पड़ा है, यह बच्चाजी तो ऐसे ठीक होंगे जैसा चाहिए, अब तुम मन्त्रीजी के चरित्र कहो।

चित्रगुप्त : महाराज, मन्त्रीजी की कुछ न पूछिए। इस ने कभी स्वामी का भला नहीं किया, केवल चुटकी बजाकर हां में हां मिलाया, मुंह पर स्तुति पीछे निन्दा, अपना घर बनाने से काम, स्वामी चाहे चूल्हे में पड़े, घूस लेते जन्म बीता, मांस और मद्य के बिना इस ने न और धर्म्म जाने न कर्म्म जाने—यह मन्त्री की व्यवस्था है, प्रजा पर कर लगाने में तो पहले सम्मति दी पर प्रजा के सुख का उपाय एक भी न किया।

यमराज : भला ये श्रीगंडकीदासजी आए हैं इन का पवित्र चरित्र पढ़ो कि सुन कर कृतार्थ हों, देखने में तो बड़े लम्बे लम्बे तिलक दिए हैं।

चित्रगुप्त : महाराज, ये गुरु लोग हैं, इन के चरित्र कुछ न पूछिए, केवल दम्भार्थ

---

1. भीतर शाक्त, बाहर शैव और सभा बीच वैष्णव ऐसे अनेक रूपधारी दुष्ट पृथ्वी पर विचरण करते हैं।

इन का तिलक, मुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इन की पूजा, कभी भक्ति से मूर्ति को दंडवत न किया होगा पर मन्दिर में जो स्त्रियां आईं उन को सर्व्वदा तकते रहे; महाराज, इन्होंने अनेकों को कृतार्थ किया है और समय तो मैं श्रीरामचन्द्रजी का, श्रीकृष्ण का दास हूं पर जब स्त्री सामने आवै तो उससे कहैंगे मैं राम तुम जानकी, मैं कृष्ण तुम गोपी और स्त्रियां भी ऐसी मूर्ख कि फिर इन लोगों के पास जाती हैं, हा! महाराज, ऐसे पापी धर्म्मवंचकों को आप किस नरक में भेजिएगा!

[नेपथ्य में बड़ा कल कल होता है]

यमराज : कोई दूत जाकर देखो यह क्या उपद्रव है!

पहला दूत : जो आज्ञा। **(बाहर जाकर फिर आता है)** महाराज संयमनीपुर की प्रजा बड़ी दुःखी है, पुकार करती है कि ऐसे आज कौन पापी नरक में आए हैं जिनके अंग के वायु से हम लोगों का सिर घूमा जाता है और अंग जलता है। इनको तो महाराज शीघ्र ही नरक में भेजे नहीं तो हम लोगों के प्राण निकल जायंगे।

यमराज : सच है, ये ऐसे ही पापी हैं, अभी मैं इनका दंड करता हूं, कह दो घबड़ाएं न।

पहला दूत : जो आज्ञा। **[बाहर जाकर फिर आता है]**

यमराज : **(राजा से)** तुझ पर जो दोष ठहराए गये हैं बोल उसका क्या उत्तर देता है!

राजा : **(हाथ जोड़ कर)** महाराज, मैंने तो अपने जान सब धर्म्म ही किया कोई पाप नहीं किया, जो मांस खाया वह देवता, पितर को चढ़ा कर खाया और देखिए महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मणों ने भूख के मारे गोवध कर के खा लिया और श्राद्ध कर लिया था इस से कुछ नहीं हुआ।

यमराज : कुछ नहीं हुआ, लगैं इस को कोड़े।

दूसरा दूत : जो आज्ञा। **(कोड़े मारता है)**

राजा : **(हाथ से बचा बचा कर)** हाय हाय, दुहाई दुहाई, सुन लीजिए—

सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालंजरे गिरौ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ॥[1]

यह वाक्य लोग श्राद्ध के पहिले श्राद्ध शुद्ध होने को पढ़ते हैं। फिर

1. दशार्ण वन में सात व्याधे, कालंजर गिरि पर मृग, शरद्वीप में चक्रवाक मानसरोवर में हंस और कुरुक्षेत्र में वेदज्ञ ब्राह्मण हुए। अब वे (अर्थात् उनमें से चार) दूर मार्ग पर चले गये और तुम (अर्थात् तीन) क्यों कष्ट सह रहे हो?

मैंने क्या पाप किया? अब देखिए, अंगरेजों के राज्य में इतनी गोहिंसा होती है सब हिन्दू बीफ खाते हैं उन्हें आप नहीं दंड देते और हाय, हम से धार्म्मिक की यह दशा! दुहाई वेदों की, दुहाई धर्म्म शास्त्र की, दुहाई व्यासजी की, हाय रे, मैं इनके भरोसे मारा गया।

यमराज : बस चुप रहो, कोई है? यह अन्धतामिस्र नामक नरक में जायगा। अभी इस को अलग रक्खो।

पहला दूत : जो आज्ञा महाराज। **[पकड़-खींच कर एक ओर खड़ा करता है]**

यमराज : **(पुरोहित से)** बोल बे ब्राह्मणाधम! तू अपने अपराधों का क्या उत्तर देता है?

पुरोहित : **(हाथ जोड़ कर)** महाराज, मैं क्या उत्तर दूंगा; वेद, पुराण सब उत्तर देता है।

यमराज : लगें कोड़े; दुष्ट वेद, पुराण का नाम लेता है।

दूसरा दूत : जो आज्ञा। **(कोड़े मारता है)**

पुरोहित : दुहाई दुहाई, मेरी बात को सुन लीजिए। यदि मांस खाना बुरा है तो दूध क्यों पीते हैं? दूध भी तो मांस ही है; और अन्न क्यों खाते हैं अन्न में भी तो जीव है; और वैसे ही सुरापान बुरा है तो वेद में सोमपान क्यों लिखा है, और महाराज, मैंने तो जो बकरे खाये वह जगदम्बा के सामने बलि देकर खाये, अपने हेतु कभी हत्या नहीं की और न अपने राजा साहब की भांति मृगया की। दुहाई, ब्राह्मण व्यर्थ पीसा जाता है। और महाराज, मैं अपनी गवाही के हेतु बाबू राजेन्द्रलाल के दोनों लेख देता हूं, उन्होंने वाक्य और दलीलों से सिद्ध कर दिया है कि मांस की कौन कहे गोमांस खाना और मद्य पीना कोई दोष नहीं, आगे के हिन्दू सब खाते पीते थे। आप चाहिए एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल मंगा के देख लीजिए।

यमराज : बस चुप, दुष्ट! जगदम्बा कहता है और फिर उसी के सामने उसी जगत के एक बकरे को अर्थात् उसके पुत्र ही को बलि देता है। अरे दुष्ट, अपनी अम्बा कह, जगदम्बा क्यों कहता है। क्या बकरा जगत के बाहर है? चांडाल सिंह को बलि नहीं देता ''अजापुत्रं बलिं दद्याद्दैवोदुर्बलघातकः''। कोई है? इस को सूचीमुख नामक नरक में डालो। दुष्ट कहीं का वेद, पुराण का नाम लेता है। मांस, मदिरा खाना पीना है तो यों ही खाने में किसने रोका है! धर्म्म को बीच में क्यों डालता है? बांधो!

दूसरा दूत : जो आज्ञा महाराज। **[बांध कर एक ओर खड़ा करता है]**

यमराज : **(मन्त्री से)** बोल बे, तू अपने अपराधों का क्या उत्तर देता है?

मन्त्री : **(आप ही आप)** मैं क्या उत्तर दूं, यहां तो सब बात बेरंग है। इन भयावनी मूर्त्तियों को देख कर प्राण तो सूखे जाते हैं उत्तर क्या दूं। हाय हाय, इन के ऐसे बड़े बड़े दांत हैं कि मुझे तो एक ही कवर कर जायंगे।

यमराज : बोल जल्दी।

तीसरा दूत : **(एक कोड़ा मार कर)** बोलता है कि नहीं?

मन्त्री : **(हाथ जोड़ कर)** महाराज, अभी सोच कर उत्तर देता हूं। **(कुछ सोच कर, चित्रगुप्त से)** आप मुझे एक बेर राज्य पर भेज दीजिए, मैंने जितना धन बड़ी बड़ी कठिनाई और बड़े बड़े अधर्म्म से एकत्र किया है सब आप को भेंट करूंगा; और मैं निरपराधी कुटुम्बी हूं। मुझे छोड़ दीजिए।

चित्रगुप्त : **(क्रोध से)** अरे दुष्ट, यह भी क्या मृत्युलोक की कचहरी है कि तू हमें घूस देता है और क्या हम लोग वहां के न्यायकर्त्ताओं की भांति जंगल से पकड़ कर आए हैं कि तुम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते। जहां तू आया है और जो गति तेरी है वही घूस लेनेवालों की भी होगी।

यमराज : **(क्रोध से)** क्या यह दुष्ट द्रव्य दिखाता है? भला रे दुष्ट! कोई है इस को पकड़ कर कुम्भीपाक में डालो।

तीसरा दूत : जो आज्ञा महाराज। **(पकड़ कर खींचता है)**

यमराज : अब आप बोलिए बाबाजी, आप अपने पापों का क्या उत्तर देते हैं?

गंडकीदास : मैं क्या उत्तर दूंगा। पाप पुन्य जो करता है ईश्वर करता है, इस में मनुष्य का क्या दोष है–

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन सर्व्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया॥[1]

मैं तो आज तक सर्व्वदा अच्छा ही करता रहा।

यमराज : कोई है? लगैं कोड़े दुष्ट को, अब ईश्वर फल भी भुगतैगा। हाय! हाय! ये दुष्ट दूसरों की स्त्रियों को मां और बेटी कहते हैं और लम्बा लम्बा टीका लगा कर लोगों को ठगते हैं।

चौथा दूत : महाराज, यह किस नरक में जायगा! **(कोड़े मारता है)**

गंडकीदास : हाय, हाय! दुहाई, अरे कंठी, टीका कुछ काम न आया। अरे, कोई नहीं है जो इस समय बचावै।

यमराज : यह दुष्ट रौरव नरक में जायगा जहां इस को ऐसे ही अनेक धर्म्मवंचक मिलैंगे। ले जाओ सबको।

[चारों दूत चारों को पकड़ कर घसीटते और मारते हैं और चारों चिल्लाते हैं]

---

1. हे अर्जुन! सभी प्राणियों के हृदय में ईश्वर निवास करता है। माया से सब जीव यन्त्र पर आरूढ़ व्यक्ति के समान घूमता है।

चारों : अरे 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'।
हाय रे 'अग्निष्टोमे पशुमालभेत्।'[1]
अरे बाप रे ''सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्।''[2]
भैया रे 'श्रोतं ते शुंधामि।'[3]
[यही कह कर चिल्लाते हैं और दूत लोग उनको घसीट कर मारते मारते ले जाते हैं।]

यमराज : (शैव और वैष्णव से) आप लोगों की अकृत्रिम भक्ति से ईश्वर ने आप को कैलास और बैकुंठ वास की आज्ञा दी है सो आप लोग जाइए और अपने सुकृत का फल भोगिए। आप लोगों ने इन धर्म्मवंचकों की दशा तो देखी ही है, देखिए पापियों की यह गति होती है और आप से सुकृतियों को ईश्वर प्रसन्न होकर सामीप्य मुक्ति देता है सो लीजिए, आप लोगों को परम पद मिला। बधाई है, कहिए इस से भी विशेष कोई आप का हित हो तो मैं पूर्ण करूं।

शैव और वैष्णव : (हाथ जोड़ कर) भगवन्, इस से बढ़कर और हम लोगों का क्या हित होगा। तथापि यह नाटकाचार्य्य भरतऋषि का वाक्य सफल हो।

निज स्वारथ को धरम दूर या जग सों होई।
ईश्वर पद मैं भक्ति करैं छल बिनु सब कोई॥
खल के विष बैनन सों मत सज्जन दुख पावैं।
छुटै राजकर मेघ समय पै जल बरसावैं॥
कजरी ठुमरिन सों मोड़ि मुख सत कविता सब कोई कहैं।
यह कवि बानी बुध बदन में रवि ससि लों प्रगटित रहैं॥

[सब जाते हैं]

[जवनिका गिरती है]

इति

[भारतेन्दु का यह प्रहसन सन 1873 ई. में मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से छपा था। इसके पूर्ण होने की सूचना 21 जून, 1872 के 'कविवचनसुधा' में छप चुकी थी। इस प्रहसन को 1884 ई. में भारत जीवन प्रेस ने भी छापा था। नाटक के समर्पण (DEDICATION) पर जो तिथि दी गयी है उससे स्पष्ट है कि यह संवत् 1930 के प्रारम्भ में लिखा गया था। —सम्पादक]

---

1. अग्निष्टोम यज्ञ में पशु बलि दें।
2. सौत्रामण्य यज्ञ में मदिरा पीएं।
3. तुम्हारे काक पवित्र करता हूं।

पांचवें पैगम्बर

सन 1873 ई.

पांचवें पैगम्बर
(चूसा)

लोगो दौड़ो, मैं पांचवां पैगम्बर हूं, दाऊद, ईसा, मूसा, मुहम्मद ये चार हो चुके। मेरा नाम चूसा पैगम्बर है, मैं विधवा के गर्भ से जनमा हूं और ईश्वर अर्थात् खुदा की ओर से तुम्हारे पास आया हूं इस्से मुझ पर ईमान लाओ नहीं तो ईश्वर के कोप में पड़ोगे।

मुझ को पृथ्वी पर आए बहुत दिन हुए पर अब तक भगवान का हुक्म नहीं था इस्से मैं कुछ नहीं बोला, बोलना क्या बल्कि जानवर बना घात लगाए फिरता था और मेरा नाम लोगों ने हूश, बन्दर लंका की सैना और मलेच्छ रक्खा था पर अब मैं उन्हीं लोगों का गुरु हूं क्योंकि ईश्वर की आज्ञा ऐसी है इस्से लोगो ईमान लाओ।

जैसे मुहम्मदादि के अनेक नाम थे वैसे ही मेरे भी तीन नाम हैं, मुख्य चूसा पैग़म्बर, दूसरा डबल और तीसरा सुफैद और पूरा नाम मेरा श्रीमान् आनरेबल हजरत डबल सफैद चूसा अलैहुस्सलाम पैगम्बर आखिर कुन जमां है।

मुझ को कोहतूर पर खुदा ने जल्वा दिखलाया और हुकुम दिया कि मैंने पैगम्बर किया तुझ को, तू लोगों को ईमान में ला, दाऊद ने बेला बजा के मुझे पाया तू हारमोनियम बजावैगा, मूसा ने मेरी खुदाई रौशनी से कोहतूर जलाया तू आप अपनी रौशनी से जमाने को जला कर काला करैगा, ईसा मर के जिया था तू मरा हुआ जीता रहैगा, मुहम्मद ने चांद को बीच में से काटा तू चांद का कलंक मिटा अपना टीका बनावैगा।

(खुदा कहता है) देख मूर्त्तिपूजन अर्थात् बुतपरस्ती को जमाने से उठा देना क्योंकि मैंने हाफ् सिविलाइज्ड किया दुनिया को पूरा तुझ को; जो शराब सब पैगम्बरों पर हराम थी मैंने हलाल किया तेरे पर, बल्कि तेरे मजहब की निशानी है जो मेरे आसमान पर आने के बाद रूए जमीन पर कायम रहैगी क्योंकि "यद्यपि तेरा राज्य सर्व्वदा न रहैगा पर यह मत यहां सर्व्वदा दृढ़ रहैगा"।

(खुदा कहता है) मैंने हलाल किया तुझ पर गऊ, सूअर, मेंढक, कुत्ता वगैरह सब जानवर जो कि हराम है; मैंने हलाल किया तुझ पर, अपने मजहब के वास्ते झूठ बोलना और हुकुम दिया तुझ को औरतों की इज्जत करने और उन को अपने बराबर

हिस्सा देने की बल्कि यारों के संग जाने की; और सिवाय पब्लिक प्लेसों के कोहतूर पर जहां मैंने जलवा दिखाया तुझ को तीन आरामगाह फरिश्तों से बनवा कर तुझे बख्शीं और तुझ पर हलाल कीं जिन तीनों का नाम कुर्सी, झुर्सी और दगली है।

(खुदा कहता है) देख, खबरदार, मुंह वगैरह किसी बदन को साफ न रखना नहीं तो तुझे शैतान बहका देंगे, लिबास सियाह हमेशा पहिरना और मेरी याद में सिर खुला रखना।

मैं खुदा के इन हुक्मों को मान कर तुम्हारे पास आया हूं, मेरा कहा मानो और ईमान लाओ मैं खुदा का प्यारा पुत्र, माशूक जोरू, नायब नहीं हूं बल्कि खुदा का दूसरा हूं? वह इज्जत किसी पैगम्बर को नहीं मिली थी।

लोगो! मेरा कहा मानो खुदा मुझ से डरता है क्योंकि मैं प्रच्छन्न नास्तिक हूं पर पैगम्बरिन के डर से आस्तिक हो गया हूं इस से खुदा को हमेशा हमारी दलीलों से अपने उड़ जाने का डर रहता है तो जब खुदा मुझ से डरता है तब उस के बन्दो तुम मुझ से बहुत ही डरो।

मेरे प्यारे अंग्रेजो! तुम खौफ मत करो मैं तुम सब को गुनाहों से बरी कराऊंगा क्योंकि नाशिनैलिटी बड़ी चीज है। पैगम्बरिन और तुम्हारा रंग एक है इस से मैं तुम्हारे पापों को छिपा दूंगा।

प्यारे मुसलमानो! मैं कुछ तुम से डरता हूं क्योंकि तुम को मार डालने में देर नहीं लगती इस से मैं तुम्हारी बेहतरी के वास्ते अपनी धर्म पुस्तक में लिख जाऊंगा कि हमारे सक्सेंसर[1] लोग तुम्हारी खातिर करैं तुम्हारे न पढ़ने पर अफसोस करैं और तुम्हारे वास्ते स्कूल और कालिज बनावैं।

मगर मेरे मेमने हिन्दुओ! तुम को मैं सब प्रकार नीच समझूंगा क्योंकि यह वह देश है जो ईश्वर के क्रोध रूप अग्नि से जल रहा है और जलैगा और ईश्वर के कोप से तुम्हारा नाम जीते हुए, हाफसिबिलाइज्ड[2] रुड,[3] काफिर बुतपरस्त, अंधेरे में पड़े हुए बारबरूस,[4] वाजिबुलू कत्ल[5] होगा।

देखो हम भविष्य बानी कहते हैं तुम रोते और फिर टकराते भागते भागते फिरौगे, बुद्धि सीखते ही नहीं, बल नाश हो चुका है एक केवल धन बचा है सो भी सब निकल जायगा, यहां महंगी पड़ैगी, पानी न बरसैगा, हैजा, डेंगू वगैरह नये नये रोग फैलैंगे, परस्पर का द्वेष और निन्दा करना तुम्हारा स्वभाव हो जायगा, आलस छा जायगी, तब तुम उस के कोप अग्नि से जल के खाक के सिवा कुछ न बचोगे।

पर प्यारे! जो मुझ सच्चे पैगम्बर पर ईमान लावैगा वह छुड़ाया जायगा क्योंकि मैं खुशामद पसन्द और घूस लेने वाला जाहिरा[6] नहीं हूं मैं ईश्वर का सच्चा पैगम्बर और दुनिया का सच्चा बादशाह हूं क्योंकि सूरज को खुदा ने रौशनी मेरे लिए इनायत

---

1. उत्तराधिकारी, 2. अर्द्धसभ्य, 3. उद्दंड, 4. जंगली, 5. मार डालने के योग्य, 6. प्रकट में।

की, चांद में ठंढक सिर्फ मेरे लिए बख्शी गई और जमीन, आसमान मेरे लिए पैदा किया बल्कि फरिश्ते भी मेरे ही लिए बनाए गए।

ईमान लाओ मुझ पर, डाली चढ़ाओ मुझ को, जूता उतार के आओ मेरी मजारे पाक[1] पर, पगड़ी पहन कर आओ मेरे मकबरे में, इनाम दो इन को और धक्का खाओ उन का जो मेरे मुजाबिर[2] हैं क्योंकि वे मूजिब होंगे तुम्हारी नजात के, और जो कुछ मैं कहूं उसे सुन कर हजूर, साहब बहुत ठीक फरमाते हैं, बजाइरशाद, बेशक, ठीक है, सत्त बचन, जा आज्ञा जो आज्ञा जो आज्ञा, इस में क्या शक, ऐसा ही है, मेरे मालिक, मेरे बाबाजान, सब सच्च फरमाते हो—कहो क्योंकि जो मैं कहता हूं वह ईश्वर कहता है; और मेरे अनादरों को सहो अगर मेरी दरगाह में तुम्हें गरदनियां दी जाया तो उस की कुछ लाज मत करो फिर घुसो क्यौकि मेरी दरगाह से निकलना दुनिया से निकल जाना है।

देखो शराब पियो, विधवा विवाह करो, बालापाठशाला करो, आगे से लेने जाओ, बाल्यविवाह उठाओ, जाति भेद मिटाओ, कुलीन का कुल सत्यानाश में मिलाओ, होटल में खाओ, लव[3] करना सीखो, स्पीच दो, क्रिकेट खेलो, शादी में खर्च कम करो, मेम्बर बनो, दरबारदारी करो, पूजा पत्री करो, चुस्त चालाक बनो, हम नहीं जानते को हम नहीं जानता कहो, चक्करदार टोपी पहिनो वा सिरे खुला रक्खो पर पौशाक सब तंग रक्खो, नाच, बाल,[4] थियेटर अंटा गुड़गुड़ बंक प्रिवी सिवी घरों में जाओ क्यौंकि ये काम मुजिब होंगे खुदा और मेरी खुशी के।

शराब पियो, कुछ शंका मत करो, देखो मैं पीता हूं क्यौंकि यह खुदा का खून है जो उस ने मुझे पिलाया और मैंने दुनिया को और यह उस के दोनों बादशाहत की निशानी है जो बाद मेरे बहुत दिनों तक कायम रहैगी क्यौंकि उस ने हुक्म दिया है कि औरों की तरह तू मकान बहुत पक्का न बनवा क्यौंकि दुनिया खुद नापायदार[5] है मगर मेरे खून के बोतलों के टुकड़े जो कि (खुदा कहता है) मेरी हड्डियां हैं बहुत दिनों तक न गलैंगी और मेरे सच्चे राज की निशानी कायम रहैगी।

देखो मेरा नाम चूसा है क्योंकि मैं सब का पाप रूपी पैसा चूस लेता हूं क्यौंकि खुदा ने फरमाया है कि मेरे बन्दे पैसों के बहकाने से गुनाह करते हैं अगर उन के पास पैसा न रहै तो खुद गुनाह न करैं इस्से तू सब से पहिले इन का पैसा चूस ले।

मेरा दूसरा नाम डबल है क्योंकि डबल हिन्दी में पैसे को कहते हैं और अंग्रेजी में दूने को और पच्छिम में उस बर्तन को जिस्में घी वा अनाज निकाला जाता है और मेरा तीसरा नाम सुफैद है क्योंकि मैं रौशनी वखशने वाला हूं और दिल मेरा साफ चिट्टा चमकीला चीनी की जात है और चमड़ा मेरा गोरा है और भी मैं सुफैद

1. पवित्र कब्र, 2. पंडा, 3. प्रेम, 4. नाचघर, 5. आधारहीन।

करूंगा लोगों को अपने दीन की चांदनी से इनलाइटेंड[1] कर के।

मेरे पहाड़ का नाम कोहतूर है क्योंकि मैं सब के पापी दिलों को और पापों को तथा प्रेजुडिसों[2] को लोगों के बल और धन को चूर करूंगा, और मेरी पहली आरामगाह कुर्सी है क्योंकि अब वहां की आबहवा साफ होकर बेवकूफी की शिकायत रफा हो गई और दूसरी झुरसी है जहां जलती आग पर मेरे से पैगम्बर के सिवा दूसरा नहीं बैठ सकता और तीसरी दगली है उस में चारों ओर दगल[3] भरा है और बीच में मेरा सिंहासन है।

जहां पर खुदा ने हलाल किया है शराब बीफ, मटन, बग्गी, दगल, फसल, नैशनीलिटी[4] लालटैन, कोट, बूट, छड़ी, जेबीघड़ी, रेल, धुंआकाश, विधवा, कुमारी, परकीया, चाबुक, चुरुट, सड़ी मछली, सड़ी पनीर, सड़े अंचार, मुंह की बू, अधो भाग के केश, बिना पानी के मल धोना, रूमाल, मौसी, मामी, बुआ, चाची में अपनी बेटी पोतियों के, कजिन फ्रेंड,[5] लेपालट की बहू, खानसामा खानसामिन, हुक्का-थुक्का, लुक्का-बुक्का और आजादी को और हराम किया बुतपरस्ती बेईमानी, सच बोलना, इनसाफ करना, धोती पहरना, तिलक लगाना, कंठी पहरना, नहाना, दतुअन करना, स्वच्छन्द होना, उदार होना, निर्भय होना, कथा, पुरान, जातिभेद, बाल्यविवाह, भाई वा मां वा पिता के साथ रहना, मूर्त्तिपूजन तथा आर्थोडाक्स[6] की सुहबत, सच्ची प्रीत, परस्पर उपकार, आपस का मेल बुरी बातें घातें लातें फातें छातें और प्रेजुडिस को।

लोगो! दौड़ो ईमान लाओ मुझ पर, देखो पीछे पछताओगे और हाथ मलते रह जाओगे मैं ईश्वर का प्यारा दूसरा और पांचवां पैगम्बर केवल तुम्हारे उद्धार के वास्ते पृथ्वी पर आया हूं ईमान लाओ मुझ पर हुकुम मानो मेरा, दहिना हाथ जो तुम लोगों के सामने उठा है खुदा का हाथ है इस को सिजदा करो, झुको अदब करो, ईमान लाओ और इस शराब को खुदा का खून समझ कर पिओ पिओ पिओ।

[हरिश्चन्द्र मैगजीन 15 दिसम्बर, 1873 ई.]

---

1. प्रकाशित, 2. अन्धविश्वासों, 3. कपट, 4. जातीयता, 5. चचेरे भाई बहन मित्र, 6. कट्टर

प्रेमजोगिनी

(नाटिका)

सन 1874 ई.

प्रेमजोगिनी

(नाटिका)

श्री हरिश्चन्द्रलिखिता

सन 1874 ई.

बैठकर सैर मुल्क की करना।
यह तमाशा किताब में देखा॥

प्रेमजोगिनी

(नाटिका)

[नान्दी मंगलपाठ करता है]

भरित नेह नवनीर नित बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर॥

और भी—

जिन तृन सम किय जानि जिय कठिन जगत जंजाल।
जयतु सदा सो ग्रन्थ कवि प्रेमजोगिनी बाल॥

[मलिन मुख किए सूत्रधार और पारिपार्श्वक आते हैं]

सूत्रधार : **(नेत्र से आंसू पोंछ और ठंडी सांस भर कर)** हा! कैसे ईश्वर पर विश्वास आवै।

पारिपार्श्वक : मित्र, आज तुम्हें क्या हो गया है और क्या बकते हो और इतने उदास क्यों हो।

[सूत्रधार के नेत्र से जल की धारा बहती है और रोकने से भी नहीं रुकती]

पारिपार्श्वक : **(अपने गले से सूत्रधार को लगा कर और आंसू पोंछ कर)** मित्र, आज तुम्हें हो क्या गया है? यह क्या सूझी है? क्या आज लोगों को यही तमाशा दिखाओगे?

सूत्रधार : हो क्या गया है! क्या मैं झूठ कहता हूं? इस से बढ़ कर और दुःख का विषय क्या होगा कि मेरा आज इस जगत् के कर्त्ता और प्रभु पर से विश्वास उठा जाता है और सच है क्यों न उठे, यदि कोई हो तब न उठे? हा! क्या ईश्वर है तो उस के यही काम हैं जो संसार में हो रहे हैं? क्या उस की इच्छा के बिना भी कुछ होता है? क्या लोग दीनबन्धु दयासिन्धु उस को नहीं कहते? क्या माता-पिता के सामने पुत्र की, स्त्री के सामने पति की और बन्धुओं से सामने

बन्धुओं की मृत्यु उस की इच्छा बिना ही होती है? क्या सज्जन लोग विद्यादि गुण से अलंकृत हो कर भी उस की इच्छा बिना ही दुखी होते हैं और दुष्ट मूर्खों के अपमान सहते हैं, केवल प्राण मात्र नहीं त्याग करते पर उन की सब गति हो जाती है। क्या इस कमल वनरूप भारत भूमि को दुष्ट गजों ने उस की इच्छा बिना ही छिन्न-भिन्न कर दिया? क्या जब नादिर-चंगेज खां ऐसे निर्दयों ने लाखों निर्दोषी जीव मार डाले तब वह सोता था? क्या अब भारतखंड के लोग ऐसे कापुरुष और दीन उस की इच्छा के बिना ही हो गए? हा! **(आंसू बहते हैं)** लोग कहते हैं कि ये उस के खेल हैं। छिः ऐसे निर्दय को भी लोग दयासमुद्र किस मुंह से पुकारते हैं?

पारिपार्श्वक : इतना क्रोध एक साथ मत करो। यह संसार तो दुःख रूप आप ही है। इस में सुख का तो केवल आभास मात्र है।

सूत्रधार : आभास मात्र है—तो फिर किसने यह बखेड़ा बनाने और पचड़ा फैलाने को कहा था? उस पर भी न्याय करने और कृपालु बनने का दावा!

[आंख भर आती है।]

पारिपार्श्वक : आज क्या है? किस बात पर इतना क्रोध किया है? भला यहां ईश्वर का निर्णय करने आए हो कि नाटक खेलने आए हो?

सूत्रधार : क्या नाटक खेलें क्या न खेलें! लो इसी खेल ही में देखो। क्या सारे संसार के लोग सुखी रहें और हम लोगों का परम बन्धु पिता, मित्र, पुत्र सब भावनाओं से भावित, प्रेम की एकमात्र मूर्ति, सत्य का एक मात्र आश्रय, सौजन्य का एकमात्र पात्र, भारत का एकमात्र हित, हिन्दी का एकमात्र जनक, भाषा नाटकों का एकमात्र जीवनदाता, हरिश्चन्द्र ही दुखी हो **(नेत्र में जल भर कर)** हा सज्जनशिरोमणे! कुछ चिन्ता नहीं तेरा तो बाना है कि कितना भी 'दुख हो उसे सुख ही मानना' लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्ति तक का परित्याग कर दिया है और जगत् से विपरीत गति चलके तूने प्रेम की टकसाल खड़ी की है। क्या हुआ तो निर्दय ईश्वर तुझे प्रत्यक्ष आकर अपने अंक में रख कर आदर नहीं देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निन्दा करते हैं और तू संसारी वैभव से सूचित नहीं है। तुझे इस से क्या, प्रेमी लोग जो तेरे और तू जिन्हें सरबस है वे जब जहां उत्पन्न होंगे तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरी रहन-सहन को अपनी जीवन-पद्धति समझेंगे। **(नेत्रों से आंसू गिरते हैं)** मित्र! तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हो, तुम्हें इन की निन्दा से क्या? इतना चित्त क्यौं क्षुब्ध करते

हो? स्मरण रक्खो ये कीड़े ऐसे ही रहैंगे और तुम लोक वहिष्कृत हो कर भी इन के सिर पर पैर रख के विहार करोगे। क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए–

''कहैंगे सबैं ही नैन नीर भरि भरि पाछे
प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जायगी''

मित्र, मैं जानता हूं कि तुम पर सब आरोप व्यर्थ हैं! हा! बड़ा विपरीत समय है।

[नेत्र से आंसू बहते हैं]

पारिपार्श्वक : मित्र, जो तुम कहते हो सो सब सत्य है पर काल भी तो बड़ा प्रबल है। कालानुसार कर्म्म किए बिना भी तो काम नहीं चलता।

सूत्रधार : हां न चले तो हम लोग काल के अनुसार चलैंगे, कुछ लोकोत्तर चरित्र थोड़े ही काल के अनुसार चलैगा।

पारिपार्श्वक : पर उसका परिणाम क्या होगा?

सूत्रधार : क्या कोई परिणाम होना अभी बाकी है? हो चुका जो होना था।

पारिपार्श्वक : तो फिर आज जो ये लोग आए हैं सो यही सुनने आए हैं?

सूत्रधार : तो ये सब सभासद तो उस के मित्रवर्गों में हैं और जो मित्रवर्गों में नहीं हैं उन का जी भी उसी की बातों में लगता है ये क्यौं न इन बातों को आनन्दपूर्व्वक सुनैंगे।

पारिपार्श्वक : परन्तु मित्र बातों ही से तो काम न चलैगा न। देखो ये हिन्दी भाषा में नाटक देखने की इच्छा से आए हैं; इन्हें कोई खेल दिखाओ।

सूत्रधार : आज मेरा चित्त तो उन्हीं के चरित्र में मगन है। आज मुझे और कुछ नहीं अच्छा लगता।

पारिपार्श्वक : तो उन के चरित्र के अनुरूप ही कोई नाटक करो।

सूत्रधार : ऐसा कौन नाटक है? यों तो सभी नायकों के चरित्र किसी किसी विषय में उन से मिलते हैं पर आनुपूर्व्वी चरित्र कैसे मिलैगा।

पारिपार्श्वक : मित्र 'मृच्छकटिक' हिन्दी में खेलो क्यौंकि उस के नायक चारुदत्त का चरित्रमात्र इन से सब मिलता है। केवल वसन्तसेना और राजा की हानि है।

सूत्रधार : तो फिर भी आनुपूर्व्वी न हुआ और पुराने नाटक खेलने में इन का जी भी न लगेगा कोई नया खेलैं।

पारिपार्श्वक : **(स्मरण कर के)** हां हां, वह नाटक खेलो जो तुम उस दिन उद्यान में उन से सुनते थे–वह उन के और इस घोर काल के बड़ा ही अनुरूप है। उस के खेलने से लोगों को वर्त्तमान समय का ठीक

नमूना दिखाई पड़ैगा और वह नाटक भी नई-पुरानी दोनों रीति मिल के बना है।

सूत्रधार : हां हां प्रेमजोगिनी—अच्छी सूरत पड़ी—तो चलो यों ही सही। इसी बहाने उनका स्मरण करैं।

पारिपार्श्वक : चलो

[दोनों जाते हैं]

[अर्द्ध जवनिका पतन]

॥इति प्रस्तावना॥

प्रथम अंक

पहिले गर्भांक के पात्र

टेकचन्द	:	एक महाजन बनिये
छक्कूजी	:	वही
माखनदास	:	वैष्णव बनिया
धनदास	:	नाम के वैष्णव
बनितादास	:	नाम के वैष्णव
मिश्र	:	कीर्तन करनेवाला
झापटिया	:	कोड़ा मार कर मन्दिर की भीड़ हटाने वाला
जलधरिया	:	पानी भरने वाला
बालमुकुन्द, मलजी	:	दो भाई मुलतानी वैष्णव
रामचन्द्र	:	नायक
दो गुजराती		

●

पहिला अंक

पहिला गर्भांक

स्थान--मन्दिर का चौक

[झापटिया इधर-उधर घूम रहा है]

झापटिया : आज अभी तक कोई दरसनी-परसनी नहीं आये और कहां तक अभहिन तक मिसरो नहीं आए अभहीं तक नींद न खुली होइहैं। खुलै कहां से आधी रात तक बाबू किहां बैठ के ही ही ठी ठी करा चाहै, फिर सबेरे नींद कैसे खुलै।

[दोहर माथे में लपेटे आंखें मलते मिश्र आते हैं–देख कर]

झापटिया : का हो मिसिरजी तोरी नींद नहीं खुलती। देखो शंखनाद होय गवा मुखिया जी खोजत रहे।

मिसिरजी : चले तो आई थे। अधियै रात के शंखनाद होय तौ हम का करैं! तोरे तरह से हमहू के घर में से निकस के मन्दिर में घुस आवना होता तो हमहू जल्दी अउते। हियां तो दारानगर से आवना पड़त है। अबहीं सुरजौ नाहीं उगे।

झापटिया : भाई सेवा बड़ी कठिन है, लोहे का चना चबाए के पड़थै, फोकटै थोरे होथी।

मिसिरजी : भवा चलो अपना काम देखो।

[बैठ जाता है। स्नान किये तिलक लगाये दो गुजराती आते हैं]

पहिला : मिसिरजी, जय श्रीकृष्ण! कहो का समय है।

मिसिरजी : अच्छी समय है मंगला की आधी समय है बैठो।

पहिला : अच्छा मथुरादास जी वैसी जाओ। (बैठते हैं)

[एक धोती पहिने और एक धोती ओढ़े छक्कूजी आते हैं और उसी बेस में माखनदास भी आते हैं]

छक्कूजी : **(माखनदास की ओर देख कर)** काहो माखनदास एहर आवो।

माखनदास : **(आगे बढ़ कर हाथ जोड़ कर)** जै श्रीकृष्ण साहब।

छक्कूजी : जै श्रीकृष्ण! बैठो, कहो आजकल बाबू रामचन्द्र का क्या हाल है।

माधवी : हाल जौन है, तौन आप जनतै हौ, दिन दूना रात चौगूना। अभई कल्हौ हम ओ रस्ते रात के आवत रहे तो तबला ठनकत रहा। बस रात-दिन हा हा ठी ठी बहुत भवा दुइ चार कवित्त बनाय लिहिन बस होय चुका।

छक्कूजी : अरे कवित्त तो इनके बापौ बनावत रहे। कवित्त बनावै से का होथै और कवित्त बनावा कुछ अपने लोगन का काम थोरे हय। ई भांटन का काम है।

माखनदास : ई तो हई हैं पर उन्हें तो ऐसी सेखी है कि सारा जमाना मूरख है और मैं पंडित। थोड़ा सा कुछ पढ़-वढ़ लिहिन हैं।

छक्कूजी : पढ़िन का हैं पढ़ा-वढ़ा कुछ भी नहिनी। एहर-ओहर की दुइ-चार बात सीख लिहिन किरिस्तानी मते की, अपने मारग की बात तो कुछ जनबै नाहीं कतैं अबहीं कल के लड़का हैं।

माखनदास : और का।

[बालमुकुन्द और मलजी आते हैं]

दोनों : **(छक्कू की ओर देख कर)** जय श्रीकृष्ण बाबू साहेब।

छक्कूजी : जय श्रीकृष्ण, आओ बैठो, कहो नहाय आयो।

बालमुकुन्द : जी भय्याजी का तो नेम है कि बड़े सबेरे नहा कर फूलघर में जाते हैं तब मंगला के दर्शन करके तब घर में जाय कर सेवा में नहाते हैं और मैं तो आजकल कार्तिक के सबब से नहाता हूं तिस पर भी देर हो जाती है। रोकड़ मेरे जिम्मे काकाजी ने कर रक्खा है इस से बिध, बिध मिलाते देर हो जाती है। फिर कीर्तन होते प्रसाद बंटते ब्यालू-वालू करते बारह कभी एक बजते हैं।

छक्कूजी : अच्छी है जो निबही जाय। कहो कातिक नहाये बाबू रामचन्द जाथैं कि नाहीं!

बालमुकुन्द : क्यौं जाते क्यौं नहीं अब की दोनों भाई जाते हैं कभी दोनों साथ, कभी आगे पीछे कभी इन के साथ मसाल कभी उन के, मुझ को अकशर कर के जब मैं जाता हूं तब वह नहाकर आते रहते हैं।

छक्कूजी : मसाल काहे ले जाथैं मेहरारुन का मुंह देखै के?

बालमुकुन्द : **(हंस कर)** यह मैं नहीं कह सकता।

छक्कूजी : कहो मलजी आज फूलघर में नाहीं गयो हिंअई बैठ गयो?

माखनदास : आज देर हो गई दर्शन कर के जाऊंगा।

छक्कूजी : तोरे हियां ठाकुर जी जागे होहिहैं कि नाहीं?

माखनदास : जागे तो न होंगे पर अब तैयारी होगी। मेरे हियां तो स्त्रियां जगाकर

मंगल भोग धर देती हैं। फिर जब मैं दर्शन कर के जाता हूं तो भोग लगा कर आरती करता हूं।

छक्कूजी : कहो तोसे रामचन्द से बोलाचाली है कि नाहीं?

माखनदास : बोलचाल तो है पर अब वह बात नहीं है। आगे तो दर्शन करने का सब उत्सवों पर बुलावा आता था अब नहीं आता। तिस्में बड़े साहब तो ठीक ठीक, छोटे चित्त के बड़े खोटे हैं।

(नेपथ्य में) गरम जल की गागर लाओ।

झापटिया : **(गली की ओर देख कर जोर से)** अरे कौन जलधरिया। एतनी देर भई अभहीं तोरे गागर लिआवै की बखत नाहीं भई?

[सड़सी से गरम जल की गगरी उठाए सनिया लपेटे जलधरिया आता है]

झापटिया : कहो जगेसर ई नाहीं कि जब शंखनाद होय तब झटपट अपने काम से पहुंच जावा करो।

जलधरिंया : अरे चल्ले तो आवथई का भहराय पड़ी का सुत्तल थोड़े रहली। हमहूं के झापट कन्धे पर रख के एहर ओहर घूमे के होत तब न। इहां तो गगरा ढोवत ढोवत कन्धा छिल जाला।

[यह कहि कर जाता है]

[मैली धोती पहिने दोहर सिर में लपेटे टेकचन्द आये]

टेकचन्द : **(मथुरादास की ओर देख कर)** कहो मथुरादास जी रूडा छो?

मथुरादास : हां साहेब, अच्छे हैं। कहिये तो सही आप इतने बड़े उच्छव में कलकत्ते से नहीं आये। हियां बड़ा सुख हुआ था, बहुत से महाराज लोग पधारे थे। षट रुत छपन भोग में बड़े आनन्द हुए।

टेकचन्द : भाई साहब, अपने लोगन का निकास घर से बड़ा मुसकिल है। एक तो अपने लोगन का रेल के सवारी से बड़ा बखेड़ा पड़ता है।, दूसरे जब जौन काम के वास्ते जाओ जब तक ओका सब इन्तजाम न बैठ जाय तब तक हुंवा जाय से कौन मतलब है और कौन सुख? तो भाई साहब, श्री गिरिराजजी महाराज के आगे जो जो देखा है सो अब सपने में भी नहीं है। अहा! वह श्री गोविन्दरायजी के पधारने का सुख कहां तक कहैं।

[धनदास और बनितादास आते हैं]

धनदास : कहो यार का तिगथौ?

बनितादास : भाई साहेब, बड़ी देर से देख रहे हैं, कोई पच्छी नजर नहीं आया।

धनदास : भाई साहेब, अपने तो ऊ पच्छी काम का जे भोजन सोजन दूनो दे।

बनितादास : तोहरे सिद्धान्त से भाई साहेब हमारा काम तो नहीं चलता।

धनदास : तबै न सुरमा घुलाए के आंख पर चरणामृत लगाए हौ जे में पलक बाजी खूब चलै, हां एक पलक एहरो।

बनितादास : (हंस कर) भाई साहेब अपने तो वैष्णव आदमी हैं, वैष्णविन से काम रक्खित है।

धनदास : तो भला महाराज के कबौं समर्पन किए हौ कि नाहीं?

बनितादास : कौन चीज?

धनदास : अरे कोई चौकाली ठुल्ली मावड़ी पामरी ठोली अपने घरवाली।

बनितादास : अरे भाई गोसइयन पर तो ससुरी सब आपै भहराई पड़ी थीं। पवित्र होवै के वास्ते, हम का, पहुंचैबै।

धनदास : गुरु, इन सबन का भाग बड़ा तेज है, मालो लूटैं मेहररुवो लूटैं।

बनितादास : भाई साहेब, बड़ेन का नाम बेचथैं और इन सबन में कौन लच्छन हैं, न पढ़ना जानैं न लिखना। रात दिन हा हा ठी ठी इहै है कि और कुछ?

धनदास : और गुरु इन के बदौलत चार जीवन के और चैन है एक तो भट दूसरे इन के सरबस खवास, तिसरे बिरकत और चौथी बाई।

बनितादास : कुछ कहै की बात नाहीं है। भाई मन्दिर में रहै से स्वर्ग में रहै। खाए के अच्छा पहिरै के परसादी से महाराज कब्बौं गाढ़ा तो पहिरबै न करियैं, मलमल नागपुरी ढांकै पहिरियै, अतरै फुलेल, केसर, परसादी बीड़ा चाभो सब से सेवकी ल्यौ, ऊपर से ऊ बात का सुख अलगै है।

धनदास : क्या कहैं भाई साहेब! हमरो जनम हियंई होता।

बनितादास : अरे गुरु गली गली तो मेहरारू मारी फिरथीं तौहें एहू पर रोनै बना है। अब तो मेहरारू टके सेर है। अच्छे अच्छे अमीरनौ के घर की तो पैसा के वास्ते हाथ फैलावत फिरथीं।

धनदास : तो गुरु, हम तो ऊ तार चाही थै, जहां से उलटा हमैं कुछ मिलै।

बनितादास : भाग होय तो ऐसियो मिल जायं। देखो लाड़ली प्रसाद के और बच्चू के ऊ नागरनी और बम्हनिया मिली हैं कि नाहीं!

धनदास : गुरु, हियां तो चाहे मूंड़ मुड़ाये हो चाहे मुंह में एक्को दांत न होय पताली खोल होय, पर जो हाथफेर दे सो काम की।

बनितादास : तोहरी हमरी राय ई बात में न मिलिए।

[रामचन्द्र ठीक उन दोनों के पीछे का किवाड़ खोल कर आता है]

छक्कूजी : (धीरे से मुंह बना के) ई आएं।

[सब लोगों से जय श्रीकृष्ण होती है]

बालमुकुन्द : **(रामचन्द्र को अपने पास बैठा कर)** कहिए बाबू साहेब, आजकल तो आप मिलते ही नहीं क्या खबगी रहती है?

रामचन्द्र : भला आप जैसे मित्र से कोई खफा हो सकता है? यह आप कैसी बात कहते हैं?

बालमुकुन्द : कार्तिक नहाना होता न है?

रामचन्द्र : (हंस कर) इसमें भी कोई सन्देह है!

बालमुकुन्द : हं हं हं, फिर आप तो जो काम करैंगे एक तजवीज के साथ ऐं।

[रामचन्द्र का हाथ पकड़ के हंसता है]

रामचन्द्र : भाई ये दोनों (**धनदास और बनितादास को दिखा कर**) बड़े दुष्ट हैं। मैं किवाड़ी के पीछे खड़ा सुनता था। घंटों से ये स्त्रियों ही की बात करते थे।

बालमुकुन्द : यह भवसागर है। इस में कोई कुछ बात करता है, कोई कुछ बात करता है। आप इन बातों का कहां तक ख्याल कीजिएगा ऐं! कहिए कचहरी जाते हैं कि नहीं?

रामचन्द्र : जाते हैं कभी कभी—जी नहीं लगता, मुफत की बेगार और फिर हमारा हरिदास बाबू का साथ कुकुर-झौंझौं, हुज्जते-बंगाल, माथा खाली कर डालते हैं। खांव खांव करके, थूक थूक के, बीभत्स रस के आलंबन, सूर्य्यनन्दन—

बालमुकुन्द : (**हंस कर**) उपमा आप ने बहुत अच्छी दिया है। और कहिए और अंधरी मजिस्टरों[1] का क्या हाल है?

रामचन्द्र : हाल क्या है सब अपने अपने रंग में मस्त हैं। काशी परसाद अपना कोठीवाली ही में लिखते हैं सहजादे साहब तीन घंटे में एक सतर लिखते हैं उस में भी सैकड़ों गलती। लक्ष्मीसिंह और शिवसिंह अच्छा काम करते हैं और अच्छा प्रयागलाल भी करते हैं; पर वह पुलिस के शत्रु हैं। और विष्णुदास बड़े 'कनिंप चैप' (cunning chap) हैं। दीवानराम हई नहीं, बाकी रहे फिजिशियन सो वे तो अंगरेज ही हैं, पर भाई कई मूर्खों को बड़ा अभिमान हो गया है, बात बात में तपाक दिखाते और छह महीने को भेज दूंगा कहते हैं।

बालमुकुन्द : मैं कनम चाप नहीं समझा।

रामचन्द्र : कनिंग चैप माने कुटीचर!

[नेपथ्य में]

श्री गोविन्दरायजी की श्री मंगला खुली

[सब दौड़ते हैं]

[जवनिका गिरती है]

इति मंदिरादर्श नामक प्रथम गर्भांक

●

1. आनरेरी मजिस्ट्रेटों।

दूसरे गर्भांक के पात्र

दलाल	
गंगापुत्र	तीर्थस्थ ब्राह्मण
भंडेरिया	लिंगिया
दुकानदार	
सुधाकर	रामचन्द्र (नाटक के नायक) का मुसाहब
झूरी सिंह	बदमाश
परदेशी	

दूसरा गर्भांक

स्थान—गैबी, पेड़, कूआं, पास बावली

[दलाल, गंगापुत्र, दुकानदार, भंडेरिया और झूरी सिंह बैठे हैं]

दलाल : कहो गहन यह कैसा बीता? ठहरा भोग बिलासी—
माल वाल कुछ मिला, या हुआ कोरा सत्यानाशी?
कोई चूतिया फंसा या नहीं? कोरे रहे उपासी?

गंगागापुत्र : **मिलै न काहे भैया, गंगा मैया दौलत दासी।**
हम से पूत कपूत की दाता मनकनिका सुखरासी।
भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी॥

दुकानदार : परदेसियौ बहुत रहे आए?

गंगापुत्र : और साल से बढ़ कर।

भंडेरिया : पितर सौंदनी रही न अमसिया,

झूरी सिंह : रंग है पुराने झंझर। खूब बचा ताड़्यो, का कहना, तूं हौ चूतिया हंटर।

भंडेरिया : हम न तड़बै तो के तड़िये? यही तो किया जनम भर॥

दलाल : जो हो, अब की भली हुई यह अमावसी पुनवासी।

गंगापुत्र : भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी।

झूरी सिंह : यार लोग तो रोजै कड़ाका करथैं ऐ पैजामा।

गंगापुत्र : ई तो झूठ कह्यौ, सिंहा।

झूरी सिंह : तू सच बोल्यो, मामा।

गंगापुत्र : **तौहैं का, तू मारपीट के करथौ अपना कामा।**
कोई का खाना, कोई की रंडी, कोई का पगड़ी जामा॥

झूरी सिंह : ऊ दिन खीपट दूर गए अब सोरहो दंड एकासी।

गंगापुत्र : भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी॥

झूरी सिंह : जब से आए नए मजिस्टर तब से आफत आई।
जान छिपावत फिरीथैं खटमल—

दुकानदार : ई तो सच है भाई॥

झूरी सिंह : ई है ऐसा तेज गुरु बरसन के देथै लदाई।
गोविन्द पालक मेकलौडो से एकी जबर दोहाई॥
जान बचावत छिपत फिरीथै घुस गई सब बदमासी।

गंगापुत्र : भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी॥

झूरी सिंह : तोरे आंख में चरवी छाई मार न पायो गोजर।
कैसी दून की सूझ रही है असमानों के उप्परा॥
तर न भए हौ पैदा करके, धर के माल चुतरे तर।
वछिया के बाबा, पंड़िया के ताऊ, घुसनि के घुसघुस झरझर॥
कहां की ई तूं बात निकास्यो खासी सत्यानासी।
भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी॥

[गाता हुआ एक परदेशी आता है]

परदेशी : देखी तुमरी कासी, लोगो, देखी तुमरी कासी।
जहां विराजैं विश्वनाथ विश्वेश्वरजी अविनासी॥
आधी कासी भाट भंडेरिया बाम्हन और संन्यासी।
आधी कासी रंड़ी मुंडी रांड़ खानगी खासी॥
लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे बे-विसवासी।
महा आलसी झूठे शुहदे बे फिकरे बदमासी॥
आप काम कुछ कभी करैं नहिं कोरे रहैं उपासी।
और करे तो हंसैं बनावैं उसको सत्यानासी॥
अमीर सब झूठे औ निंदक करें घात विश्वासी।
सिपारसी डरपुकने सिट्टू बोलैं बात अकासी॥
मैली गली भरी कतवारन सड़ी चमारिन पासी।
नीचे नल से बदबू उबलै मनो नरक चौरासी॥
कुत्ते भूंकत काटन दौड़ैं सड़क सांड़ सों नासी।
दौड़ैं बंदर बने मुछन्दर कूदे चढ़े अगासी॥
घाट जाओ तो गंगापुत्तर नोचैं दै गल फांसी।
करैं घाटिया बस्तर-मोचन दे दे के सब झांसी॥
राह चलत भिखमंगे नोचैं बात करैं दाता सी।
मन्दिर बीच भंडेरिया नोचैं करैं धरम की गांसी॥
सौदा लेत दलालो नोचैं दे कर लासालासी।
माल लिए पर दुकानदार नोचैं कपड़ा दे रासी॥
चोरी भए पर पुलिस नोचैं हाथ गले बिच ढांसी।
गए कचहरी अमला नोचैं मोचि बनावैं घासी॥

फिरैं उचक्का दे दे धक्का लूटैं माल मवासी।
कैद भए की लाज तनिक नहिं बेसरमी नंगा सी॥
साहेब के घर दौड़े जावैं चंदा देहिं निकासी।
चढ़ैं बुखार नाम मन्दिर का सुनतहि होंय उदासी॥
घर की जोरू लड़के भूखे बने दास औ दासी।
दाल की मंड़ी रंडी पूजैं मानो इनकी मासी॥
आप माल कचरैं छानैं उठि भोरहिं कागाबासी।
बाप के तिथि दिन बाम्हन आगे धरैं सड़ा औ बासी॥
करि बेवहार साक बांधै बस पूरी दौलत दासी।
घालि रूपैया काढ़ि दिवाला माल डेकारैं ठांसी॥
काम कथा अमृत सी पीयैं समुझैं ताहि बिलासी।
रामनाम मुंह से नहिं निकसै सुनतहि आवै खांसी॥
देखी तुमरी कासी भैया, देखी तुमरी कासी।

झूरी सिंह : कहो ई सरवा अपने शहर की एतनी निन्दा कर गवा। तूं लोग कुछ बोलत्यौं नाहीं?

गंगापुत्र : भैया, अपना तो जिजमांन है। अपने न बोलैंगे चाहे दस गारी भी दे ले।

भंडेरिया : अपनो जिजमानै ठहरा।

दलाल : और अपना भी गाहकै है।

दुकानदार : और भाई हमहूं चार पैसा एके बदौलत पावाहै।

झूरी सिंह : तूं सब का बोलबो तूं सब निरे दब्बू चप्पू हौ, हम बोलबै। (परदेसी से) ए चिड़िया बावली के परदेसी फरदेसी। कासी की बहुत निन्दा मत करो। मुंह बस्सैये, का कहैं के साहिब मजिस्टर हैं नाहीं तो निन्दा करना निकास देते।

परदेशी : निकास क्यौं देते? तुम ने क्या किसी का ठीका लिया है?

झूरी सिंह : हां हां, ठीका लिया है मटियाबुर्ज।

परदेसी : तो क्या हम झूठ कहते हैं?

झूरी सिंह : राम राम, तू भला कबौं झूठ बोलबो। तू तो निरे पोथी के बेठन हौ।

परदेसी : बेठन क्या?

झूरी सिंह : बे ते मत करो गप्पों के, नाहीं तो तोरी अरबी फारसी घुसेड़ देबै।

परदेसी : तुम तो भाई अजब लड़ाके हो, लड़ाई मोल लेते फिरते हो। बे ते किसने किया है? यह तो अपनी अपनी राय है कोई किसी को अच्छा कहता है कोई बुरा कहता है। इस से बुरा क्या मानना।

झूरी सिंह : सच है पनचोरा, तू कहै सो सच्च, बुड्ढी तू कहे सो सच्च।

परदेसी : भाई अजब शहर है, लोग बिना बात ही लड़े पड़ते हैं।

[सुधाकर आता है]

[सब लोग आशीर्वाद, दंडवत, आओ आओ शिष्टाचार करते हैं]

गंगापुत्र : भैया इन के दम के चैन है। ई अमीरन के खेलउना हैं।

झूरी सिंह : खेलउना का हैं टाल, खजानची खिदमतगार सबै कुछू हैं।

सुधाकर : तुम्हैं साहब चर्रिए बूकना आता है।

झूरी सिंह : चर्री का, हमहन झूठ बोलील :, अरे बखत पड़े पर तूं रंड़ी ले आवः मंगल के मुजरा मिले ओमें दस्तूरी काट :, पैर दाब : रुपया पैसा अपने पास रक्ख :, यारन के दूरै से झांसा बताव :। ऐ! ले गुरु तोहीं कह : हम झूठ कहथई।

गंगापुत्र : अरे भैया, बिचारे ब्राह्मण कोई तरह से अपना कालच्छेप करथैं ब्राह्मण अच्छे हैं।

भंडेरिया : हां भाई न कोई के बुरे में, न भले में और इन में एक बड़ी बात है कि इन की चाल एक रंगै हमेसा से देखी थै।

गंगापुत्र : और साहब एक अमीर के पास रहै से इन की चार जगह जान पहिचान होय गई। अपनी बात अच्छी बनाय लिहिन है।

दुकानदार : हां भाई, बजार में भी इन की साख बंधी है।

सुधाकर : भया भया, यह पचड़ा जाने दो; कहो यह नई मूरत कौन है?

झूरी सिंह : गुरु साहेब, हम हियां भांग का रगड़ा लगावत रहे, बीच में गहन के मारे-पीटे ई धूआंकस आय गिरे।

आके पिंजड़े में फंसा अब तो पुराना चंडूल।
लगी गुलसन की हवा दुम का हिलाना गया भूल॥

[परदेसी के मुंह के पास चुटकी बजाता है और नाक के पास से उंगली लेकर दूसरे हाथ की उंगली पर घुमाता है]

परदेसी : भाई तुम्हारे शहर सा तुम्हारा ही शहर है, यहां की लीला ही अपरम्पार है।

झूरी सिंह : तोहूं लीला करथौ।

परदेसी : क्या?

झूरी सिंह : नहीं ई जे तोहूं रामलीला में जाथौ कि नाहीं?

[सब हंसते हैं]

परदेसी : **(हाथ जोड़ कर)** भाई तुम जीते हम हारे, माफ करो।

झूरी सिंह : **(गाता है)** तुम जीते हम हारे साधो, तुम जीते हम हारे।

सुधाकर : **(आप ही आप)** हा! क्या इस नगर की यही दशा रहैगी? जहां के लोग ऐसे मूर्ख हैं वहां आगे किस बात की वृद्धि की संभावना करैं! केवल यह मूर्खता छोड़ इन्हें कुछ आता ही नहीं! निष्कारण किसी को बुरा भला कहना। बोली ही बोलने में इन का परम पुरुषार्थ!

अनाब शनाब जो मुंह में आया बक उठे। न पढ़ना न लिखना! हाय! भगवान इनका कब उद्धार करैगा!!

झूरी सिंह : गुरु, का गुड़बुड़-गुड़बुड़ जपथौ?

सुधाकर : कुछ नाहीं भाई यही भगवान का नाम।

झूरी सिंह : हां भाई, संझा भई, एह बेरा टें टें न किया चाहिए राम राम की बखत भई तो चलो न गुरु।

सब : चलो भाई।

[जवनिका गिरती है]

●

तीसरा गर्भांक

स्थान—मुगलसराय का स्टेशन

[मिठाईवाले, खिलौनेवाले, कुली और चपरासी इधर उधर फिरते हैं। सुधाकर, एक विदेशी पंडित और दलाल बैठे हैं]

दलाल : **(बैठ के पान लगाता है)** या दाता राम! कोई भगवान से भेंट कराना।

विदेशी पंडित : **(सुधाकर से)** आप कौन हैं। कहां से आते हैं?

सुधाकर : मैं ब्राह्मण हूं, काशी में रहता हूं और लाहोर से आता हूं।

विदेशी पंडित : क्या आप का घर काशीजी ही में है?

सुधाकर : जी हां।

विदेशी पंडित : भला काशी कैसा नगर है?

सुधाकर : वाह! आप काशी का वृत्तान्त अब तक नहीं जानते। भला त्रैलोक्य में और दूसरा ऐसा कौन नगर है जिस को काशी की समता दी जाय।

विदेशी पंडित : भला कुछ वहां की शोभा हम भी सुनैं?

सुधाकर : सुनिए, काशी का नामान्तर वाराणसी है जहां भगवती जह्नुनन्दिनी उत्तरवाहिनी होकर धनुषाकार तीन ओर से ऐसी लपटी हैं मानो इस को शिव की प्यारी जानकर गोद में लेकर आलिंगन कर रही हैं और अपने पवित्र जलकण के स्पर्श से तापत्रय दूर करती हुई मानुषमात्र को पवित्र करती हैं। उसी गंगा के तट पर पुण्यात्माओं के बनाए बड़े बड़े घाटों के ऊपर दोमंजिले, चौमंजिले, पंचमंजिले और सतमंजिले ऊंचे ऊंचे घर आकाश से बातें कर रहे हैं मानो हिमालय के श्वेत शृंग सब गंगा सेवन करने को एकत्र हुए हैं। उस में भी माधोराय के दोनों धरहरे तो ऐसे दूर से दिखाई देते हैं; मानो बाहर के पथिकों को काशी अपने दोनों हाथ ऊंचे करके बुलाती है। सांझ सवेरे घाटों पर असंख्य स्त्री पुरुष नहाते हुए, ब्राह्मण लोग संध्या वा शास्त्रार्थ करते हुए, ऐसे दिखाई देते हैं मानो कुबेरपुरी की अलकनन्दा में किन्नरगण और ऋषिगण अवगाहन करते हैं और नगाड़ा नफीरी शंख घंटा झांझ स्तव और जय का तुमुल शब्द ऐसा गूंजता है मानो

पहाड़ों की तराई में मयूरों की प्रतिध्वनि हो रही है। उस में भी जब कभी दूर से सांझ की वा बड़े सबेरे नौबत की सुहानी धुन कान में आती है तो कुछ ऐसी भली मालूम पड़ती है कि एक प्रकार की झपकी सी आने लगती है और घाटों पर सबेरे धूप की झलक और सांझ को जल में घाटों की परछाहीं की शोभा भी देखते ही बन आती है।

जहां व्रज ललना लालित चरण युगल पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्द घन बासुदेव आप ही श्री गोपालेलाल रूप धारण करके प्रेमियों को दर्शन मात्र से कृतकृत्य करते हैं, और भी बिन्दुमाधवादि अनेक रूप से अपने नाम धाम के स्मरण, दर्शन, चिन्तनादि से पतितों को पावन करते हुए विराजमान हैं।

जिन मन्दिरों में प्रातःकाल, संध्या समय दर्शनिकों की भीड़ जमी हुई है, कहीं कथा, कहीं हरिकीर्तन, कहीं नामकीर्तन, कहीं नाटक कहीं भगवत लीला अनुकरण इत्यादि अनेक कौतुकों के मिस से भी भगवान के नाम गुण में लोग मग्न हो रहे हैं।

जहां तारकेश्वर, विश्वेश्वरादि नामधारी भगवान भवानीपति तारकब्रह्म का उपदेश करके तनत्याग मात्र से ज्ञानियों को भी दुर्लभ अपुनर्भव परम मोक्षपद—मनुष्य पशु कीट पतंगादि आपामर जीवमात्र को देकर उसी क्षण अनेक कल्पसंचित महापापपुंज भस्म कर देते हैं।

जहां अन्धे, लंगड़े, लूले, बहरे, मूर्ख और निरुद्यम आलसी जीवों को भी भगवती अन्नपूर्णा अन्न वस्त्रादि देकर माता की भांति पालन करती हैं।

जहां अब तक देव, दानव, गंधर्व्व, सिद्ध, चारण, विद्याधर, देवर्षि, राजर्षिगण और सब उत्तम उतम तीर्थ—कोई मूर्त्तिमान, कोई छिपकर और कोई रूपान्तर कर के नित्य निवास करते हैं।

जहां मूर्तिमान सदाशिव प्रसन्न वदन आशुतोष सकलसद्गुणैकरत्नाकर, विनयैकनिकेतन, निखिल विद्याविशारद, प्रशान्तहृदय, गुणिजनसमाश्रय, धार्मिकप्रवर, काशीनरेश महाराजाधिराज श्रीमदीश्वरीप्रसादनारायणसिंह बहादुर और उन के कुमारोपम कुमार श्री प्रभुनारायणसिंह बहादुर दान धर्म्मसभा रामलीलादि के मिस धर्मोन्नति करते हुए और असत् कर्म्म नीहार को सूर्य्य की भांति नाशते हुए पुत्र की तरह अपनी प्रजा का पालन करते हैं।

जहां श्रीमती चक्रवर्तिनिचयपूजितपादपीठा श्रीमती महारानी विक्टोरिया के शासनानुवर्ती अनेक कमिश्नर, जज, कलेक्टरादि अपने अपने काम

में सावधान प्रजा को हाथ पर लिये रहते हैं और प्रजा उन के विकट दंड के सर्व्वदा जागने के भरोसे नित्य सुख से सोती है।

जहां राजा शम्भूनारायणसिंह बाबू फतहनारायणसिंह बाबू गुरुदास बाबू माधवदास विश्वेश्वरदास राय, नारायणदास इत्यादि बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनिक तथा श्री बापूदेव शास्त्री, श्रीबाल शास्त्री से प्रसिद्ध पंडित, श्रीराजा शिवप्रसाद, सैयद अहमद खां बहादुर ऐसे योग्य पुरुष, मानिकचन्द मिस्तरी से शिल्पविद्या निपुण, वाजपेयीजी से तन्त्रीकार, श्रीपंडित बेचनजी, शीतलजी, श्रीताराचरण से संस्कृत के और सेवक हरिश्चन्द्र से भाषा के कवि बाबू अमृतलाल, मुंशी गन्नूलाल, मुंशी श्यामसुन्दरलाल से शास्त्रव्यसनी और एकान्तसेवी, श्रीस्वामी विश्वरूपानन्द से यति, श्रीस्वामी विशुद्धानन्द से धर्म्मोपदेष्टा, दातृगणैकाग्रगण्य श्रीमहाराजाधिराज विजयनगराधिपति से विदेशी सर्व्वदा निवास कर के नगर की शोभा दिन दूनी रात चौगुनी करते हैं।

जहां क्वींस कॉलिज (जिसके भीतर बाहर चारों ओर श्लोक और दोहे खुदे हैं), जयनारायण कॉलिज से बड़े बंगाली टोला, नार्मल और लंडन मिशन से मध्यम तथा हरिश्चन्द्र स्कूल से छोटे तथा महाराज काश्मीर और महाराज दरभंगा की पाठशालादि अनेक विद्यामन्दिर है, जिन में संस्कृत, अंगरेजी, हिन्दी, फारसी, बंगला, महाराष्ट्री की शिक्षा पाकर प्रतिवर्ष अनेक विद्यार्थी विद्योत्तीर्ण होकर प्रतिष्ठालाभ करते हैं; इन के अतिरिक्त पंडितों के घर में तथा हिन्दी, फारसी पाठकों की निज शाला में अलग ही लोग शिक्षा पाते हैं, और राय शंकटाप्रसाद के परिश्रमोत्पन्न पबलिक लाइब्रेरी, मुंशी शीतलप्रसाद का सरस्वती-भवन, कारमाइकेल लाइब्रेरी, बंगसाहित्य समाज, बाल सरस्वती भवन, हरिश्चन्द्र का सरस्वती भंडार इत्यादि अनेक पुस्तक-मन्दिर हैं, जिन में साधारण लोग सब विद्या की पुस्तकें देखने पाते हैं।

जहां मानसमन्दिर ऐसे यन्त्रभवन, सारनाथ की धमेक से प्राचीनावशेष चिह्न, विश्वनाथ के मन्दिर का वृषभ और स्वर्ण शिखर, राजा चेतसिंह के गंगा पार के मन्दिर, कश्मीरीमल की हवेली और क्वींस कालिज की शिल्पविद्या और माधोराय के धरहरे की ऊंचाई देखकर विदेशी जन सर्व्वदा चकित रहते हैं।

जहां महाराज विजयनगर के तथा सरकार के स्थापित स्त्री विद्यामन्दिर, औषधालय, अन्धभवन, उन्मत्तागार इत्यादिक लोकद्वयसाधक अनेक कीर्तिकर कार्य्य हैं वैसे ही चूड़वाले इत्यादि महाजनों का सदावर्त्त और श्री महाराजाधिराज सेंधिया आदि के अटल सत्र से ऐसे अनेक दीनों

के आश्रयभूत स्थान हैं जिन में उन को अनायास ही भोजनाच्छादन मिलता है।

जहां नारायण भट्टजी का और शेष और धर्माधिकारी पंडितों का वंश, अहोबल शास्त्री, जगन्नाथ शास्त्री, गोस्वामी श्री गिरिधरजी, पंडित काकाराम, पंडित मायादत्त, पंडित हीरानन्द चौबे, काशीनाथ शास्त्री, पंडित भवदेव, पंडित सुखलाल और भी जिन का नाम इस समय मुझे स्मरण नहीं आता अनेक ऐसे ऐसे धुरन्धर पंडित हुए हैं, जिन की विद्या मानों मंडन मिश्र की परम्परा पूरी करती थी।

जहां विदेशी अनेक तत्त्ववेत्ता धार्मिक धनीजन घर-बार कुटुम्ब देश विदेश छोड़ कर निवास करते हुए तत्त्वचिन्ता में मग्न सुख-दुःख भुलाए संसार को यथारूप में देखते सुख से निवास करते हैं। आत्मानन्द, हंसजी को देख लीजिए।

जहां पंडित लोग विद्यार्थियों को ऋक, यजुः, साम, अथर्व, महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण, स्मृति, न्याय, व्याकरण, सांख्य, पातंजल, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, शैव, वैष्णव, अलंकार, साहित्य, ज्योतिष इत्यादि शास्त्र सहज पढ़ाते हुए मूर्तिमान गुरु और व्यास से शोभित काशी की विद्यापीठता सत्य करते हैं।

जहां भिन्न देशनिवासी आस्तिक विद्यार्थीगण परस्पर देव मन्दिरों में, घाटों पर, अध्यापकों के घर में, पंडित सभाओं में वा मार्ग में मिल कर शास्त्रार्थ करते हुए अनर्गल धारा प्रवाह संस्कृत भाषण से सुनने वालों का चित्त हरण करते हैं।

जहां स्वर लय छंद मात्रा, हस्तकंपादि से शुद्ध वेदपाठ की ध्वनि से जो मार्ग में चलते वा घर बैठे सुन पड़ती है, तपोवन की शोभा का अनुभव होता है।

जहां द्रविड़, मगध, कान्यकुब्ज, महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब, गुजरात इत्यादि अनेक देश के लोग परस्पर मिले हुए अपना-अपना काम करते दिखते हैं और वे एक एक जाति के लोग जिन मुहल्लों में बसे हैं वहां जाने से ऐसा ज्ञान होता है मानो उसी देश में आए हैं जैसे बंगाली टोले में ढाके का, लहौरी टोले में अमृतसर का और ब्रह्माघाट में पूने का भ्रम होता है।

जहां निराहार, पयाहार, यताहार, भिक्षाहार, रक्ताम्बर, श्वेताम्बर, नीलाम्बर, चर्म्माम्बर, दिगम्बर, दंडी, संन्यासी, ब्रह्मचारी, योगी, यती, सेवड़ा, फकीर, सुथरेसाई, कनफटे, ऊर्ध्वबाहु, गिरि, पुरी, भारती, वन, पर्वत, सरस्वती, किनारामी, कबीरी, दादूपंथी, नान्हकसाही, उदासी, रामानंदी, कौल, अघोरी, शैव, वैष्णव, शाक्त गाणपत्य, सौर इत्यादि

हिन्दू और ऐसे ही अनेक भांति के मुसलमान फकीर नित्य इधर से उधर भिक्षा उपार्जन करते फिरते हैं और इसी भांति सब अन्धे, लंगड़े, लूले, दीन, पंगु, असमर्थ लोग भी भिक्षा पाते हैं, यहां तक कि आधी काशी केवल दाता लोग के भरोसे नित्य अन्न खाती है। जहां हीरा, मोती, रुपया, पैसा, कपड़ा, अन्न, घी, तेल, अतर, फुलेल, पुस्तक-खिलौने इत्यादि की दुकानों पर हजारों लोग काम करते हुए मोल लेते, बेचते दलाली करते दिखाई पड़ते हैं।

जहां की बनी कमखाब बाफता, हमरू, समरू, गुलबदन, पोत, बनारसी साड़ी, दुपट्टे पीताम्बर, उपरने, चोलखंड, गोंटा, पट्ठा इत्यादि अनेक उत्तम वस्तुएं देशविदेश जाती हैं और जहां की मिठाई, खिलौने, चित्र टिकुली, बीड़ा इत्यादि और भी अनेक सामग्री ऐसी उत्तम होती हैं कि दूसरे नगर में कदापि स्वप्न में भी नहीं बन सकतीं।

जहां प्रसादी तुलसी माला फूल से पवित्र और स्नायी स्त्री पुरुषों के अंग के विविध चन्दन, कस्तूरी, अतर इत्यादि सुगन्धि द्रव्य के मादक आमोद संयुक्त परम शीतलकरण तापत्रय विमोचक गंगाजी के स्पर्श मात्र से अनेक लौकिक अलौकिक ताप से तापित मनुष्यों का चित्त सर्व्वदा शीतल करते हैं।

जहां अनेक रंगों के कपड़े पहने, सोरहो सिंगार बत्तीसो अभरन सजे पान खाए, मिस्सी की धड़ी जमाए, जोबन मदमाती, झमझमाती हुई बारविलासिनी देवदर्शन वैद्य-ज्योतिषी गुणीगृहगमन, जार मिलन, गानश्रावण उपवनभ्रमण इत्यादि अनेक बहानों से राजपथ में इधर उधर झूमती घूमती नैनों के पटे फेरती बिचारे दीन पुरुषों को ठगती फिरती हैं, और कहां तक कहैं काशी काशी ही है। काशी सी नगरी त्रैलोक्य में दूसरी नहीं है। आप देखिएगा तभी जानिएगा। बहुत कहना व्यर्थ है।

विदेशी पंडित : वाह वाह! वाह! आप के वर्णन से मेरे चित्त का काशी दर्शन का उत्साह चतुर्गुण हो गया। यों तो मैं सीधा कलकत्ते जाता पर अब काशी बिना देखे कहीं न जाऊंगा। आप ने तो ऐसा वर्णन किया मानो चित्र सामने खड़ा कर दिया। कहिये वहां और कौन कौन गुणी और दाता लोग हैं जिन से मिलूं।

सुधाकर : मैं तो पूर्व्व ही कह चुका हूं कि काशी गुणी और धनियों की खान है, यद्यपि यहां के बड़े बड़े पंडित जो स्वर्गवासी हुए उन से अब दर्शन होने कठिन हैं, तथापि अब भी जो लोग हैं दर्शनीय और स्मरणीय हैं। फिर इन व्यक्तियों के दर्शन भी दुर्लभ हो जायंगे और यहां के दाताओं का तो कुछ पूछना ही नहीं। चूड़ की कोठीवालों

ने पंडित काकाराम जी के ऋण के हेतु एक साथ बीस सहस्र मुद्रा दीं। राजा पटनीमल के बांधे धर्म्मचिह्न कर्म्मनाशा का पुल और अनेक धर्म्मशाला, कुएं, तालाब, पुल इत्यादि भारतवर्ष के प्रायः सब तीर्थों पर विद्यमान हैं। साह गोपालदास के भाई साह भवानीदास की भी ऐसी ही उज्ज्वल कीर्ति है और भी दीवान केवलकृष्ण, चम्पतराय अमीन इत्यादि बड़े-बड़े दानी इसी सौ वर्ष के भीतर हुए हैं। बाबू राजेन्द्र मित्र की बांधी देवी पूजा बाबू गुरु-दास मित्र के यहां अब भी बड़े धूम से प्रतिवर्ष होती है। अभी राजा देवनारायण सिंह ही ऐसे गुणज्ञ हो गए हैं कि उनके यहां से कोई खाली हाथ नहीं फिरा। अब भी बाबू हरिश्चन्द्र इत्यादि गुणग्राहक इस नगर की शोभा की भांति विद्यमान हैं। अभी लाला बिहारीलाल और मुंशी रामप्रतापजी ने कायस्थ जाति का उद्धार कर के कैसा उत्तम कार्य्य किया। आप मेरे मित्र रामचन्द्र ही को देखिएगा। उसने बाल्यावस्था ही में लक्षावधि मुद्रा व्यय कर दी है। अभी बाबू हरखचन्द मरे हैं जो एक गोदान नित्य करके जलपान करते थे। कोई भी फकीर यहां से खाली नहीं गया। दस पंद्रह रामलीला इन्हीं काशीवालों के व्यय से प्रति वर्ष होती है और भी हजारों पुण्यकार्य्य यहां हुआ ही करते हैं। आप को सब से मिलाऊंगा आप काशी चलैं तो सही।

विदेशी पंडित : आप लाहोर क्यों गए थे?

सुधाकर : **(लंबी सांस लेकर)** कुछ न पूछिए यों ही सैर को गया था।

दलाल : **(सुधारकर से)** का गुरु। कुछ पंडितजी से बोहनी वाड़े का तार होय तो हम भी साथै चलूंचैं।

सुधाकर : तार तो पंडितवाड़ा है कुछ विशेष नहीं जान पड़ता।

दलाल : तव भी फोंक सऊड़े का मालवाड़ा। कहां तक न लेऊचियै।

सुधाकर : अब जो पलते पलते पलै।

विदेशी पंडित : यह इन्होंने किस भाषा में बात की?

सुधाकर : यह काशी ही की बोली है। ये दलाल हैं, सो पूछते थे कि पंडितजी कहां उतरैंगे।

विदेशी पंडित : तो हम अपने एक सम्बन्धी के यहां नीलकंठ पर उतरैंगे।

सुधाकर : ठीक है, पर मैं आप को अपने घर अवश्य जे जाऊंगा।

विदेशी पंडित : हां हां इस में कोई सन्देह है? मैं अवश्य चलूंगा।

[स्टेशन का घंटा बजता है और जवनिका गिरती है]

●

चौथा गर्भांक

स्थान—बुभुक्षित दीक्षित की बैठक।

[बुभुक्षित दीक्षित, गप्प पंडित, रामभट्ट, गोपालशास्त्री, चंबूभट्ट, माधव शास्त्री आदि लोग पान बीड़ा खाते और भांग बूटी की तजवीज करते बैठे हैं; इतने में महाश कोतवाल अर्थात् निमन्त्रण करने वाला आकर चौक में से दीक्षित को पुकारता है]

महाश : काहो, बुभुक्षित दीक्षित आहेत?

बुभुक्षित : **(इतना सुनते ही हाथ का पान रख कर)** कोण आहे? **(महाश आगे बढ़ता है)** वाह महाश, तु आहेश काय? आय बाबा आज किती ब्राह्मण आमच्या तड़ात देतोस? सरदारानी किती सांगीतलेत! **(थोड़ा ठहर कर)** कायरे ठोक्याच्या कमरयान्त सहस्रभोजन कुणाच्या यजमानाचे चाल्ले आहे?

महाश : दीक्षितजी! आज ब्राह्मणाची अशी मारामार झाली कि मी मांहीं सांगू शकत नाहीं—कोण तो पचड़ा!!

बुभुक्षित : खरें, काय मारामार झाली? अच्छा ये तर बैठकेंत पण आखेरीस आमचे तड़ाची काय व्यवस्था? ब्राह्मण आणलेस की नाहीं? कां हात हलवीतच आलास?

महाश : **(बैठक में बैठ कर जल मांगता है)** दीक्षितजी थोड़े से पाणी द्या, तहान बहुत लागली आहे।

बुभुक्षित : अच्छा भाई, थोड़ा सा ठहर अत्ता उनातून आला आहेस, बूटी ही बनतेच आहे। पाहिजे तर बूटीचच पाणी पी। अच्छा सांग तर कसे काय ब्राह्मण किती मिलाले?

महाश : गुरु, ब्राह्मण तो आज 25 निकाले, यार लोग आप के शागिर्द हैं कि और किसके?

चम्बूभट्ट : **(बड़े आनन्द से)** क्या भाई सच कहो—25 ब्राह्मण मिलाले?

महाश : हो गुरु! 25 ब्राह्मण तर नुसते सहस्रभोजनाचे, परन्तु आजचे वसन्तपूजेचे तर शिवाय च—आणखी सभेकरता तर पेष लावलाच आहे पण...

गोपाल, माधव (घबरा कर) काय महाश पण कां? सभेचें काम कुणाकड़े आहे? अणखी

शास्त्री : सभा कधीं होणार? आं?

महाश : पण इतकेंच की हा यजमान पाप नगरांत रहतो, आणियाला एक कन्या आहे ती गतभर्तृका असून सकेशा आहे आणि तीर्थस्थलीं तर क्षौर करणें अवश्य पण क्षौरेकरून कन्येंची शोभा जाईल या करितां जर कोणी असा शास्त्रीय आधार दाखवील तर एक हजार रुपयांची सभाकरण्याचा त्यांचा विचार आहे व या कामांत धनुतुंदिल शास्त्रीनी हात घातला आहे।

गप्प पंडित : अः, तो ऐसी क्षुल्लक बात के हेतु शास्त्राधार का क्या काम है? इस में तो बहुत से आधार मिलैंगे।

माधव शास्त्री : हां पंडितजी आप ठीक कहते हैं, क्योंकि हम लोगों का वाक्य और ईश्वर का वाक्य समान ही समझना चाहिए 'विप्रवाक्ये जनार्दनः' 'ब्राह्मणो मम दैवतं' इत्यादि।

गोपाल : ठीकच आहे, आणि जरि कदाचित असल्या दुर्घट कामानी आम्ही लोकदृष्ट्या निन्द्य झालों तथापि वन्द्यच आहों, कररण श्री मद्भागवतांत ही लिहलें आहे 'विप्रं' कृतागसमपि नैव द्रुह्येत कश्चनेत्यादि'।

गप्प पंडित : हां जी, और इस में निन्द्य होने का भी क्या कारण? इस में शास्त्र के प्रमाण बहुत से हैं और युक्ति तो हई है। पहिले यही देखिए कि इस क्षौर कर्म्म से दो मनुष्यों को अर्थात् वह कन्या और उस के स्वजन इन को बहुत ही दुःख होगा और उस के प्रतिबंध से सबको परम आनन्द होगा। तब यहां इस वचन को देखिए–

येन केनाप्युपायेन यस्य कस्यापि देहिनः।
संतोषं जनयेत् प्राज्ञस्तदेवेश्वर पूजनं॥

बुभुक्षित : और ऐसे बहुत से उदाहरण भी इसी काशी में होते आए हैं दूसरा काशीखंड ही में कहा है, ''येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः।''

चंबूभट्ट : मूर्खतागार का भी यह वाक्य है 'अधवा वाललवनं जीवनार्द्दनवद्भवेत्'। संतोषसिन्धु में भी 'सकेशैव हि संस्थाप्या यदि स्यात्तोषदा नृणां'।

महाश : दीक्षित जी! बूटी झाली–अब छने जल्दी कारण बहुत प्यासा जीव होऊन गेला अणखी अझून पुष्कल ब्राह्मण सांगायचे आहेत।

बुभुक्षित : **(भांग की गोली और जल, बरतन, कटोरा साफी लेकर)** शास्त्रीजी! थोड़े से बढ़ा तर।

माधव शास्त्री : दीक्षितजी! हें मांझ काम नह्वें, कारण मी अपला खाली पीण्याचा मालिक आहे, मला छानतां येत नाहीं। **(गोपाल शास्त्री की ओर**

दिखला कर) ये इसमें परम प्रवीण हैं।

गोपाल शास्त्री : अच्छा दीक्षितजी, मीच आलों सही।

चंबूभट्ट : **(इन सबों को अपने काम में निमग्न देख कर)** बरें मग महाश अखेरीस तड़ाचे किती ब्राह्मण सहस्रभोजनाचे व वसन्त पूजेचे किती?

महाश : दीक्षिताचे तड़ांत आज एकंदर 25 ब्राह्मण; पैकीं 15 सहस्र भोजनाकड़े आणि 10 वसन्तपूजेकड़े...।

माधव शास्त्री : आणि सभेचे?

महाश : सभेचे तर मी सांगीतलेंच कीं धनतुंदिल शास्त्रीचे अधिकारांत आहे, आणि दोन तीन दिवसांत ते बन्दोबस्त करणार हाहेत।

गप्प पंडित : क्यों महाश! इस सभा में कोई गौड़ पंडित भी हैं वा नहीं।

महाश : हां पंडितजी, वह बात छोड़ दीजिए, इस में तो केवल दाक्षिणात्य द्राविड़ और क्वचित् तैलंग भी होंगे, परन्तु सुना है कि जो इस में अनुमति करैंगे वे भी अवश्य सभासद होंगे।

गप्प पंडित : इतना ही न, तब तो मैंने पहिले ही कहा है, माधव शास्त्री! अब भाई, यह सभा दिलवाना आप के हाथ में है।

माधव : हां पंडितजी, मैं तो अपने शक्त्यनुसार प्रयत्न करता हूं, क्यौंकि प्रायः काका धनतुंदिल शास्त्री जो कुछ करते हैं उसका सब प्रबंध मुझे ही सौंप देते हैं। **(कुछ ठहर कर)** हां, पर पंडितजी, अच्छा स्मरण हुआ, आप से और न्यू फांड (New Fond) शास्त्री से बहुत परिचय है, उन्हीं से आप प्रवेश कीजिए, क्यौंकि उन से और काकाजी से गहरी मित्रता है।

गप्प पंडित : क्या क्या शास्त्रीजी? न्यू–क्या? मैंने यह कहीं सुना नहीं।

गोपाल : कभी सुना नहीं इसी हेतु न्यू फांड।

गप्प पंडित : मित्र! मेरा ठट्टा मत करो। मैं यह तुम्हारी बोली नहीं समझता। क्या यह किसी का नाम है? मुझे मालूम होता है कि कदाचित् यह द्रविड़ त्रिलिंग आदि देश के मनुष्य का नाम होगा क्यौंकि उधर की बोली मैंने सुनी है उस में मूर्द्धन्य वर्ण प्रायः बहुत रहते हैं।

माधव शास्त्री : ठीक पंडितजी, अब आप का तर्कशास्त्र पढ़ना आधा सफल हुआ। अस्तु ये इधर ही के हैं जो आप के साथ रामनगर गए थे, जिन्होंने घर में तमाशेवाले की बैठक की थी...।

गप्प पंडित : हां हां, अब स्मरण हुआ, परन्तु उन का नाम परोपकारी शास्त्री है और तुम क्या भांड कहते हो।

गोपाल शास्त्री : वाह पंडितजी, भांड नहीं कहा फांड कहा–न्यू फांड अर्थात् नए शौकीन। सारांश प्राचीन शौकीन लोगों ने जो जो कुछ पदार्थ उत्पन्न

किए, उपभुक्त किए उन ही उनके उच्छिष्ट पदार्थ का अवलम्बन करके वा प्राचीन रसिकों की चाल चलन को अच्छी समझ हम को भी लोक वैसा ही कहैं आदि से खींच के रसिकता लाना, क्या शास्त्रीजी ऐसा न इस का अर्थ?

माधव शास्त्री : भाई, मुझे क्यों नाहक इस में डालते हो?

गप्प पंडित : अच्छा, जो होय मुझे उस के नाम से क्या काम। व्यक्ति मैंने जानी परन्तु माधवजी आप कहते हैं और मुझ से उन से भी पूर्ण परिचय है और उन को उन का नाम सच शोभता है, परन्तु भाई वे तो बड़े आढ्य मान्य हैं और कंजूस भी हैं–और क्या तुमसे उन से मित्रता मुझ से अधिक नहीं है। यहां तक शयनासन तक वे तुम को परकीय नहीं समझते।

माधव शास्त्री : पंडितजी! वह सर्व्व ठीक है, परन्तु अब वह भूतकालीन हुई। कारण 'अति सर्वत्र वर्जयेत'...।

बुभुक्षित : हां पंडितजी! अब क्षण भर इधर बूटी को देखिए लीजिए।

[एक कटोरा देकर पुनः दूसरा देते हैं]

गप्प पंडित : वाह दीक्षितजी, बहुत ही बढ़िया हुई।

चम्बूभट्ट : **(सब को बूटी देकर अपनी पारी आई देख कर)** हां हां दीक्षितजी, तिकड़ेच खतम करा मी आज कल पीत नाहीं।

गोपाल माधव : कां भट जी! पूरे आतां, हे नखरे कुठे शिकलाता, या–प्या–हवेने व्यर्थ थंडी होते।

चम्बूभट्ट : नाहीं भाई मी सत्य सांगतों, भला सोसत नाहीं। तुम्हाला माझे नखरे वाटतात पण हे प्रायः इथले काशीतलेच आहेत, व अपल्या सारख्यांच्या परम प्रियतम सफेत खड़खड़ीत उपर्णा पांघरणार अनाथा बालानींच शिकविलेंन बरें।

[सब आग्रह कर के उस को पिलाते हैं]

महाश : कां गुरु दीक्षितजी अब पलेती जमविली पाहिजे।

बुभुक्षित : हां भाई, घे तो बंटा आणि लाव तर एक दोन चार।

महाश : **(इतने में अपना पान लगा कर खाता है और दीक्षितजी से)** दीक्षित जी, 15 ब्राह्मण ठोक्याच्या कमरयांत पाटवा, दाहा बाजतां पानें मांड़लो जातील, आणि आज रात्री वसन्तपूजेस 10 ब्राह्मणलवकर पाठवा कारण मग दूसरे तड़ाचे ब्राह्मण येतील।

[ऐसा कहता हुआ चला जाता है]

बुभुक्षित : **(उस को पुकारते हुए जाते हैं)** महाश! दक्षिणा कितनी?

[महाश वहीं से चार अंगुली दिखा कर गडा कह कर गया]

माधव : दीक्षितजी! क्या कहीं बहरी ओर चलिएगा?

गोपाल : **(दीक्षित से)** हां गुरु, चलिए आज बड़ी वहां लहरा है।

बुभुक्षित : भाई बहरीवर मी जाऊन इकड़चा बन्दोबस्त कोण करील?

गोपाल : अे : गुरु इतके 15 ब्राह्मणात घबड़ावता। सर्वभक्षास सांगीतले ब्राह्मण जे झाले। न्यू फांड की पत्ती है।

गप्प पंडित : क्या परोपकारी की पत्ती है? खाली पत्ती दी है कि और भी कुछ है? नाहीं तो मैं भी चलूं।

माधव शास्त्री : पत्ती क्या बड़ी बड़ी लहरा है, एक तो बड़ा भारी प्रदर्शन होगा और नाना रीति के नाच, नए नए रंग देख पड़ैंगे।

गप्प पंडित : क्यौं शास्त्रीजी, मुझे ये बड़ा आश्चर्य ज्ञात होता है और इस से परिहासोक्ति सी दीख पड़ती है क्यौंकि उस के यहां नाच रंग होना सूर्य्य का पश्चिमाभिमुख उगना है।

गोपाल : पंडितजी! इसी कारण इनका नाम न्यू फांड है। और तिस पर यह एक गुह्य कारण से होता है। वह मैं और कभी आप से निवेदन करूंगा, वा मार्ग में...।

बुभुक्षित : **(सर्वभक्ष नाम अपने लड़के को सब व्यवस्था कह कर आप पान पलेती और रस्सी लोटा और एक पंखी लेकर)** हां भाई मेरी सब तैयारी है।

माधव गोपाल : चलिए पंडित जी वैसे ही धनतुंदिल शास्त्रीजी के यहां पहुंचैंगे।

[सब उठ कर बाहर आते हैं]

चम्बूभट्ट : मैं तो भाई जाता हूं क्यौंकि संध्या समय हुआ है।

[चला जाता है]

गप्प पंडित : किधर जाना पड़ैगा?

माधव शास्त्री : शंखोध्यारा क्यौंकि आजकल श्रावण मास में और कहां लहरा? धराऊ कजरी, श्लोक, लावनी, ठुमरी, कटौवल, बोली ठोली सब उधर ही।

गप्प पंडित : ठीक शास्त्रीजी, अब मेरे ध्यान में पहुंचा। आजकल शंखोध्यारा का बड़ा माहात्म्य है। भला घर पर यह अब कहां सुनने में आवैगा? क्यौंकि इस में धराऊ विशेषण दिया है।

गोपाल : आ, हमारा माधव शास्त्री जहां है वहां सब कुछ ठीक ही होगा, इस का परम आश्रय प्राणप्रिय रामचन्द्र बाबू आप को विदित है कि नहीं? उस के यहां से सब नित्य कृत्य हैं।

गप्प पंडित : रामचन्द्र हम ही को क्या परन्तु मेरे जान प्रायः यह जिस को विदित नहीं ऐसा स्वल्प ही निकलैगा। विशेष कर के रसिकों को; उस को तो मैं खूब जानता हूं।

गोपाल : कुछ रोज हमारे शास्त्रीजी भी थे, परन्तु हमारा क्या उन का कहिए

ऐसा दुर्भाग्य हुआ कि अब वर्ष वर्ष दर्शन नहीं होने पाता। रामचन्द्रजी तो इन को अपने भ्राता के समान पालन करते थे और इन से बड़ा प्रेम रखते थे। अस्तु सारांश पंडित वहां रामचन्द्रजी के बगीचे में जाएंगे। वहां सब लहरा देख पड़ैगी और इस मिस से तौ भी उन का दर्शन होगा।

बुभुक्षित : अरे पहिले नवे शौखिनाचे इथे जाऊं तिथे काय आहे हें पाहूं आणि नंतर रामचन्द्राकड़े झुकूं।

माधव शास्त्री : अच्छा, तसेच होय आजकल न्यू फांड शास्त्री यानी ही बहुत उदारता धरली आहे बहुत सी पाखरे ही चारली आहेत तो सर्व दृष्ट्रीस पड़तील पण भाई भी आंत यायचा नाहीं। कारण मला पाहून त्यांना त्रास होतो।

गोपाल : अच्छा तिथ वर तर चलशील आगे देखा जायगा।

[सब जाते हैं और जवनिका गिरती है]

[इति]

घिस्सघिसद्विज कृत्य विवर्तनो नाम चतुर्थ गर्भांक

॥प्रथम अंक समाप्त हुआ॥

[यह नाटिका हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खंड 1 संख्या 11 और खंड 2 संख्या 3, 7 सन 1874 ई. में 'काशी के छायाचित्र या दो भले बुरे फोटोग्राफ' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। इसी शीर्षक से यह हरिप्रकाश प्रेस, बनारस से भी प्रकाशित हुई थी।—सम्पादक]

भारतदुर्दशा

(नाट्य रासक वा लास्य रूपक)

सन 1876 ई.

भारतदुर्दशा

(मंगलाचरण)

जय जय जुग थापन करन, नासन म्लेच्छ अचार।
कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कल्कि अवतार ॥

पहिला अंक

स्थान—वीथी

[एक योगी गाता है]

[लावनी]

रोअहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई॥ध्रुव॥

सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

जहं भए शाक्य हरिचन्दऽरू नहुष ययाती।
जहं राम युधिष्ठिर व्यासदेव सर्याती॥
जहं भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहं रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥

अब जहं देखहु तहं दुःखहि दुःख दिखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
लरि वैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवनसैन पुनि भारी॥
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी।
छाई अब आलस कुमति कलह अंधियारी॥
भए अन्ध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेश चलि जात यहै अति ख्वारी॥
ताहू पै महंगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूनो दुःख ईस देत हा हा री ॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

पटोत्तोलन

●

दूसरा अंक

स्थान–श्मशान, टूटे-फूटे मन्दिर

[कौआ, कुत्ता, स्यार घूमते हुए, अस्थि इधर-उधर पड़ी है]

[भारत[1] का प्रवेश]

भारत : हा! यह वही भूमि है जहां साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के दूतत्व करने पर भी वीरोत्तम दुर्योधन ने कहा था, 'शूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव' आज हम उसी भूमि को देखते हैं कि श्मशान हो रही है। अरे, यहां की योग्यता, विद्या, सभ्यता, उद्योग, उदारता, धन, बल, मान, दृढ़चित्तता, सत्य सब कहां गए? अरे पामर जयचन्द! तेरे उत्पन्न हुए बिना मेरा क्या डूबा जाता था? हाय! अब मुझे कोई शरण देनेवाला नहीं। (रोता है) माता; राजराजेश्वरी विजयिनी! मुझे बचाओ। अपनाए की लाज रक्खो। अरे दैव ने सब कुछ मेरा नाश कर दिया पर अभी सन्तुष्ट नहीं हुआ। हाय! मैंने जाना था कि अंगरेजों के हाथ में आ कर हम अपने दुखी मन को पुस्तकों से बहलावैंगे और सुख मान कर जन्म बितावैंगे पर दैव से वह भी न सहा गया। हाय! कोई बचानेवाला नहीं।

[गीत]

कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हा हा होइ अनाथ॥
जाकी सरन गहत सोइ मारत सुनत न कोउ दुख गाथ।
दीन बन्यौ इत सौं उत ड़ोलत टकरावत निज माथ॥
दिन दिन बिपति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ।
सब बिधि दुख सागर मैं डूबत धाइ उबारौ नाथ॥

[नेपथ्य में गम्भीर और कठोर स्वर से]

अब भी तुझ को अपने नाथ का भरोसा है! खड़ा तो रह! अभी मैंने तेरी आशा की जड़ न खोद डाली तो मेरा नाम नहीं।

---

1. फटे कपड़े पहिने, सिर पर अर्द्ध किरीट, हाथ में टेकने की छड़ी, शिथिल अंग।

भारत : (डरता और कांपता हुआ रो कर) अरे यह विकराल वदन कौन मुंह बाये मेरी ओर दौड़ता चला आता है? हाय हाय इस से कैसे बचैंगे? अरे यह तो मेरा एक ही कौर कर जायगा। हाय! परमेश्वर बैकुंठ में और राजराजेश्वरी सात समुद्र पार, अब मेरी कौन दशा होगी?, हाय, अब मेरे प्रान कौन बचावैगा? अब कोई उपाय नहीं। अब मरा, अब मरा। **[मूर्छा खा कर गिरता है]**

[निर्लज्जता[1] आती है]

निर्लज्जता : मेरे आछत तुम को अपने प्राण की फिकिर। छिः छिः! जीओगे तो भीख मांग खाओगे। प्राण देना तो कायरों का काम है। क्या हुआ जो धन-मान सब गया–'एक जिन्दगी हजार न्यामत है।' (देख कर) अरे सचमुच बेहोश हो गया तो उठा ले चलैं। नहीं नहीं! मुझ से अकेले न उठैगा। (नेपथ्य की ओर) आशा! आशा! जल्दी आओ।

[आशा[2] आती है]

निर्लज्जता : यह देखो भारत मरता है, जल्दी इसे घर उठा ले चलो।

आशा : मेरे आछत किसी ने भी प्राण दिये हैं? ले चलो ! अभी जिलाती हूं।

[दोनों उठा कर भारत को ले जाती हैं]

1. जांघिया, सिर खुला, ऊंची चोली, दुपट्टा ऐसा गिरता पड़ता कि अंग खुले, सिर खुला, खानगियों का सा वेष।
2. लड़की के वेष में।

तीसरा अंक

स्थान–मैदान

[फौज के डेरे दिखाई पड़ते हैं! भारतदुर्दैव[1] आता है]

भारतदुर्दैव : कहां गया भारत मूर्ख! जिस को अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी का भरोसा है? देखो तो अभी इस की क्या क्या दुर्दशा होती है।

[नाचता और गाता हुआ]

अरे! उपजा ईश्वर कोप से औ आया भारत बीच।
छार खार सब हिन्द करूं मैं, तो उत्तम नहिं नीच॥
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी।
कौड़ी कौड़ी को करूं मैं सबको मुहताज।
भूखे प्रान निकालूं इनका, तो मैं सच्चा राज॥
मुझे...
काल भी लाऊं महंगी लाऊं और बुलाऊं रोग।
पानी उलटा कर बरसाऊं, छाऊं जग में सोग॥
मुझे...
फूट बैर औ कलह बुलाऊं, ल्याऊं सुस्ती जोर।
घर घर में आलस फैलाऊं, छाऊं दुख घनघोर॥
मुझे...
काफिर काला नीच पुकारूं तोडूं पैर औ हाथ।
दूं इनको संतोष खुशामद, कायरता भी साथ॥
मुझे...
मरी बुलाऊं देस उजाडूं, महंगा करके अन्न।
सब के ऊपर टिकस लगाऊं, धन है मुझको धन्न।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राछस मानो जी।

[नाचता है]

अब भारत कहां जाता है, ले लिया है। एक हिस्सा बाकी है, अबकी

1. क्रूर, आधा क्रिस्तानी, आधा मुसलमानी वेष, हाथ में नंगी तलवार लिये।

हाथ में वह भी साफ है। भला हमारे बिना और ऐसा कौन कर सकता है कि अंगरेजी अमलदारी में भी हिन्दू न सुधरे! लिया भी तो अंगरेजों से औगुन! ह हा हा! कुछ पढ़े लिखे मिल कर देश सुधारा चाहते हैं? हा हा हा! एक चने से भाड़ फोड़ैंगे। ऐसे लोगों को दमन करने को मैं जिले के हाकिमों को न हुक्म दूंगा कि इन को डिसलायल्टी में पकड़ो और ऐसे लोगों को हर तरह से खारिज कर के ज़ितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उस को उतना बड़ा मेडल और खिताब दो। हैं! हमारी पालिसी के विरुद्ध उद्योग करते हैं, मूर्ख! या यह क्यौं? मैं अपनी फौज ही भेज के न सब चौपट करता हूं। **(नेपथ्य की ओर देख कर)** अरे कोई है? सत्यानाश फौजदार को तो भेजो।

[नेपथ्य में से 'जो आज्ञा' का शब्द सुन पड़ता है]

[देखो मैं क्या करता हूं। किधर किधर भागैंगे]

[सत्यानाश फौजदार आते हैं]

(नाचता हुआ)

सत्यानाश : **हमारा नाम है सत्यानास। आए हैं राजा के हम पास॥**
धरके हमने लाखों ही भेस। किया चौपट यह सारा देस॥
बहुत हमने फैलाए धर्म्म। बढ़ाया छुआछूत का कर्म्म॥
होके जयचंद हमने इक बार। खोल ही दिया हिन्द का द्वार॥
हलाकू चंगेजो तैमूर। हमारे अदना अदना सूर॥
दुरानी अहमद नादिरसाह। फौज के मेरे तुच्छ सिपाह॥
हैं हममें तीनों कल बल छल। इसी से कुछ नहिं सकती चल॥
पिलावैंगे हम खूब शराब। करैंगे सबको आज खराब॥

भारत दुर्दैव : अहा! सत्यानाशजी आए। आओ, देखो अभी फौज को हुक्म दो कि सब लोग मिल के अभी हिन्दुस्तान को घेर लें। जो पहले से घेरे हैं उनके सिवा औरों को भी आज्ञा दो कि बढ़े चलैं।

सत्यानाश : महाराज! 'इन्द्रजीत संग जो कछु भाखा, सो सब जनु पहिलेहिं करि राखा।' जिन को आज्ञा हो चुकी है वे तो अपना काम कर ही चुके हैं और जिस को जो हुक्म हो, कह दिया जाय।

भारत दुर्दैव : किस ने किस ने क्या क्या किया है?

सत्यानाश : महाराज! धर्म्म ने सब के पहिले सेवा की।
: **रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन मांहि घुसाए।**
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए॥
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊंच बनायो।
खान पान संबंध सबन सों बरजि छुड़ायो॥

जन्मपत्र विधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब।
बालक पन में ब्याहि प्रीति बल नास कियो सब॥
करि कुलीन के बहुत ब्याह बलबीरज मार्यो।
बिधवा ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचार्यो॥
रोकि बिलायत गमन कूपमंडूक बनायो।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो॥
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सों सब बिमुख किये हिन्दू घबराई॥

भारत दुर्दैव : आहा! हाहा! शाबाश! शाबाश! हां और भी कुछ धर्म्म ने किया?

सत्यानाश : हां महाराज।

अपरस सोल्ह छूत रचि, भोजन प्रीति छुड़ाय।
किए तीन तेरह सबै, चौका चौका लाय॥

भारत दुर्दैव : और भी कुछ?

सत्यानाश : हां।

रचिकै मत वेदांत को, सबको ब्रह्म बनाय।
हिन्दुन पुरुषोत्तम कियो, तोरि हाथ अरु पाय॥

महाराज, वेदान्त ने बड़ा ही उपकार किया। सब हिन्दू ब्रह्म हो गए। किसी को इतिकर्त्तव्यता बाकी ही न रही। ज्ञानी बनकर ईश्वर से विमुख हुए, रुक्ष हुए, अभिमानी हुए और इसी से स्नेहशून्य हो गए। जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धार का प्रयत्न कहां! बस, जै शंकर की।

भारत दुर्दैव : अच्छा, और किसने किसने क्या किया?

सत्यानाश : महाराज, फिर सन्तोष ने भी बड़ा काम किया। राजा प्रजा सबको अपना चेला बना लिया। अब हिन्दुओं को खाने मात्र से काम, देश से कुछ काम नहीं। राज न रहा, पेंशन ही सही। रोजगार न रहा, सूद ही सही। वह भी नहीं, तो घर ही का सही। 'सन्तोषं परमं सुखं' रोटी ही को सराह सराह के खाते हैं। उद्यम की ओर देखते ही नहीं। निरुद्यमता ने भी सन्तोष को बड़ी सहायता दी। इन दोनों को बहादुरी का मेडल जरूर मिले। व्यापार को इन्हीं ने मार गिराया।

भारत दुर्दैव : और किस ने क्या किया?

सत्यानाश : फिर महाराज जो धन की सेना बची थी उस को जीतने को भी मैंने बड़े बांके बीर भेजे। अपव्यय, अदालत, फैशन और शिफारस इन चारों ने दुश्मन की सारी फौज तितिर बितिर कर दी। अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किए। फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि बंटाधार कर दिया और

शिफारस ने भी खूब ही छकाया। पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब तक पीछा कर के खूब भगाया। तुहफे, घूस और चन्दे के ऐसे बम के गोले चलाए कि 'बम बोल गई बाबा की चारों दिसा' धूम निकल पड़ी। मोटा भाई बना बनाकर मूंड़ लिया। एक तो खुद ही यह सब पड़िया के ताऊ, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, डर दिखाया गया बराबरी का झगड़ा उठा, धांय धांय गिनी गई,[1] वर्णमाला कंठ कराई,[2] बस हाथी के खाये कैथ हो गए। धन की सेना ऐसी भागी कि कब्रों में भी न बची, समुद्र के पार ही शरण मिली।

भारत दुर्दैव : और भला कुछ लोग छिपा कर भी दुश्मनों की ओर भेजे थे?

सत्यानाश : हां, सुनिए। फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक, अश्रुमार्जन और निर्बलता, इन एक दरजन दूती और दूतों को शत्रुओं की फौज में हिला मिला कर ऐसा पंचामृत बनाया कि सारे शत्रु बिना मारे घंटे पर के गरुड़ हो गए। फिर अन्त में भिन्नता गई। इस ने ऐसा सब को काई की तरह फाड़ा कि भाषा, धर्म्म, चाल, व्यवहार, खाना, पीना सब एक एक जोजन पर अलग अलग कर दिया। अब आवैं, बचा ऐक्य! देखैं आ ही के क्या करते हैं!

भारत दुर्दैव : भला भारत का शस्य नामक फौजदार अभी जीता है कि मर गया? उन की पलटन कैसी है?

सत्यानाश : महाराज! उस का बल तो आप की अतिवृष्टि और अनावृष्टि नामक फौजों ने बिलकुल तोड़ दिया। लाही, कीड़े, टिड्डी और पाला इत्यादि सिपाहियों ने खूब ही सहायता की। बीच में नील ने भी नील बन कर अच्छा लंकादहन किया।

भारत दुर्दैव : वाह! वाह! बड़े आनन्द की बात सुनाई। तो अच्छा तुम जाओ। कुछ परवाह नहीं, अब ले लिया है। बाकी साकी अभी सपराए डालता हूं। अब भारत कहां जाता है। तुम होशियार रहना और रोग, महर्घ्य, कर, मद्य, आलस और अन्धकार को जरा क्रम से मेरे पास भेज दो।

सत्यानाश : जो आज्ञा।

[जाता है]

भारत दुर्दैव : अब उस को कहीं शरण न मिलैगी। धन, बल और विद्या तीनों गई। अब किस के बल कूदेगा?

पटोत्तोलन

●

---

1. सलामी मिली।
2. सी. आई. ई. आदि उपाधियां मिलीं।

चौथा अंक

[कमरा अंगरेजी सजा हुआ, मेज, कुर्सी लगी हुई। कुर्सी पर भारत दुर्दैव बैठा है]

[रोग का प्रवेश]

रोग : (गाता हुआ)

जगत सब मानत मेरी आन।
मेरी ही टट्टी रचि खेलत नित सिकार भगवान॥
मृत्यु कलंक मिटावत मैं ही मो सम और न आन।
परम पिता हम हीं वैद्यन के अत्तारन के प्रान॥

मेरा प्रभाव जगत विदित है। कुपथ का मित्र और पथ का शत्रु मैं ही हूं। त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जिस पर मेरा प्रभुत्व नहीं। नजर, सराप, भूत, प्रेत, टोना, टनमन देवी देवता सब मेरे ही नामान्तर हैं। मेरी ही बदौलत ओझा, दरसनिए, सयाने, पंडित, सिद्ध लोगों को ठगते हैं। (आतंक से) भला मेरे प्रबल प्रताप को ऐसा कौन है जो निवारण करे। हह! चुंगी की कमेटी सफाई कर के मेरा निवारण करना चाहती है, यह नहीं जानती कि जितनी सड़क चौड़ी होगी उतना हम भी 'जस जस सुरसा बदन बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा'। (भारत दुर्दैव को देख कर) महाराज! क्या आज्ञा है?

भारत दुर्दैव : आज्ञा क्या है, भारत को चारों ओर से घेर लो।

रोग : महाराज! भारत तो अब मेरे प्रवेश मात्र से मर जायगा। घेरने का कौन काम है? धन्वंतरि और काशिराज दिवोदास का अब समय नहीं है और न सुश्रुत, वाग्भट्ट, चरक ही हैं। बैदगी अब केवल जीविका के हेतु बची है। काल के बल से औषधों के गुणों और लोगों की प्रकृति में भी भेद पड़ गया। बस अब हमें कौन जीतैगा और फिर हम ऐसी सेना भेजैंगे जिन का भारतवासियों ने कभी नाम तो सुना ही न होगा। तब भला वे उसका प्रतिकार क्या करैंगे! हम भेजैंगे विस्फोटक, हैजा, डेंगू, अपाप्लेक्सी। भला इन को हिन्दू लोग क्या रोकैंगे? ये किधर से चढ़ाई करते हैं और कैसे लड़ते हैं जानैंगे तो

हई नहीं, फिर छुट्टी हुई। वरंच महाराज, इन्हीं से मारे जायंगे और इन्हीं को देवता कर के पूजैंगे, यहां तक कि मेरे शत्रु डाक्टर और विद्वान इसी विस्फोटक के नाश का उपाय टीका लगाना इत्यादि कहैंगे तो भी ये सब उस को शीतला के डर से न मानैंगे और उपाय आछत अपने हाथ अपने प्यारे बच्चों की जान लेंगे।

भारत दुर्दैव : तो अच्छा तुम जाओ। महर्घ्य और टिकस भी यहां आते होंगे सो उन को साथ लिए जाओ। अतिवृष्टि, अनावृष्टि की सेना भी वहां जा चुकी है। अनैक्य और अन्धकार की सहायता से तुम्हें कोई भी रोक न सकैगा। यह लो पान का बीड़ा लो।

[बीड़ा देता है। रोग बीड़ा लेकर प्रणाम कर के जाता है]

भारत दुर्दैव : बस, अब कुछ चिन्ता नहीं। चारों ओर से तो मेरी सेना ने उस को घेर लिया, अब कहां बच सकता है।

[आलस्य का प्रवेश[1]]

आलस्य : हहा! एक पोस्ती ने कहा। पोस्ती ने पी पोस्त नौ दिन चले अढ़ाई कोस। दूसरे ने जवाब दिया—अबे वह पोस्ती न होगा डाक का हरकारा होगा। पोस्ती ने जब पोस्त पी तो या कूड़ी के उस पार या इस पार ठीक है। एक बारी में हमारे दो चेले लेटे थे और उसी राह से एक सवार जाता था। पहिले ने पुकारा "भाई सवार! यह पक्का आम टपक कर मेरी छाती पर पड़ा है, जरा मेरे मुंह में तो डाल दो।" सवार ने कहा—"अजी तुम बड़े आलसी हो। तुम्हारी छाती पर आम पड़ा है सिर्फ हाथ से उठा कर मुंह में डालने में यह आलस है!" दूसरा बोला—"ठीक है साहब, यह बड़ा ही आलसी है। रात भर कुत्ता मेरा मुंह चाटा किया और यह पास ही पड़ा था पर इसने न हांका। सच है किस जिन्दगी के वास्ते तकलीफ उठाना; मजे में अलमस्त पड़े रहना।" सुख केवल हम में है 'आलसी पड़े कुएं में वहीं चैन है।' **[गाता है]**

गजल

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पर उठ के कहीं जाना नहीं अच्छा॥
बिस्तर पे मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा।
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा॥
रहने दो जमीं पर मुझे आराम यहीं है।
छेड़ो न नक्शेपा हैं मिटाना नहीं अच्छा॥

---

1. मोटा आदमी जंभाई लेता हुआ धीरे-धीरे आवैगा।

उठ कर के घर से कौन चले यार के घर तक।
''मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा''॥
धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे।
उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा॥
सिर भारी चीज है इसे तकलीफ हो तो हो।
पर जीभ विचारी को सताना नहीं अच्छा॥
फाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए।
दुनिया नहीं अच्छी है जमाना नहीं अच्छा॥
सिजदे से गर बिहिश्त मिले दूर कीजिए।
दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा॥
मिल जाय हिन्द खाक में हम काहिलों को क्या।
ऐ मीरे फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा॥

और क्या। काजी जी दुबले क्यौं, कहैं शहर के अन्देशे से। अरे 'कोऊ नृप होय हमैं का हानी, चेरि छांड़ि नहिं होउब रानी।' आनन्द से जनम बिताना। 'अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम। दास मलूका कह गए सब के दाता राम॥' 'जो पढ़तव्यं सो मरतव्यं। जो न पढ़तव्यं सो भी मरतव्यं। तब फिर दन्तकटाकट किं कर्त्तव्यं? 'भाई जात में ब्राह्मण, धर्म्म में वैरागी, रोजगार में सूद और दिल्लगी में गप सब से अच्छी। घर बैठे जन्म बिताना, न कहीं जाना और न कहीं आना। बस खाना, हगना, मूतना, सोना, बात बनाना, तान मारना और मस्त रहना। अमीर के सिर क्या सुरखाब का पर होता है। जो कोई काम न करे वही अमीर। 'तवंगरी बदिलस्त न बमाल।'[1] दोई तो मस्त हैं या मालमस्त या हालमस्त। **(भारत दुर्दैव को देख कर उस के पास जा कर प्रणाम कर के)** महाराज! मैं सुख से सोया था कि आप की आज्ञा पहुंची। ज्यौं त्यौं कर यहां हाजिर हुआ। अब हुक्म?

भारतदुर्दैव : तुम्हारे और साथी सब हिन्दुस्तान की ओर भेजे गए हैं, तुम भी वहीं जाओ और अपनी जोगनिद्रा से सब को अपने वश में करो।

आलस्य : बहुत अच्छा। **(आप ही आप)** आहे बप्पा! अब हिन्दुस्तान में जाना पड़ा। तब चलो धीरे-धीरे चलैं। हुक्म न मानैंगे तो लोग कहैंगे—'सरबस खाइ भोग करि नाना, समरभूमि भा दुर्लभ प्राना।' अरे करने को दैव आप ही करैगा, हमारा कौन काम है, पर चलैं।

[यही सब बड़बड़ाता हुआ जाता है मदिरा[2] आती है]

1. अमीरी हृदय से है, धन से नहीं है!
2. सांवली सी स्त्री, लाल कपड़ा, सोने का गहना, पैर में घुंघरू।

मदिरा : भगवान सोम की मैं कन्या हूं। प्रथम वेदों ने मधु नाम से मुझे आदर दिया। फिर देवताओं की प्रिया होने से मैं सुरा कहलाई और मेरे प्रचार के हेतु क्षौत्रामणि यज्ञ की सृष्टि हुई। स्मृति और पुराणों में भी प्रवृति मेरी नित्य कही गई। तन्त्र तो केवल मेरे ही हेतु बने। संसार में चार मत बहुत प्रबल हैं–हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान और क्रिस्तान। इन चारों में मेरी चार पवित्र प्रेममूर्तियां विराजमान हैं। सोमपान, बीराचमन, शराबुनतहूरा और बापटैजिंग वाइन। भला कोई कहे तो इन को अशुद्ध। या जो पशु हैं उन्होंने अशुद्ध कहा हो तो क्या। हमारे चाहने वालों के आगे वे लोग बहुत होंगे तो भी सैकड़े दस होंगे, जगत में तो हम व्याप्त हैं। हमारे चेले लोग सदा यही कहा करते हैं। और फिर सरकार के राज्य के तो हम एकमात्र भूषण हैं।

दूध सुरा दधिहू सुरा, सुरा अन्न धन धाम।
वेद सुरा ईश्वर सुरा, सुरा स्वर्ग को नाम॥
जाति सुरा विद्या सुरा, बिन मद रहै न कोय।
सुधरी आजादी सुरा, जगत सुरामय होय॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरू, शैयद सेख पठान।
दै बताइ मोहि कौन जो, करत न मदिरा पान॥

पियत भट्ट के ठट्ट अरु, गुजरातिन के वृंद।
गौतम पियत अनंद सों, पियत अग्र के नंद॥
होटल में मदिरा पियें, चोट लगे नहिं लाज।
लोट लये ठाढ़े रहत, टोटल दैवे काज॥
कोउ कहत मद नहिं पियें, तो कछु लिख्यो न जाय।
कोउ कहत हम मद्य बल, करत वकीली आय॥
मद्यहि के परभाव सों, रचत अनेकन ग्रंथ।
मद्यहि के परकास सों, लखत धरम को पंथ॥

मद पी विधि जग को करत, पालत हरि करि पान।
मद्यहि पी कै नाश सब, करत शंभु भगवान॥
विष्णु बारुणी, पोर्ट पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि।
शांपिन शिव गौड़ी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म बिचारि॥
मेरी तो धन बुद्धि बल, कुल लज्जा पति गेह।
माय बाप सुत धर्म्म सब, मदिरा ही न संदेह॥

सोक हरन आनंद करन, उमगावन सब गात।
हरि मैं तप बिनु लय करनि, केवल मद्य लखात॥

सरकार हि मंजूर जो मेरो होत उपाय।
तो सब सों बढ़ि मद्य पै देती कर बैठाय॥
हम हीं को या राज की, परम निसानी जान।
कीर्ति खंभ सी जग गड़ी जब लौं थिर ससि भान॥
राजमहल के चिह्न नहिं, मिलि हैं जब इत कोय।
तबहू बोतल टूट बहु, मिलि हैं कीरति होय॥

हमारी प्रवृत्ति के हेतु कुछ यत्न करने की आवश्यकता नहीं। मनु पुकारते हैं—'प्रवृत्तिरेका भूतानां' और भागवत में कहा है—'लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्ति जन्तोः।' उस पर भी वर्त्तमान समय की सभ्यता की तो मैं मुख्य मूल सूत्र हूं। पंच विषयेन्द्रियों के सुखानुभव मेरे कारण द्विगुणित हो जाते हैं। संगीत साहित्य की तो एकमात्र जननी हूं। फिर ऐसा कौन है जो मुझ से विमुख हो?

[गाती है]

[राग काफी, धनाश्री का मेल, ताल धमार]

मदवा पीले पागल जोबन बीत्यौ जात।
बिनु मद जगत सार कछु नाहीं मान हमारी बात॥
पी प्याला छक छक आनंद से नितहि सांझ और प्रात।
झूमत चल डगमगाती चाल से मारि लाज को लात॥
हाथी मच्छड़ सूरज जुगनू जाके पिये लखात।
ऐसी सिद्धि छोड़ि मन मूरख काहे ठोकर खात॥
(राजा को देख कर) महाराज! कहिए क्या हुक्म है?

भारत दुर्दैव : हमने बहुत से अपने वीर हिन्दुस्तान में भेजे हैं। परन्तु मुझ को तुम से जितनी आशा है उतनी और किसी से नहीं है। जरा तुम भी हिन्दुस्तान की तरफ जाओ और हिन्दुओं से समझो तो।

मदिरा : हिन्दुओं के तो मैं मुद्दत से मुंहलगी हूं, अब आप की आज्ञा से और भी अपना जाल फैलाऊंगी और छोटे बड़े सबके गले का हार बन जाऊंगी।

[जाती है]

[रंगशाला के दीपों में से अनेक बुझा दिए जायंगे]

[अन्धकार का प्रवेश]

[आंधी आने की भांति शब्द सुनाई पड़ता है]

अन्धकार : (गाता हुआ स्खलित नृत्य करता है)

[राग काफी]

जै जै कलियुग राज की, जै महामोह महराज की।
अटल छत्र सिर फिरत थाप जग मानत जाके काज की॥
कलह अविद्या मोह मूढ़ता सबै नास के साज की॥

हमारा सृष्टिसंहारकारक भगवान तमोगुणजी से जन्म है। चोर, उलूक और लंपटों के हम एकमात्र जीवन हैं। पर्व्वतों की गुहा, शोकितों के नेत्र, मूर्खों के मस्तिष्क और खलों के चित्त में हमारा निवास है। हृदय के और प्रत्यक्ष चारों नेत्र हमारे प्रताप से बेकाम हो जाते हैं। हमारे दो स्वरूप हैं, एक आध्यात्मिक और एक आधिभौतिक, जो लोक में अज्ञान और अंधेरे के नाम से प्रसिद्ध हैं। सुनते हैं कि भारतवर्ष में भेजने को मुझे मेरे परम पूज्य मित्र दुर्दैव महाराज ने आज बुलाया है। चलैं देखैं क्या कहते हैं महाराज की जय हो! कहिए, क्या अनुमति है?

(आगे बढ़ कर)

भारत दुर्दैव : आओ मित्र! तुम्हारे बिना तो सब सूना था। यद्यपि मैंने अपने बहुत से लोग भारत विजय को भेजे हैं पर तुम्हारे बिना सब निर्बल हैं। मुझ को तुम्हारा बड़ा भरोसा है, अब तुम को भी वहां जाना होगा।

अन्धकार : आप के काम के वास्ते भारत क्या वस्तु है, कहिए मैं विलायत जाऊं।

भारत दुर्दैव : नहीं, विलायत जाने का अभी समय नहीं, अभी वहां त्रेता, द्वापर है।

अन्धकार : नहीं, मैंने एक बात कही। भला जब तक वहां दुष्टा विद्या का प्राबल्य है, मैं वहां जा ही के क्या करूंगा? गैस और मैगनीशिया से मेरी प्रतिष्ठा भंग न हो जायगी।

भारत दुर्दैव : हां, तो तुम हिन्दुस्तान में जाओ और जिस में हमारा हित हो सो करो। बस 'बहुत बुझाइ तुमहिं का कहऊं, परम चतुर मैं जानत अहऊं।'

अन्धकार : बहुत अच्छा, मैं चला। बस जाते ही देखिए क्या करता हूं।

[नेपथ्य में बैतालिक गान और गीत की समाप्ति में क्रम से पूर्ण अन्धकार और पटाक्षेप]

निहचै भारत को अब नास।
जब महराज विमुख उनसों तुम निज मति करी प्रकास॥
अब कहुं सरन तिन्हें नहिं मिलिहैं स्वैहै सब बल चूर।
बुद्धि विद्या धन धान सबै अब तिनको मिलिहै धूर॥

अब नहिं राम धर्म्म अर्जुन नहिं शाक्यसिंह अरु व्यास।
करिहै कौन पराक्रम इनमें को दैहे अब आस॥
सेवाजी रनजीतसिंह हू अब नहिं बाकी जौन।
करिहैं कछू नाम भारत को अब तो सब नृप मौन॥
वहीं उदैपुर जैपुर रीवां पन्ना आदिक राज।
परबस भए न सोच सकहिं कछु करि निज बल बेकाज॥
अंग्रेजहु को राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़।
स्वारथ पर विभिन्न मति भूले हिन्दू सब ह्वै मूढ़॥
जग के देस बढ़त बदि बदि के सब बाजी जेहि काल।
ताहू समय रात इनको है ऐसे ये बेहाल॥
छोटे चित अति भीरु बुद्धि मन चंचल बिगत उछाह।
उदर-भरन-रत, ईसबिमुख सब भए प्रजा नरनाह॥
इन सों कछू आस नहिं ये तो सब बिधि बुधि बल हीन।
बिना एकता बुद्धि कला के भए सबहि बिधि दीन॥
बोझ लादि कै पैर छानि कै निज सुख करहु प्रहार।
ये रासभ से कछु नहिं कहिहैं मानहु छमा अगार॥
हित अनहित पशु पंछी जाना पै ये जानहिं नाहिं।
भूले रहत आपूने रंग मैं फंसे मूढ़ता माहिं॥
जे न सुनहिं हित, भलो करहिं नहिं तिनसों आसा कौन।
डंका दै निज सैन साजि अब करहु उतै सब गौन॥

[पटाक्षेप]

●

पांचवां अंक

स्थान–किताबखाना

[छ सभ्यों की एक छोटी सी कमेटी; सभापति चक्करदार टोपी पहने, चश्मा लगाए, छड़ी लिए; पांच सभ्यों में एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक अखबार हाथ में लिए एडिटर, एक कवि और दो देशी महाशय]

सभापति : **(खड़े हो कर)** सभ्यगण! आज की कमेटी का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारत दुर्दैव की सुना है कि हम लोगों पर चढ़ाई है। इस हेतु आप लोगों को उचित है कि मिल कर ऐसा उपाय सोचिए जिस से हम लोग इस भावी आपत्ति से बचैं। जहां तक हो सकै अपने देश की रक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य धर्म्म है। आशा है कि आप सब लोग अपनी अपनी अनुमति प्रकट करैंगे।

[बैठ गए, करतलध्वनि]

बंगाली : **(खड़े हो कर)** सभापति साहब जो बात बोला बहुत ठीक है। इस का पेशतर कि भारत दुर्दैव हम लोगों का शिर पर आ पड़े कोई उस के परिहार का उपाय सोचना अत्यन्त आवश्यक है किन्तु प्रश्न एई है जे हम लोग उस का दमन करने करने शाकता कि हमारा बीर्ज्जो बल के बाहर का बात है। क्यौं नहीं शाकता? अलबत्ता शकैगा, परन्तु जो शब लोग एक मत्त होगा। **(करतल ध्वनि)** देखो हमारा बंगाल में इसका अनेक उपाय शाधन होते हैं। ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन लीग इत्यादि अनेक सभा भी होते हैं। कोई थोड़ा बी बात होता हम लोग मिल के बड़ा गोलमाल करते। गवर्नमेंट तो केवल गोलमाल से भय खाता। और कोई तरह नहीं शोनता। ओ हुआं का अखबार वाला शब एके बारे ऐसा शोर करता कि गवर्नमेंट को अलबत्त शुनने होता। किन्तु हेयां, हम देखते हैं कोई कुछ नहीं बोलता। आज शब आप सभ्य लोग एकत्र हैं, कुछ उपाय इस का अवश्य शोचना चाहिए।

[उपवेशन]

पहला देशी : (धीरे से) यहीं मगर जब तक कमेटी में हैं तभी तक। बाहर निकले कि फिर कुछ नहीं।

दूसरा देशी : (धीरे से) क्यों भाई, साहेब कमिश्नर इस कमेटी में आने से हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे?

एडिटर : (खड़े हो कर) हम अपने प्राणपण से भारत दुर्दैव को हटाने को तैयार हैं। हमने पहिले भी इस विषय में एक बेर अपने पत्र में लिखा था परन्तु यहां तो कोई सुनता ही नहीं। अब जब सिर पर आफत आई तो आप लोग उपाय सोचने लगे। भला अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जो कुछ सोचना हो जल्द सोचिए।

[उपवेशन]

कवि : (खड़े हो कर) मुहम्मदशाह से भांड़ों ने दुश्मन को फौज से बचने का एक बहुत उत्तम उपाय कहा था। उन्होंने बतलाया कि नादिरशाह के मुकाबले में फौज न भेजी जाय। जमना किनारे कनात खड़ी कर दी जाय, कुछ लोग चूड़ी पहने कनात के पीछे खड़े रहें। जब फौज इस पार उतरने लगे, कनात के बाहर हाथ निकालकर उंगली चमकाकर कहैं "मुए इधर न आइयो इधर जनाने हैं"। बस, सब दुश्मन हट जायंगे। यही उपाय भारत दुर्दैव से बचने का क्यों न किया जाय।

बंगाली : (खड़े हो कर) अलबत्त, यह भी एक उपाय, किन्तु जो स्त्री लोगों का असभ्यगण आदर न कर के सहसा कनात को आक्रमण करैगा तो...

[उपवेशन]

एडिटर : (खड़े हो कर) हमने एक दूसरा उपाय सोचा है, एडूकेशन की एक सेना बनाई जाय। कमेटी की फ़ौज। अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जायं। आप लोग क्या कहते हैं?

[उपवेशन]

दूसरा देशी : मगर जो हाकिम लोग इस से नाराज हों तो?

[उपवेशन]

बंगाली : हाकिम लोग काहे को नाराज होगा। हम लोग शदा चाहता कि अंगरेजों का राज्य उत्सन्न न हो, हम लोग केवल अपना बचाव करता।

[उपवेशन]

महाराष्ट्र : परन्तु इस के पूर्व्व यह होना अवश्य है कि गुप्त रीति से यह बात जानना कि हाकिम लोग भारत दुर्दैव की सैन्य से मिल तो नहीं जायंगे।

दूसरा देशी : इस बात पर बहस करना ठीक नहीं। नाहक कहीं लेने के देने न

पढ़ें, अपना काम देखिए (**उपवेशन और आप ही आप**) हां, नहीं तो अभी कल ही झाड़बाजी होय।

महाराष्ट्र : तो सार्व्वजनिक सभा स्थापन करना। कपड़ा बीनने की कल मंगाना। हिन्दुस्तानी कपड़ा पहिरना। यह भी सब उपाय।

दूसरा देशी : (**धीरे से**) बनात छोड़ कर गंजी पहिरेंगे, हें हें।

एडिटर : परन्तु अब समय थोड़ा है जल्दी उपाय सोचना चाहिए।

कवि : अच्छा तो एक उपाय यह सोचो कि सब हिन्दू मात्र अपना फैशन छोड़ कर कोट पतलून इत्यादि पहिरैं जिस में जब दुर्दैव की फौज आवै तो हम लोगों को योरोपियन जानकर छोड़ दे।

पहला देशी : पर रंग गोरा कहां से लावैंगे?

बंगाली : हमारा देश में 'भारत उद्धार' नामक एक नाटक बना है। उस में अंगरेजों को निकाल देने का जो उपाय लिखा, सोई हम लोग दुर्दैव का वास्ते काहे न अवलम्बन करैं। ओ लिखता पांच जन बंगाली मिल के अंगरेजों को निकाल देगा। उस में एक तो पिशान लेकर स्वेज का नहर पाट देगा। दूसरा बांस काट काट के पिचकारी नामक जलजन्त्र विशेष बनावैगा। तीसरा उस जलजन्त्र के अंगरेजों का आंख में धूर और पानी डालैगा।

महाराष्ट्र : नहीं नहीं, यह व्यर्थ की बात से क्या होना है। ऐसा उपाय करना जिस से फल सिद्ध हो।

पहला देशी : (**आप ही आप**) हाय! यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिल कर एक चित्त हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो जिस से वास्तविक कुछ उन्नति हो। क्रमशः सब कुछ हो जायगा।

एडिटर : आप लोग नाहक इतना सोच करते हैं, हम ऐसे ऐसे आर्टिकिल लिखैंगे कि उस के देखते ही दुर्दैव भागैगा।

कवि : और हम ऐसी ही कविता करैंगे।

पहला देशी : पर उनके पढ़ने का और समझने का अभी संस्कार किस को है?

[नेपथ्य में से]

[भागना मत, अभी मैं आती हूं]

[सब डर के चौकन्ने से होकर इधर उधर देखते हैं]

दूसरा देशी : (**बहुत डर कर**) बाबा रे, जब हम कमेटी में चले थे तब पहिले ही छींक हुई थी। अब क्या करैं।

[टेबल के नीचे छिपने का उद्योग करता है]

[डिसलायलटी का प्रवेश]

सभापति : **(आगे से ले आकर बड़े शिष्टाचार से)** आप क्यों यहां तशरीफ लाई हैं? कुछ हम लोग सरकार के विरुद्ध किसी मत को नहीं एकत्र हुए हैं। हम लोग अपने देश की भलाई को एकत्र हुए हैं।[1]

डिसलायलटी : नहीं, नहीं, तुम सब सरकार के विरुद्ध एकत्र हुए हो, हम तुम को पकड़ैंगे।

बंगाली : **(आगे बढ़ कर क्रोध से)** काहे को पकड़ैगा, कानून कोई घस्तु नहीं है। सरकार के विरुद्ध कौन बात हम लोग बोला? व्यर्थ का विभीषिका!

डिसलायलटी : हम क्या करैं, गवर्नमेंट की पालिसी यही है। 'कविवचनसुधा' नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी? फिर क्यों उस के पकड़ने के लिए हम भेजे गए।

सब : हम चार हैं।

पहला देशी : **(टेवल के नीचे से रो कर)** हम नहीं, हम नहीं, हम तमाशा देखने आए थे।

महाराष्ट्र : हाय हाय! यहां के लोग बड़े भीरु और कापुरुष हैं। इस में भय की कौन बात है! कानूनी है।

सभापति : तो पकड़ने का आप को किस कानून से अधिकार है?

डिसलायलटी : इंगलिश पालिसी नामक ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से।

महाराष्ट्र : परन्तु तुम?

दूसरा देशी : **(रो कर)** हाय हाय! भटवा तुम कहता है, अब मरे।

महाराष्ट्र : पकड़ नहीं सकती हम को भी दो हाथ दो पैर हैं। चलो हम लोग तुम्हारे संग चलते हैं, सवाल जवाब करैंगे।

बंगाली : हां चलो, ओ का बात—पकड़ने नहीं शेकता।

सभापति : **(स्वगत)** चेयरमैन होने से पहिले हमी को उत्तर देना पड़ैगा। इसी से किसी बात में हम अगुआ नहीं होते।

डिसलायलटी : अच्छा चलो।

[सब चलने की चेष्टा करते हैं]

[पटाक्षेप]

●

1. पुलिस की वर्दी पहिने।

छठा अंक

स्थान–गम्भीर वन का मध्यभाग

[भारत एक वृक्ष के नीचे अचेत पड़ा है]

[भारतभाग्य का प्रवेश]

भारतभाग्य गाता हुआ

[राग चैती गौरी]

जागो जागो रे भाई!
सोकत निसि द्यौस गंवाई जागो जागो रे भाई॥
निसि की कौन कहै दिन बीत्यौ काल राति चलि आई।
देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस जाई॥
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई।
अबहूं चेति, पकरि राखो किन जो कछु बची बड़ाई॥
फिर पछिताए कछु नहिं ह्वै है रहि जैहौ मुंह बाई॥
जागो जागो रे भाई॥

[भारत को जगाता है और भारत जब नहीं जागता तब अनेक यत्न से फिर जगाता है, अन्त में हार कर उदास हो कर]

हाय! भारत को आज क्या हो गया है क्या निस्सन्देह परमेश्वर इस से ऐसा ही रूठा है हाय क्या अब भारत के फिर वे दिन न आवेंगे हाय यह वही भारत है जो किसी समय सारी पृथ्वी का शिरोमणि गिना जाता था?

भारत के भुजबल जग रच्छित।
भारत विद्या लहि जग सिच्छित॥
भारत तेज जगत विस्तारा।
भारत भय कांपत संसारा॥
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए।
थर थर कांपत नृप डरपाए॥
जाके जय की उज्जवल गाथा।
गावत सब महि मंगल साथा॥

भारत किरिन जगत उंजियारा।
भारत जीव जियत संसारा॥
भारत वेद कथा इतिहासा।
भारत वेद प्रथा परकासा॥
फिनिक मिसिर सीरीय युनाना।
भे पंडित लहि भारत दाना॥
रस्यौ रुधिर जब आरज सीसा।
ज्वलित अनल समान अवनीसा॥
साहस बल इन सम कोउ नाहीं।
तबै रस्यौ महिमंडल माहीं॥
कहा करों तकसीर तिहारी।
रे बिधि रुष्ट याहि की बारी॥
सबै सुखी जग के नर नारी।
रे बिधना भारतहि दुखारी॥
हाय रोम तू अति बड़ भागी।
बर्बर तोहि नास्यो जय लागी॥
तोड़े कीरति थम्भ अनेकन।
ढाहे गढ़ बहु करि प्रण टेकन॥
मन्दिर महलनि तोरि गिराये।
सबै चिह्न तव धूरि मिलाये॥
कछु न बची तुव भूमि निसानी।
सो बरु मेरे मन अति मानी॥
भारत भाग न जीत न हारे।
थाप्यो पग ता सीस उघारे॥
तोर्‌यो दुर्गन महल ढहायो।
तिनही में निज गेह बनायो।
ते कलंक सब भारत केरे।
ठाढ़े अजहूं लखो घनेरे॥
काशी प्राग अयोध्या नगरी।
दीन रूप सम ठाढ़ीं सगरी॥
चंडालहु जेहि निरखि घिनाई।
रहीं सबै भुव मुंह मसि लाई॥
हाय पंचनद हा पानीपत।
अजहुं रहे तुम धरनि बिराजत॥

हाय चितौर निलज तू भारी।
अजहुं खरो भारतहि मंझारी॥
जा दिन तुव अधिकार नसायो।
सो दिन क्यों नहिं धरनि समायो॥
रह्यो कलंक न भारत नामा।
क्यौं रे तू बारानसि धामा॥
सब तजि कै भजि कै दुख भारी।
अजहुं बसत करि भुव सुखकारी॥
अरे अग्रवन तीरथ राजा।
तुमहुं बचे अबलौं तजि लाजा॥
पापिनि सरजू नाम धराई।
अजहुं बहत अवध तट जाई॥
तुममें जल नहिं जमुना गंगा।
बढ़हु बेग करि तरल तरंगा॥
धोवहु यह कलंग की रासी।
बोरहु किन झट मथुरा कासी॥
कुस कन्नौज अंग अरू बंगहि।
बोरहु किन निज कठिन तरंगहि॥
बोरहु भारत भूमि सबेरे।
मिटै करक जिय की तब मेरे॥
अहो भयानक भ्राता सागर।
तुम तरंगनिधि अति बल आगर॥
बोरे बहु गिरि वन अस्थाना।
पै बिसरे भारत हित जाना॥
बढ़हु न बेगि धाई क्यौं भाई।
देहु भारत भुव तुरत डुबाई॥
घेरि छिपावहु विंध्य हिमालय।
करहु सकल जल भीतर तुम लय॥
धोवहु भारत अपजस पंका।
मेटहु भारत भूमि कलंका॥

हाय! यहीं के लोग किसी काल में जगन्मान्य थे—

जेहि छिन बलभारे हे सबै तेगधारे।
तब सब जग धाई फेरते हे दुहाई।
जगसिर पग धारे धावते रोस भारे।
विपुल अवनि जीती पालते राजनीती॥

जग इन बल कांपै देखि कै चंड दापै।
सोइ यह प्रिय मेरे ह्वै रहे आज चेरे॥
ये कृष्ण वरन जब मधुर तान।
करते अमृतोपम वेद गान॥
तब मोहत सब नर नारि वृंद।
सुनि मधुर बरन सज्जित सुछंद॥
जग के सबहीं जन धारि स्वाद।
सुनते इनहीं को बीन नाद॥
इनके गुन हो तो सबहि चैन।
इनहीं कुल नारद तानसैन॥
इनहीं के क्रोध किये प्रकास।
सब कांपत भूमंडल अकास॥
इनहीं के हुंकृति शब्द घोर।
गिरि कांपत हे सुनि चारु सोर॥
जब लेत रहे कर में कृपान।
इनहीं कहं हो जग तृन समान॥
सुनि के रन बाजन खेत मांहि।
इनहीं कहं हो जिय संक नाहि॥

याही भुव मंह होत है हीरक आम कपास।
इतही हिमगिरि गंग जल काव्य गीत परकास॥
जावाली जैमिनि गरग पातंजलि सुकदेव।
रहे भारत हि अंक में कबहि सबै भुव देव॥
याही भारत मध्य में रहे कृष्ण मुनि व्यास।
जिनके भारतगान सों भारत बदन प्रकास॥
याही भारत में रहे कपिल सूत दुरवास।
याही भारत में भये शाक्य सिंह संन्यास।
याही भारत में गये मनु भृगु आदिक होय।
तब तिन सों जग में रह्यो घृणा करत नहिं कोय॥
जासु काव्य सों जगत मधि अबलैं ऊंचो सीस।
जासु राज बल धर्म की तृषा करहिं अवनीस॥
सोई व्यास अरु राम के वंस सबै संतान।
ये मेरे भारत भरे सोइ गुन रूप समान॥
सोई वंस रुधिर वही सोइ मन विस्वास।
वही वासना चित वही आसय वही विलास॥

कोटि कोटि ऋषि पुन्य तन कोटि कोटि अति सूर।
कोटि कोटि बुध मधुर कवि मिले यहां की धूर॥
सोइ भारत की आज यह भई दुरदसा हाय।
कहा करैं कित जायं नहिं सूझत कछू उपाय॥

[भारत को फिर उठाने की अनेक चेष्टा कर के उपाय निष्फल होने पर रो कर]

हा! भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब इस के उठने की आशा नहीं। सच है जो जान बूझ कर सोता है उसे कौन जगा सकैगा। हा दैव! तेरे विचित्र चरित्र हैं। जो कल राज करता था वह आज जूते में टांका उधार लगवाता है। कल जो हाथी पर सवार थे आज नंगे पांव वन वन की धूल उड़ाते फिरते हैं। कल जिनके घर लड़के लड़कियों के कोलाहल से कान नहीं दिया जाता था आज उसका नामलेवा और पानीदेवा कोई नहीं बचा और कल जो घर अन्न, धन, पूत, लक्ष्मी हर तरह से भरे पूरे थे आज उन घरों में तू ने दिया बालनेवाला भी न छोड़ा।

हा! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट, प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार में ऊंचा है उस भारत की यह दुर्दशा! जिस भारतवर्ष के राजा चन्द्रगुप्त और अशोक का शासन रूम रूस तक माना जाता था उस भारत की यह दुर्दशा! जिस भारत में राम, युधिष्ठिर, नल, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हैं उस की यह दशा! हाय, भारत भैया उठो! देखो विद्या का सूर्य्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है। अब सोने का समय नहीं है। अंगरेज का राज्य पाकर भी न जागे तो कब जागोगे। मूर्खों के प्रचंड शासन के दिन गए। अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना, विद्या की चरचा फैल चली, सब को सब कुछ कहने का अधिकार मिला। देश विदेश से नई नई विद्या और कारीगरी आई। तुम को उस पर भी वे ही सीधी बातैं, भांग के गोले, ग्राम गीत, वही बाल विवाह, भूत प्रेत की पूजा, जन्मपत्री की विधि, वही थोड़े में सन्तोष, गप हांकने की प्रीति सत्यानाशी चालैं! हाय अब भी भारत की यह दुर्दशा! अरे अब क्या चिता पर सम्हालैगा? भारत भाई! उठो, देखो अब दुःख नहीं सहा जाता। अरे कब तक बेसुध रहोगे? उठो, देखो, तुम्हारी सन्तानों का नाश हो गया। छिन्न भिन्न होकर सब नर्क की यातना भोगते हैं, उस पर भी नहीं चेतते। हाय! मुझ से तो

अब यह दशा नहीं देखी जाती। प्यारे जागो! **(जगा कर और नाड़ी देख कर)** हा, इसे तो बड़ा ही ज्वर चढ़ा है! किसी तरह होश में नहीं आता। हा! भारत तेरी क्या दशा हो गई! हे करुणासागर भगवान, इधर भी दृष्टि कर! हे भगवती राज राजेश्वरी, इस का हाथ पकड़ो। **(रो कर)** अरे कोई नहीं जो इस समय अवलम्ब दे। हा! अब मैं जी के क्या करूंगा? जब भारत ऐसा मेरा मित्र इस दुर्दशा में पड़ा है और मैं उसका उद्धार नहीं कर सकता तो मेरे जीने पर धिक्कार है जिस भारत का मेरे साथ अब तक इतना सम्बन्ध था उस की ऐसी दशा देख कर भी मैं जीता रहूं तो बड़ा कृतघ्न हूं। **(रोता है)** हा! विधाता तुझे यही करनी थी! **(आतंक से)** छिः छिः, इतना क्लैव्य क्यौं। इस समय यह अधीरजपना। बस, अब धैर्य्य! **(कमर से कटार निकाल कर)** भाई भारत मैं तुम्हारे ऋण से छूटता हूं। मुझ से वीरों का कर्म्म नहीं हो सकता इसी से कातर की भांति प्राण देकर उऋण होता हूं। **(ऊपर हाथ उठा कर)** हे सर्व्वान्तर्यामी हे परमेश्वर जन्म जन्म मुझे भारत सा भाई मिलै। जन्म जन्म गंगा जमुना के किनारे मेरा निवास हो।

[भारत का मुंह चूम कर और गले लगा कर]

भैया मिल लो अब मैं विदा होता हूं। भैया हाथ क्यौं नहीं उठाते? मैं ऐसा बुरा हो गया कि जन्म भर के वास्ते मैं विदा होता हूं तब भी ललक कर मुझ से नहीं मिलते। मैं ऐसा ही अभागा हूं तो ऐसे अभागे जीवन ही से क्या? बस यह लो।

[कटार का छाती में आघात और साथ ही जवनिका पतन]

[पहली बार कविवचन सुधा में प्रकाशित, 1876 ई. में खड्गलिास प्रेस, बांकीपुर से पुस्तकाकार प्रकाशित।—सम्पादक]

●

श्रीचन्द्रावली

(नाटिका)

सन 1876 ई.

काव्य, सुरस सिंगार के दोउ दल, कविता नेम।
जग जन सों कै ईस सों कहियत जेहि पर प्रेम॥
हरि उपासना, भक्ति, वैराग, रसिकता, ज्ञान।
सोधैं जग जन मानि या चन्द्रावलिहि प्रमान॥

समर्पण

प्यारे!

लो तुम्हारी चन्द्रावली तुम्हें समर्पित है। अंगीकार तो किया ही है, इस पुस्तक को भी उन्हीं की कानि से अंगीकार करो! इस में तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो संसार में प्रचलित है। हां, एक अपराध तो हुआ जो अवश्य क्षमा करना होगा। वह यह कि यह प्रेम की दशा छाप कर प्रसिद्ध की गई। वा प्रसिद्ध करने ही से क्या जो अधिकारी नहीं है उन की समझ ही में न आवैगा।

तुम्हारी कुछ विचित्र गति है। हमीं को देखो। जब अपराधों को स्मरण करो तब ऐसे कि कुछ कहना ही नहीं। क्षण भर जीने के योग्य नहीं। पृथ्वी पर पैर धरने को जगह नहीं। मुंह दिखाने के लायक नहीं। और जो यों देखो तो ये लम्बे लम्बे मनोरथ। यह बोलचाल। यह ढिठाई कि तुम्हारा सिद्धान्त कह डालना। जो हो, इस दूध खटाई की एकत्र स्थिति का कारण तुम्हीं जानो। इस में कोई सन्देह नहीं कि जैसे हों तुम्हारे बनते हैं। अतएव क्षमा समुद्र! क्षमा करो। इसी में निर्वाह है। बस–

भाद्रपद कृष्ण 14 **हरिश्चन्द्र**
संवत् 1933

श्रीचन्द्रावली

(नाटिका)

स्थान–रंगशाला

[ब्राह्मण आशीर्वाद पाठ करता हुआ आया]

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अलौकिक घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥

और भी

नेति नेति तत् शब्द प्रतिपाद्य सर्व भगवान।
चन्द्रावली चकोर श्रीकृष्ण करौ कल्यान॥

[सूत्रधार आता है]

सूत्रधार : बस बस, बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं? मारिष, मारिष दौड़ो दौड़ो, आज ऐसा अच्छा अवसर फिर न मिलैगा, हम लोग अपना गुण दिखा कर आज निश्चय कृतकृत्य होंगे।

[पारिपार्श्वक आ कर]

पारिपार्श्वक : कहो कहो, आज क्यौं ऐसे प्रसन्न हो रहे हो? कौन सा नाटक करने का विचार है और उस में ऐसा कौन सा रस है कि फूले नहीं समाते?

सूत्रधार : आः तुमने अब तक न जाना? आज मेरा विचार है कि इस समय के बने एक नए नाटक की लीला करूं क्यौंकि संस्कृत नाटकों को अपनी भाषा में अनुवाद करके तो हम लोग अनेक बार खेल चुके हैं, फिर बारम्बार उन्हीं को खेलने को जी नहीं चाहता।

पारिपार्श्वक : तुम ने बात तो बहुत अच्छी सोची, वाह! क्यौं न हो, पर यह तो कहो कि वह नाटक बनाया किस ने है?

सूत्रधार : हम लोगों के परम मित्र हरिश्चन्द्र ने।

पारिपार्श्वक : (मुंह फेर कर) किसी समय तुम्हारी बुद्धि में भी भ्रम हो जाता है। भला वह नाटक बनाना क्या जानैं। वह तो केवल आरम्भ शूर है। और अनेक बड़े बड़े कवि हैं, कोई उनका प्रबन्ध खेलते?

सूत्रधार : (हंस कर) इस में तुम्हारा दोष नहीं, तुम तो उस से नित्य नहीं मिलते, जो लोग उस के संग में रहते हैं वे तो उस को जानते ही नहीं, तुम विचारे क्या हौ!

पारिपार्श्वक : (आश्चर्य से) हां, मैं तो जानता ही न था, भला कहो उन के दो चार गुण मैं भी सुन सकता हूं?

सूत्रधार : क्यौं नहीं, पर जो श्रद्धा से सुनो तो।

पारिपार्श्वक : मैं प्रति रोम को कर्ण बना कर महाराज पृथु हो रहा हूं, आप कहिए।

सूत्रधार : (आनन्द से) सुनो—

परम प्रेमनिधि रसिक बर, अति उदार गुन खान।
जग जन रंजन आशु कवि, को हरिश्चन्द्र समान॥
जिन श्री गिरिधरदास कवि, रचे ग्रन्थ चालीस।
ता सुत श्री हरिचन्द को, को न नवावै सीस॥
जग जिन तृन सम करि तज्यौ, अपने प्रेम प्रभाव।
करि गुलाब सों आचमन, लीजत वाको नांव॥
चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत के नेम।
यह दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न अविचल प्रेम॥

पारिपार्श्वक : वाह वाह! मैं ऐसा नहीं जानता था, तब तो इस प्रयोग में देर करनी ही भूल है।

[नेपथ्य में]

श्रवन सुखद भव भय हरन त्यागिन कों अत्याग।
नष्ट जीव बिनु कौन हरि गुन सों करै विराग॥
हम सौंहू तजि जात नहिं, परम पुन्य फल जौन।
कृष्ण कथा सौं मधुरतर, जग मैं भाखौं कौन॥

सूत्रधार : (सुनकर आनन्द से) आहा! वह देखो मेरा प्यारा छोटा भाई शुकदेवजी बन कर रंगशाला में आता है और हम लोग बातों ही से नहीं सुलझे। तो अब मारिष! चलो, हम लोग भी अपना अपना वेष धारण करैं।

पारिपार्श्वक : क्षण भर और ठहरो, मुझे शुकदेवजी के इस वेष की शोभा देख लेने दो, तब चलूंगा।

सूत्रधार : सच कहा, अहा कैसा सुन्दर बना है, वाह मेरे भाई वाह। क्यौं न हो, आखिर तो मुझ रंगरंजक का भाई है॥

अति कोमल सब अंग रंग सांवरो सलोना।
घुंघर वाले बालन पै बलि वारौं टोना॥

भुज विशाल, मुख चन्द्र झलमले, नैन लजौहें।
जुग कमान सी खिंची गड़त हिय में दोउ भौहैं॥
छवि लखत नैन छिन नहिं टरत शोभा नहिं कहि जात है।
मनु प्रेमपुंज ही रूप धरि आवत आजु लखात है॥

(तो चलो हम भी अपने अपने स्वांग सजकर आवैं।)

[दोनों जाते हैं]

●

अथ विष्कम्भक

[आनन्द में झूमते हुए डगमगी चाल से शुकदेवजी आते हैं]

शुकदेव : **(श्रवन सुखद इत्यादि फिर से पढ़ कर)** अहा! संसार के जीवों की कैसी विलक्षण रुचि है, कोई नेम धर्म्म में चूर है, कोई ज्ञान के ध्यान में मस्त, कोई मत मतान्तर के झगड़े में मतवाला हो रहा है, एक दूसरे को दोष देता है, अपने को अच्छा समझता है, कोई संसार को ही सर्वस्व मान कर परमार्थ से चिढ़ता है, कोई परमार्थ ही को परम पुरुषार्थ मान कर घर बार तृण सा छोड़ देता है। अपने अपने रंग में सब रंगे हैं, जिस ने जो सिद्धान्त कर लिया है वही उस के जी में गड़ रहा है और उसी के खंडन मंडन में जन्म बिताता है, पर वह जो परम प्रेम अमृतमय एकान्त भक्ति है, जिस के उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह स्वरूप ज्ञान विज्ञानादिक अन्धकार नाश हो जाते हैं और जिस के चित्त में आते ही संसार का निगड़ आप से आप खुल जाता है वह किसी को नहीं मिली; मिले कहां से? सब उस के अधिकारी भी तो नहीं हैं। और भी, जो लोग धार्म्मिक कहाते हैं उन का चित्त, स्वमत स्थापन और परमत निराकरण रूप वाद विवाद से और जो विचारे विषयी हैं उन का अनेक प्रकार की इच्छा रूपी तृष्णा से, अवसर तो पाता ही नहीं कि इधर झुकैं। **(सोच कर)** अहा इस मदिरा को शिवजी ने पान किया है और कोई क्या पियेगा? जिस के प्रभाव से अर्द्धांग में बैठी पार्वती भी उन को विकार नहीं कर सकती, धन्य हैं, धन्य हैं, और दूसरा ऐसा कौन है। **(विचार कर)** नहीं नहीं, व्रज की गोपियों ने उन्हें भी जीत लिया है। आहा, इन का कैसा विलक्षण प्रेम है कि अकथनीय और अकरणीय है; क्यौंकि जहां माहात्म्य ज्ञान होता है वहां प्रेम नहीं होता और जहां पूर्ण प्रीति होती है वहां माहात्म्य ज्ञान नहीं होता। ये धन्य हैं कि इन में दोनों बातैं एक संग मिलती हैं, नहीं तो मेरा सा निवृत्त मनुष्य भी रात दिन इन्हीं लोगों का यश क्यौं गाता है?

[नेपथ्य में वीणा बजती है]

[आकाश की ओर देख कर और वीणा का शब्द सुन कर]

आहा! यह आकाश कैसा प्रकाशित हो रहा है और वीणा के कैसे मधुर स्वर कान में पड़ते हैं। ऐसा सम्भव होता है कि देवर्षि भगवान् नारद यहां आते हैं? आहा! वीणा कैसे मीठे सुर से बोलती है। (नेपथ्य पथ की ओर देख कर) अहा, वही तो हैं, धन्य हैं कैसी सुन्दर शोभा है—

पिंग जटा को भार सीस पै सुन्दर सोहत।
गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत॥
कटि मृगपति को चरम चरन मैं घुंघरू धारत।
नारायण गोविन्द कृष्ण यह नाम उचारत॥
लै वीणा कर वादन करत तान सात सुर सों भरत।
जग अघ छिन मै हरि कहि हरत जेहि सुनि नर भवजल तरत॥
जुग तूंबन की बीन परम शोभित मनभाई।
लय अरु सुर की मनहुं जुगल गठरी लटकाई॥
आरोहन अवरोहन के कै द्वै फल सोहैं।
कै कोमल अरु तीव्र सुर भरे जग मन मोहैं॥
कै श्री राधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रगट।
यह अगम खजाने द्वै भरे नित खरचत तो हूं अघट॥
मनु तीरथमय कृष्ण चरित की कांवरि लीने।
कै भूगोल खगोल दोउ कर अमलक कीने॥
जग बुधि तौलन हेत मनहुं यह तुला बनाई।
भक्ति मुक्ति की जुगल पिटारी कै लटकाई॥
मनु गावन सों श्री राग के वीणा हू फलती भई।
कै राग सिन्धु के तरन हित यह दोऊ तूंबी लई॥
ब्रह्म जीव, निरगुन सगुन, द्वैताद्वैत बिचार।
नित्य अनित्य विवाद के द्वै तूंबा निरधार॥
जो इक तुंबा लै कढ़ै सो बैरागी होय।
क्यौं नहिं ये सबसों बढ़ैं, लै तुंबा कर दोय॥

तो अब इन से मिल के आज मैं परमानन्द लाभ करूंगा ।

[नारदजी आते हैं]

शुकदेव : (आगे बढ़ कर और गले से मिल कर) आइए आइए, कहिए कुशल तो है? किस देश को पवित्र करते हुए आते हैं?

नारद : आप से महापुरुष के दर्शन हों और फिर भी कुशल न हो यह बात

तो सर्वथा असम्भव है; और आप से तो कुशल पूछना ही व्यर्थ है।

शुकदेव : यह तो हुआ, अब कहिए आप आते कहां से हैं?

नारद : इस समय तो मैं श्रीवृन्दावन से आता हूं।

शुकदेव : अहा! आप धन्य हैं जो उस पवित्र भूमि से आते हैं। **(पैर छू कर)** धन्य है उस भूमि की रज, कहिए वहां क्या क्या देखा?

नारद : वहां परम प्रेमानन्दमयी श्री व्रजवल्लभी लोगों का दर्शन कर के अपने को पवित्र किया और उन की विरहावस्था देखता बरसों वहीं भूला पड़ा रहा। अहा, ये श्री गोपीजन धन्य हैं, इन के गुणगण कौन कह सकता है—

गोपिन की सरि कोऊ नाहीं।
जिन तृन सम कुल लाज निगड़ सब तोर्‌यौ हरि रस माहीं ॥
जिन निज बस कीने नंदनंदन विहरीं दै गलबांही।
सब सन्तन के सीस रहौ इन चरन छत्र की छांहीं ॥

व्रज की लता पता मोहि कीजै।
गोपी पद पंकज पावन की रज ज़ामैं सिर भींजै।
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै।
श्री राधे राधे मुख यह वर मुंह मांग्यौ हरि दीजै॥

[प्रेम अवस्था में आते हैं और नेत्रों से आंसू बहते हैं]

शुकदेव : **(अपने आंसू पोंछ कर)** अहा; 'धन्य हैं, आप, धन्य हैं, अभी जो मैं न संभालता तो वीणा आप के हाथ से छूट के गिर पड़ती। क्यौं न हो, श्री महादेवजी के प्रीति के पात्र हो कर आप ऐसे प्रेमी हों इस में आश्चर्य नहीं।

नारद : **(अपने को संभाल कर)** अहा! ये क्षण कैसे आनन्द से बीते हैं, यह आप से महात्मा की संगत का फल है।

शुकदेव : कहिए, उन सब गोपियों में प्रेम विशेष किसका है?

नारद : विशेष किसका कहूं और न्यून किसका कहूं, एक से एक बढ़ कर हैं। श्रीमती की कोई बात ही नहीं, वे तो श्रीकृष्ण ही हैं, लीलार्थ दो हो रही हैं; तथापि सब गोपियों में श्रीचन्द्रावलीजी के प्रेम की चर्चा आजकल व्रज के डगर-डगर में फैली हुई है। अहा! कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता पिता, भाई बन्धु सब निषेध करते हैं, और उधर श्रीमतीजी का भी भय है, तथापि श्रीकृष्ण से जल में दूध की भांति मिल रही हैं। लोकलाज गुरुजन कोई बाधा नहीं

कर सकते। किसी न किसी उपाय से श्रीकृष्ण से मिली ही रहती हैं।

शुकदेव : धन्य हैं धन्य हैं! कुल को वरन, जगत् को अपने निर्मल प्रेम से पवित्र करने वाली है।

[नेपथ्य में वेणु का शब्द होता है]

अहा! यह वंशी का शब्द तो और भी व्रजलीला की सुधि दिलाता है। चलिए, चलिए अब तो व्रज का वियोग सहा नहीं जाता; शीघ्र ही चल के उनका प्रेम देखैं, उस लीला के बिना देख आंखैं व्याकुल हो रही हैं।

[दोनों जाते हैं]

॥ इति प्रेमसुख नामक विष्कम्भक ॥

●

पहिला अंक

(जवनिका उठती है)

स्थान–श्री वृन्दावन : गिरिराज दूर से दिखाता है।

[श्रीचन्द्रावली और ललिता आती हैं]

ललिता : प्यारी व्यर्थ इतना शोच क्यौं करती है?

चन्द्रावली : नहीं सखी! मुझे शोच किस बात का है।

ललिता : ठीक है, ऐसी ही तो हम मूर्ख हैं कि इतना भी नहीं समझतीं।

चन्द्रावली : नहीं सखी! मैं सच कहती हूं, मुझे कोई शोच नहीं।

ललिता : बलिहारी सखी! एक तू ही तो चतुर है, हम सब तो निरी मूर्ख हैं।

चन्द्रावली : नहीं सखी! जो कुछ शोच होता तो मैं तुझ से कहती न। तुझ से ऐसी कौन बात है जो छिपाती?

ललिता : इतनी ही तो कसर है, जो तू मुझे अपनी प्यारी सखी समझती तो क्यौं छिपाती?

चन्द्रावली : चल, मुझे दुःख न दे! भला मेरी प्यारी सखी, तू न होगी तो और कौन होगी?

ललिता : पर यह बात मुख से कहती है, चित्त से नहीं।

चन्द्रावली : क्यौं?

ललिता : जो चित से कहती तो फिर मुझ से क्यौं छिपाती?

चन्द्रावली : नहीं सखी, यह केवल तेरा झूठा सन्देह है।

ललिता : सखी, मैं भी इसी व्रज में रहती हूं और सब के रंग ढंग देखती ही हूं। तू मुझ से इतना क्यौं उड़ती है? क्या तू यह समझती है कि मैं यह भेद किसी से कह दूंगी, ऐसा कभी न समझना। सखी तू तो मेरी प्राण है। मैं तेरा भेद किससे कहने जाऊंगी?

चन्द्रावली : सखी, भगवान न करे कि किसी को किसी बात का सन्देह पड़ जाय जिस को जो सन्देह पड़ जाता है वह फिर कठिनता से मिटता है।

ललिता : अच्छा तू सौगन्द खा।

चन्द्रावली : हां सखी, तेरी सौगन्द।

ललिता : क्या मेरी सौगन्द?

चन्द्रावली : तेरी सौगन्द कुछ नहीं है।

ललिता : क्या कुछ नहीं है, फिर तू चली न अपनी चाल से? तेरी छल विद्या कही नहीं जाती। तू व्यर्थ इतना क्यों छिपाती है! सखी, तेरा मुखड़ा कहे देता है कि तू कुछ सोचा करती है।

चन्द्रावली : क्यों सखी, मेरा मुखड़ा क्या कहे देता है?

ललिता : यही कहे देता है कि तू किसी की प्रीति में फंसी है।

चन्द्रावली : बलिहारी सखी, मुझे अच्छा कलंक दिया।

ललिता : यह बलिहारी कुछ काम न आवैगी। अन्त में फिर मैं ही काम आऊंगी और मुझी से सब कहना पड़ैगा, क्योंकि इस रोग का वैद्य मेरे सिवा दूसरा कोई न मिलैगा।

चन्द्रावली : पर सखी जब कोई रोग हो तब न?

ललिता : फिर वही बात कहे जाती है। अब क्या मैं इतना भी नहीं समझती! सखी, भगवान ने मुझे भी आंखैं दी हैं और मेरे भी मन है और मैं कुछ ईंट पत्थर की नहीं बनी हूं।

चन्द्रावली : यह कौन कहता है कि तू ईंट पत्थर की बनी है इस से क्या?

ललिता : इस से यह कि इस व्रज में रह कर उस से वही बची होगी जो ईंट पत्थर की होगी।

चन्द्रावली : किससे?

ललिता : जिस के पीछे तेरी यह दशा है?

चन्द्रावली : किसके पीछे मेरी यह दशा है?

ललिता : सखी, तू फिर वही बात कहे जाती है। मेरी रानी, ये आंखैं ऐसी बुरी हैं कि जब किसी से लगती हैं तब कितना भी छिपाओ नहीं छिपतीं—

छिपाए छिपत न नैन लगे।
उघरि परत सब जानि जात है घूंघट मैं न खगे॥
कितनो करौ दुराव दूरत नहिं जब ये प्रेम पगे।
निडर भए उघरे से डोलत मोहन रंग रंगे॥

चन्द्रावली : वाह सखी क्यों न हो, तेरी क्या बात है। अब तू ही तो एक पहेली बूझने वालों में बची है। चल बहुत झूठ न बोल, कुछ भगवान से भी डर।

ललिता : जो तू भगवान से डरती तो झूठ क्यों बोलती? वाह सखी, अब तो तू बड़ी चतुर हो गई है। कैसा अपना दोष छिपाने को मुझे पहिले ही से झूठी बना दिया। (हाथ जोड़ कर) धन्य है, तू दंडवत् करने

के योग्य है। कृपा करके अपना बायां चरण निकाल तो मैं भी पूजा करूं। चल मैं आज पीछे तुझ से कुछ न पूछूंगी।

चन्द्रावली : **(कुछ सकपकानी सी हो कर)** नहीं सखी, तू क्यौं झूठी है, झूठी तो मैं हूं, और जो तू ही बात न पूछैगी तो कौन बात पूछैगा, सखी तेरे ही भरोसे तो मैं ऐसी निडर रहती हूं और तू ऐसी रूसी जाती है!

ललिता : नहीं, बस अब मैं कभी कुछ नहीं पूछने की। एक बेर पूछ कर फल पा चुकी।

चन्द्रावली : **(हाथ जोड़ कर)** नहीं सखी, ऐसी बात मुंह से मत निकाल। एक तो मैं आप ही मर रही हूं तेरी बात सुनने से और भी अधमरी हो जाऊंगी।

[आंखों में आंसू भर लेती है]

ललिता : प्यारी तुझे मेरी सौगन्द। उदास न हो, मैं तो सब भांति तेरी हूं और तेरे भले के हेतु प्राण देने को तैयार हूं यह तो मैंने हंसी की थी क्या मैं नहीं जानती कि तू मुझ से कोई बात न छिपावैगी और छिपावैगी तो काम कैसे चलैगा, देख!—

हम भेद न जानिहैं जो पै कछू
और दुराव सखी हम मैं परिहैं।
कहि कौन मिलै है पियारे पियैं
पुनि कारज कासों सबै सरिहैं॥
बिन मोसों कहे न उपाय कछू,
यह वेदन दूसरी को हरिहैं॥
नहिं रोगी बताइहै रोगहिजो
सखी बापुरो बैद कहा करिहैं॥

चन्द्रावली : तो सखी, ऐसी कौन बात है जो तुझ से छिपी है? तू जानबूझ के बार-बार क्यौं पूछती है? ऐसे पूछने को तो मुंह चिढ़ाना कहते हैं और इस के सिवा मुझे व्यर्थ याद दिलाकर क्यौं दुःख देती है? हा!

ललिता : सखी, मैं तो पहिले ही समझी थी, यह तो केवल तेरे हठ करने से मैंने इतना पूछा, नहीं तो मैं क्या नहीं जानती?

चन्द्रावली : सखी, मैं क्या करूं? मैं कितना चाहती हूं कि यह ध्यान भुला दूं, पर उस निष्ठुर की छवि भूलती नहीं इसी से सब जान जाते हैं।

ललिता : सखी, ठीक है—

लगौंही चितवनि औरहि होति।
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति॥
घूंघट मैं नहिं थिरत तनिकं हूं अति ललचौंही बानि।
छिपत न कैसहुं प्रीति निगौड़ी अन्त जात सब जानि॥

चन्द्रावली : सखी, ठीक है। जो दोष है, वह इन्हीं नेत्रों का है। यहीं रीझते, यही अपने को छिपा नहीं सकते और यही दुष्ट अन्त में अपने किए पर रोते हैं–

सखी ये नैना बहुत बुरे।
तब सौं भए पराए हरि सों जब सों जाइ जुरे॥
मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरै।
मेरी सीख प्रीति सब छांड़ी ऐसे ये निगुरे॥
जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहिं हठ सों तनिक मुरे।
अमृत भरे देखत कमलन से विष के बुझे छुरे॥

ललिता : इस में क्या सन्देह है? मुझ पर तो सब कुछ बीत चुकी है। मैं इन के व्यवहारों को अच्छी रीति से जानती हूं। ये निगोड़े नैन ऐसे ही होते हैं–

होत सखि ये उलझौहैं नैन।
उरझि परत सुरझ्यो नहीं जानत सोचत समुझत हैंन॥
कोउ नहिं बरजै जो इनको बनत मत्त जिमि गैन।
कहा कहौं इन बैरिन पाछे होत लैन के दैन॥

चन्द्रावली : और फिर इनका हठ ऐसा है कि जिस की छबि पर रीझते हैं उसे भूलते नहीं, और कैसे भूलें? क्या वह भूलने के योग्य है? हा!–

नैना वह छवि नाहिंन भूले।
दया भरी चहुं दिसि की चितवनि, नैन कमल दल फूले॥
वह आवनि वह हंसनि छबीली, वह मुसकनि चित चौरैं।
वह बतरानि, मुरनि हरि की वह, वह देखन चहु कौरै॥
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे॥
परबस भए फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे।
हरि ससि मुख ऐसी छवि निरखत तन मन धन सब हारे॥

ललिता : सखी, मेरी तो यह बिपति भोगी हुई है, इससे मैं तुझे कुछ नहीं कहती; दूसरी होती तो तेरी निन्दा करती और तुझे इससे रोकती।

चन्द्रावली : सखी, दूसरी होती तो मैं भी तो उससे यों एक संग न कह देती। तू तो मेरी आत्मा है। तू मेरा दुःख मिटावैगी कि उलटा समझावैगी?

ललिता : पर सखी, एक बड़े आश्चर्य की बात है कि जैसी तू इस समय दुखी है वैसी तू सर्व्वदा नहीं रहती।

चन्द्रावली : नहीं सखी, ऊपर से दुखी नहीं रहती पर मेरा जी जानता है जैसे रातैं बीतती हैं।

मनमोहन तें बिछुरी जब सों
तन आंसुन सों सदा धोवती हैं।।
'हरिचन्द जू' प्रेम के फंद परी
कुल की कुल लाजहि खोवती हैं।।
दुःख के दिन कों कोउ भांति बितै
विरहागम रैन संजोवती है।।
हमहीं अपुनी दसा जानैं सखी
निसि सोवती हैं किधौं रोवती हैं।।

ललिता : यह हो पर मैंने तुझे जब देखा तब एक ही दशा में देखा और सर्व्वदा तुझे अपनी आरसी वा किसी दर्पण में मुंह देखते पाया पर वह भेद आज खुला—

हौं तो याही सोच में बिचारत रही री काहें,
दरपन हाथ तें न छिन बिसरत है।
त्यौंही 'हरिचन्द जू' वियोग औ संयोग दोऊ,
एक से तिहारे कछु लखि न परत है।।
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात,
तू तौ परम पुनीत प्रेम पथ बिचरत है।।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसति ताहि,
आरसी मैं रैन-दिन देखिबो करत है।।

सखी! तू धन्य है, बड़ी भारी प्रेमिन है और प्रेम शब्द को सार्थ करने वाली और प्रेमियों की मंडली की शोभा है।

चन्द्रावली : नहीं सखी! ऐसा नहीं है। मैं जो आरसी देखती थी उसका कारण कुछ दूसरा ही है। हा! **(लम्बी सांस ले कर)** सखी! मैं जब आरसी में अपना मुंह देखती और अपना रंग पीला पाती थी तब भगवान से हाथ जोड़ कर मनाती थी कि भगवान मैं उस निर्दयी को चाहूं पर वह मुझे न चाहे, हा! **(आंसू टपकते हैं)**

ललिता : सखी, तुझे मैं क्या समझाऊंगी, पर मेरी इतनी विनती है कि तू उदास मत हो। जो तेरी इच्छा हो पूरी करने को उद्यत हूं।

चन्द्रावली : हा! सखी यही तो आश्चर्य है कि मुझे इच्छा कुछ नहीं है और न कुछ चाहती हूं तो भी मुझ को उसके वियोग का बड़ा दुःख होता है।

ललिता : सखी मैं तो पहिले ही कह चुकी कि तू धन्य है! संसार में जितना प्रेम होता है कुछ इच्छा लेकर होता है और सब लोग अपने ही सुख में सुख मानते हैं, पर उस के विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती

है और प्रीतम के सुख से सुख मानती है। यह तेरी चाल संसार से निराली है, इसी से मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मंडल को पवित्र करने वाली है।

[चन्द्रावली नेत्रों में जल भर कर मुख नीचा कर लेती है]

[दासी आ कर]

दासी : अरी, मैया खीझ रही है के वाहि! घर के कछू और हू कामकाज हैं के एक हाहा ठीठी ही है, चल उठि, भोर सों यहीं पड़ी रही।

चन्द्रावली : चल आऊं, बिना बात की बकवाद लगाई। (ललिता से) सुन सखी इस की बातें सुन, चल चलें।

[लम्बी सांस लेकर उठती है]

(तीनों जाती हैं)

॥स्नेहालाप नामक पहिला अंक समाप्त हुआ॥

●

दूसरा अंक

स्थान–केले का वन

समय सन्ध्या का, कुछ बादल छाए हुए

[वियोगिनी बनी हुई श्रीचन्द्रावलीजी आती है]

चन्द्रावली : **(एक वृक्ष के नीचे बैठ कर)** वाह प्यारे! वाह! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण हैं; और निश्चय बिना तुम्हारी कृपा के इस का भेद कोई नहीं जानता, जाने कैसे? सभी उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं। जिसने जो समझा है उसने वैसा ही मान रखा है। हा! यह तुम्हारा जो अखंड परमानन्दमय प्रेम है और जो ज्ञान वैराग्यादिकों को तुच्छ करके परम शान्ति देने वाला है उसका कोई स्वरूप ही नहीं जानता, सब अपने ही सुख में और अभिमान में भूले हुए हैं; कोई किसी स्त्री से वा पुरुष से उस को सुन्दर देख कर चित्त लगाना और उस से मिलने के अनेक यत्न करना इसी को प्रेम कहते हैं, और कोई ईश्वर की बड़ी लम्बी चौड़ी पूजा करने को प्रेम कहते हैं– पर प्यारे! तुम्हारा प्रेम इन दोनों से विलक्षण है, क्योंकि यह अमृत तो उसी को मिलता है जिसे तुम आप देते हो। **(कुछ ठहर कर)** हाय! किस से कहूं, और क्या कहूं, और क्यों कहूं, और कौन सुनै और सुनै भी तो कौन समुझै–हा!

जग जानत कौन है प्रेम विथा,
केहि सों चरचा या वियोग की कीजिए।
पुनि को कही मानै कहा समुझै कोऊ,
क्यौं बिन वात की रारहि लीजिए।
नित जो 'हरिचन्द जू' बीते सहै,
बकिकै जग क्यौं परतीतहि छीजिए।
सब पूछत मौन क्यौं बैठि रही,
पिय प्यारे कहा इन्हें उत्तर दीजिए॥

क्यौंकि–

मरम की पीर न जानत कोय।
कासों कहौं कौन पुनि मानैं बैठि रही घर रोय॥
कोऊ जरनि न जाननहारी बे-महरम सब लोय।
अपनी कहत सुनत नहिं मेरी केहि समुझाऊं सोय॥
लोक लाज कुल की मरजादा दीनी है सब खोय।
'हरीचन्द' ऐसेहि निबहैगी होनी होय सो होय॥

परन्तु प्यारे, तुम तो सुनने वाले हो? यह आश्चर्य है कि तुम्हारे होते हमारी यह गति हो। प्यारे! जिन को नाथ नहीं होते वे अनाथ कहाते हैं।

[नेत्रों से आंसू गिरते हैं]

प्यारे! जो यही गति करनी थी तो अपनाया क्यों?

पहिले मुसकाई लजाइ कछू,
क्यौं चितै मुरि मो तन छाम कियो।
पुनि नैन लगाई बढ़ाईकै प्रीत,
निबाहन को क्यौं कलाम कियो॥
'हरिचन्द' भए निरमोही इतै निज,
नेह को यौं परिनाम कियो।
मनमांहि जो तोरनही की हुती,
अपनाइ कै क्यौं बदनाम कियो॥

प्यारे, तुम बड़े निरमोही हो। हा! तुम्हें मोह भी नहीं आता? (**आंख में आंसू भर कर**) प्यारे, इतना तो वे नहीं सताते जो पहिले सुख देते हैं, तो तुम किस नाते इतना सताते हो? क्यौंकि–

जिय सूधी चितौन की साधै रही,
सदा बातन मैं अनखाय रहे।
हंसिकै 'हरिचन्द' न बोले कभूं
जिय दूरहिं सों ललचाय रहे॥
नहिं नेकु दया उर आवत है
करिके कहा ऐसे सुभाय रहे।
सुख कौन सो प्यारे दियो, पहिले,
जिहि के बदले यों सताय रहे॥

हा! क्या तुम्हें लाज भी नहीं आती? लोग तो सात पैर संग चलते हैं उनका जन्म भर निबाह करते हैं और तुम को नित्य की प्रीति का निबाह नहीं है! नहीं नहीं, तुम्हारा तो ऐसा सुभाव नहीं था, यह नई बात है, यह बात नई है या तुम आप नए हो गए हो? भला कुछ तो लाज करो!–

कितकों ढरिगो वह प्यार सबै,
क्यौं रुखाई नई यह साजत हौ।
'हरिचन्द' भए हौ कहां के कहां,
अनबोलिबे में नहिं छाजत हौ॥
नित को मिलनो तो किनारे रह्यौ,
मुख देखत ही दुरि भाजत हौ।
पहिले अपनाइ बढ़ाइ कै नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ॥

प्यारे, जो यही गति करनी थी तो पहिले सोच लेते। क्योंकि,

तुम्हरे तुम्हरे सब कोऊ कहैं,
तुम्हैं सो कहा प्यारे सुनात नहीं।
बिरुदावली आपुनी राखौ मिलौ
मोहि सोचिबे की कोउ बात नहीं॥
'हरिचन्द जू' होनी हुती सो भई,
इन बातन सों कछु हात नहीं।
अपनावते सोच बिचारि तबै,
जल पान कै पूछनी जात नहीं॥

प्राणनाथ! (आंखों में आंसू उमड़ उठे) अरे नेत्रो! अपने किए का फल भोगो।

धाइकै आगे मिलीं पहिले तुम,
कौन सों पूछि कै सो मोहि भाखौ।
त्यौं सब लाज तजी छिन मैं,
केहिके कहे एतौ किए अभिलाखौ।
काज बिगारि सबै अपुनौ,
'हरिचन्द जू' धीरज क्यौं नहिं राखौ।
क्यौं अब रोई कै प्रान तजौ,
अपुने किए को फल क्यौं नहिं चाखौ॥

हा!

इन दुखियान कों न सुख सपने हू मिल्यौ
यों ही सदा व्याकुल बिकल अकुलाएंगी।
प्यारे 'हरिचन्द जू' की बीती जानि औध जौ पै
जैहैं प्रान तऊ ये तो साथ न समाएंगी।
देख्यौ एक बार हू न नैन भरि तोहि यातें,
जौन जौन लोक जैहैं तहीं पछिताएंगी।

बिना प्रान प्यारे भए दरस तुम्हारे हाय,
देखि लीजौ आंखें ये खुली ही रहि जाएंगी॥

परन्तु प्यारे, अब इन को दूसरा कौन अच्छा लगेगा जिसे देख कर यह धीरज धरेंगी, क्योंकि अमृत पीकर फिर छाछ कैसे पीएंगी—

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो,
अब का करिए कहि पेखिए का।
सुख छांडि कै संगम को तुम्हरे,
इन तुच्छन को अब लेखिए का॥
'हरिचन्द जू' हीरन को वेवहार कै,
कांचन को लै परेखिए का।
जिन आंखिन मैं तुव रूप बस्यो,
उन आंखिन सों अब देखिए का॥

इस से नेत्र! तुम तो अब बन्द ही रहो।

[आंचल से नेत्र छिपाती है]

[वनदेवी[1], सन्ध्या[2] और वर्षा[3] आती हैं]

सन्ध्या : अरी वनदेवी! यह कौन आंखिनैं मूंदिकै अकेली या निरजन वन मैं बैठि रही है।

वनदेवी : अरी का तू याही नांयं जानै? यह राजा चन्द्रभानु की बेटी चन्द्रावली है।

वर्षा : तौ यहां क्यौं बैठी है।

वनदेवी : राम जानै (कुछ सोच कर) अहा जानी! अरी, यह तो सदा ह्यांई बैठी बक्यौ करैहै और यह तो या वन के स्वामी के पीछे बावरी होय गई है।

वर्षा : तौ चलौ यासूं कछू पूछैं।

वनदेवी : चल।

[तीनों पास जाती हैं]

वनदेवी : (चन्द्रावली के कान के पास) अरी मेरी वन की रानी चन्द्रावली! (कुछ ठहर कर) राम! सुनैहू नहीं है। (और ऊंचे सुर से) अरी मेरी प्यारी सखी चन्द्रावली! (कुछ ठहर कर) हाय! यह तौ अपुने सों बाहर होय रही है। अब काहे को सुनैगी (और ऊंचे सुर से) अरी! सुनै नांयनै री मेरी अलख लड़ैती चन्द्रावली!

---

1. हरा कपड़ा, पत्ते का किरीट, फूलों की माला।
2. गहिरा नारंगी कपड़ा।
3. रंग सांवला, लाल कपड़ा।

चन्द्रावली : (आंख बन्द किए ही) हां हां, अरी क्यौं चिल्लाय है? चोर भाग जायगो।

वनदेवी : कौन सो चोर?

चन्द्रावली : माखन को चोर! चीरन को चोर, और मेरे चित्त को चोर।

वनदेवी : सो कहां सो भाग जायगो?

चन्द्रावली : फेर बके जाय है। अरी मैंने अपनी आंखिन मैं मूंदि राख्यौ है सौ तू चिल्लाएगी तो निकसि भागैगो।

[वनदेवी चन्द्रावली की पीठ पर हाथ फेरती है]

चन्द्रावली : **(जल्दी से उठ, वनदेवी का हाथ पकड़ कर)** कहो! प्राणनाथ अब कहां भागोगे।

[वनदेवी हाथ छुड़ा कर एक ओर वर्षा–सन्ध्या दूसरी ओर वृक्षों के पास ले जाती हैं]

चन्द्रावली : अच्छा क्या हुआ? यो ही हृदय से भी निकल जाओ तो जानूं, तुम ने हाथ छुड़ा लिया तो क्या हुआ। मैं तो हाथ नहीं छोड़ने की। हा! अच्छी प्रीति निबाही!

[वनदेवी सीटी बजाती है]

चन्द्रावली : देखो दुष्ट का। मेरा तो हाथ छुड़ाकर भाग गया अब न जाने कहां खड़ा बंशी बजा रहा है। अरे छलिया, कहां छिपा है? बोल बोल कि जीतै जी न बोलैगा **(कुछ ठहर कर)** मत बोल, मैं आप पता लगा लूंगी। **(वन के वृक्षों से पूछती है)** अरे वृक्षो, बताओ तो मेरा लुटेरा कहां छिपा है? क्यौं रे मोरो, इस समय नहीं बोलते, नहीं तो रात को बोल बोल के प्राण खाये जाते थे। कहो न वह कहां छिपा है।

(गाती है)

अहो अहो, वन के रूख कहूं देख्यौ पिय प्यारो।
मेरो हाथ छुड़ाइ कहौ वह कितै सिधारो॥
अहो कदम्ब अहो अम्ब निम्ब अहो बकुल तमाला।
तुम देख्यौ कहूं मन मोहन सुन्दर नन्दलाला॥
अहो कुंज वन लता विरुध तृन पूछत तोसों।
तुम देखे कहुं श्याम मनोहर कहहु न मोसो॥
अहो जमुनः अहो खग मृग हो अहो गोबरधन गिरि।
तुम देखे कहुं प्रानपियारे मनमोहन हरि॥

[एक पेड़ से जाकर गले लगती है। वनदेवी फिर सीटी बजाती है]

चन्द्रावली : अहा! देखो उधर खड़े प्राणप्यारे मुझे बुलाते हैं, तो चलो उधर ही चलैं।

अपने आभरण संवारती है। [वर्षा और सन्ध्या पास आती हैं]

वर्षा : (हाथ पकड़ कर) कहां चली सजि कै?

चन्द्रावली : पियारे सों मिलन काज।

वर्षा : कहां तू खड़ी है?

चन्द्रावली : प्यारे ही को यह धाम है।

वर्षा : कहा कहैं मुख सों?

चन्द्रावली : पियारे प्रान प्यारे।

वर्षा : कहा काज है?

चन्द्रावली : पियारे सों मिलन काम है।

वर्षा : मैं हूं कौन बोल तो?

चन्द्रावली : हमारे प्रान प्यारे हौ न?

वर्षा : तू है कौन?

चन्द्रावली : पीतम पियारे मेरो नाम है।

सन्ध्या : (आश्चर्य से) पूछत सखी के एकै उत्तर बतावति—

जकी सी एक रूप।

आज श्यामा भई श्याम है॥

[वनदेवी आ कर चन्द्रावली के पीछे से आंख बन्द करती है]

चन्द्रावली : कौन है, कौन है?

वनदेवी : मैं हूं।

चन्द्रावली : कौन तू है?

वनदेवी : (सामने आ कर) मैं हूं, तेरी सखी वृन्दा।

चन्द्रावली : तो मैं कौन हूं?

वनदेवी : तू तो मेरी सखी चन्द्रावली है न? तू अपनेहू को भूल गई।

चन्द्रावली : तो हम लोग अकेले वन में क्या कर रही हैं?

वनदेवी : तू अपने प्राण नाथै खोजि रही है न?

चन्द्रावली : हा! प्राणनाथ! हा! प्यारे! प्यारे, अकेले छोड़ के कहां चले गए? नाथ, ऐसी ही बदी थी! प्यारे यह वन इसी विरह का दुःख करने के हेतु बना है कि तुम्हारे साथ विहार करने को? हा!

जो पै ऐसिहि करन रही।
तो फिर क्यौं अपने मुख सों तुम रस की बात कही॥
हम जानी ऐसिहि बीतैगी जैसी बीति रही।
सो उलटी कीनी बिधिना ने कछू नाहिं निबही॥
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन औरै चाल गही।
'हरीचन्द' कहा को कहा ह्वै गयौ कछू नहिं जात कही॥

[रोती है]

वनदेवी : (आंखों में आंसू भर के) प्यारी! अरी इतनी क्यौं घबराई जाय है, देख तौ यह सखी खड़ी हैं सो कहा कहैंगी।

चन्द्रावली : ये कौन है?

वनदेवी : (वर्षा को दिखा कर) यह मेरी सखी वर्षा है।

चन्द्रावली : यह वर्षा है तो हा! मेरा वह आनन्द का घन कहां है? हा! मेरे प्यारे! कहां बरस रहे हो? प्यारे गरजना इधर और बरसना और कहीं?

बलि सांवरी सूरत मोहिनी मूरत
आंखिन को कबौं आई दिखाइए।
चातक सी मरै प्यासी परी
इन्हें पानिप रूप सुधा कबौं प्याइए॥
पीत पटै बिजुरी से कबौं
'हरिचन्द जू' धाइ इतै चमकाइए।
इतहू कबौं आइकै आनन्द के घन
नेह को मेह पिया बरसाइए॥

प्यारे! चाहे गरजो चाहे लरजो, इन चातकों की तो तुम्हारे बिना और गति ही नहीं है, क्यौंकि फिर यह कौन सुनैगा कि चातक ने दूसरा जल पी लिया; प्यारे! तुम तो ऐसे करुणा के समुद्र हो कि केवल हमारे एक जाचक के मांगने पर नदी नद भर देते हो तो चातक के इस छोटे चंचु पुट भरने में कौन श्रम है क्यौंकि प्यारे! हम दूसरे पक्षी नहीं हैं कि किसी भांति प्यास बुझा लेंगे हमारे तो हे श्याम घन, तुम्हीं अवलम्ब हौ; हा!

[नेत्रों में जल भर लेती है और तीनों परस्पर चकित हो कर देखती हैं]

वनदेवी : सखी, देखि तौ कछू इनकी हू सुन कछू इनकी हू लाज कर। अरी, यह तो नई आई हैं ये कहा कहैंगी?

सन्ध्या : सखी, यह कहा कहै है हम तौ याको प्रेम देखि बिन मोल की दासी होय रही है और तू पंडिताइन बनि के ज्ञान छांटि रही है।

चन्द्रावली : प्यारे! देखो ये सब हंसती हैं—तो हंसैं, तुम आओ, कहां वन में छिपे हो? तुम मुंह दिखलाओ, इनको हंसने दो—

धारन दीजिए धीर हिए कुलकानि को आजु बिगारन दीजिए।
मारन दीजिए लाज सबै 'हरिचन्द' कलंक पसारन दीजिए॥
चार चवाइन कों चहुं ओर सों सोर मचाइ पुकारन दीजिए।
छांड़ि संकोचन चन्द-मुखै भरि लोचन आजु निहारन दीजिए॥

क्यौंकि—

ये दुखियां सदा रोयों करैं बिधना इन कों कबहूं न दियो सुख।
झूठहीं चार चवाइन के डर देख्यौ कियो उनहीं को लिए रुख॥
छांड़यौ सबै 'हरिचन्द' तऊ न गयो जिय सों यह हाय महा दुःख।
प्रान बचैं केहि भांतिन सों तरसैं जब दूर सों देखिबे को मुख॥

[रोती है]

वनदेवी : (आंसू अपने आंचल से पोंछ कर) तौ ये यहां नांय रहिबे की, सखी एक घड़ी धीरज धर जब हम चली जायं जब जो चाहियो सो करियो।

चन्द्रावली : अरी सखियो, मोहि छमा करियो, अरी देखौ तो तुम मेरे पास आईं और हम ने तुमारो कछू सिष्टाचार न किया। (नेत्रों में आंसू भर कर, हाथ जोड़ कर) सखी, मोहि छमा करियो और जानियो कि जहां मेरी बहुत सखी हैं उन में एक ऐसी कुलच्छिनी हू है।

सन्ध्या और वर्षा : नहीं नहीं सखी! तू तो मेरी प्रानन सों हूं प्यारी है, सखी, हम सच कहैं तेरी सी सांची प्रेमिन एक हू न देखी, ऐसे तो सबी प्रेम करैं पर तू सखी धन्य है।

चन्द्रावली : हां सखी, और (सन्ध्या को दिखा कर) या सखी को नाम का है?

वनदेवी : याको नाम सन्ध्या है।

चन्द्रावली : (घबड़ा कर) सन्ध्यावली आई? क्या कुछ सन्देसा लाई? कहो कहो, प्रान प्यारे ने क्या कहा? सन्ध्या बड़ी देर लगाई (कुछ ठहर कर) सन्ध्या हुई है? सन्ध्या हुई? तो वह वन से आते होंगे। सखियों चलो झरोखों में बैठें, यहां क्यौं बैठी हो।

[नेपथ्य में चन्द्रोदय होता है; चन्द्रमा को देख कर]

अरे अरे वह देखो आया।

[उंगली से दिखा कर]

देख सखी देख अनमेख ऐसो भेख यह,
जाहि पेख तेज रबिहू को मंद ह्वै गयो।
'हरीचन्द' ताप सब जिय को नसाइ चित्त,
आनन्द बढ़ाइ भाइ अति छकि सों छयो॥
ग्वाल उडुगन बीच बेनु को बजाइ सुधा,
रस बरखाइ मान कमल लजा दयो।
गोरज समूह घन पटल उघारि वह
गोप कुल कुमुद निसाकर उदै भयो॥

चलो चलो, उधर चलो।

[उधर दौड़ती है]

वनदेवी : (हाथ पकड़ कर) अरी बावरी भई है, चन्द्रमा निकस्यो है कै वह वन सों आवै है?

चन्द्रावली : (घबड़ा कर) का सूरज निकस्यो? भोर भयो। हाय! हाय! हाय! या गरमी में या दुष्ट सूरज की तपन कैसे सही जायगी। अरे भोर भयो, हाय भोर भयो! सब रात ऐसें ही बीत गई, हाय, फेर वही घर के ब्यौहार चलैंगे, फेर वही नहानो वही खानो वेई बातैं। हाय!–

केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं,
अटके कित कौन बिचार लयो॥
नहिं जानि परै 'हरिचन्द' कछू,
बिधि ने हम सों हठ कौन ठयो॥
निसि आजहू की गई हाय बिहाय,
पिया बिनु कैसे ने जीव गयो॥
हत भागिनी आंखिन कों नित के,
दुःख देखिबे कों फिर भोर भयो॥

तो चलो घर चलैं, हाय हाय! मां सों कौन बहाना करूंगी, क्यौंकि वह जाते ही पूछैगी कि सब रात अकेलई वन में कहा करती रही। (कुछ ठहर कर) पर प्यारे! भला यह तो बताओ कि तुम आज की रात कहां रहे? क्यौं, देखो तुम हम से झूठ न बोले न! बड़े झूठे हौ, हा! अपनों से तो झूठ मत बोला करो, आओ आओ अब तो आओ–

आओ मेरे झूठन के सिरताज।
छल के रूप कपट की मूरत मिथ्यावाद जहाज॥
क्यौं परतिज्ञा करी रस्यौ जो ऐसो उलटो काज।
पहिले तो अपनाइ न आवत तजिबे में अब लाज॥

चलो दूर हटो बड़े झूठे हो।–

आओ मेरे मोहन प्यारे झूठे।
अपनी टारि प्रतिज्ञा कपटी उलटे हम सों रूठे॥
मति परसौ तन रंगे और के रंग अधर तुव जूठे।
ताहू पै तिनकौ नहि लाजत निरलज अहो अनूठे॥

पर प्यारे बताओ तो तुम्हारे बिना रात क्यौं इतनी बढ़ जाती है?

काम कछू नहिं यासों हमैं,
सुख सो जहाँ चाहिए रैन बिताइए।
पै जो करैं बिनती 'हरिचन्द जू'
उत्तर ताको कृपा कै सुनाइए॥

एक मतो उनसो क्यौं कियो तुम
सोउ न आवै जो आप न आइए।
रूसिबे सों पिय प्यारे तिहारे,
दिवाकर रूसत है क्यौं बताइए॥

जाओ जाओ मैं नहीं बोलती।

[एक वृक्ष की आड़ में दौड़ जाती है]

तीनों : भई! यह तो बावरी सी डोलै, चलौ हम सब वृक्ष की छाया में बैठें।

[किनारे एक पास ही तीनों बैठ जाती हैं]

चन्द्रावली : (घबड़ाई हुई आती है, आंचल केश इत्यादि खुल जाते हैं) कहां गया कहां गया? बोल! उलटा रूसना, भला अपराध मैंने किया कि तुमने? अच्छा मैंने किया सही, क्षमा करो, आओ, प्रकट हो, मुंह दिखाओ। भई, बहुत भई गुदगुदाना वहां तक जहां तक रुलाई न आवै। (कुछ सोच कर) हा! भगवानं किसी को किसी की कनौड़ी न करें, देखो मुझ को इस की कैसी बातैं सहनी पड़ती हैं। आप ही नहीं भी आता, उलटा आप ही रूसता है, पर क्या करूं अब तो फंस गई; अच्छा यों ही सही। ('अहो अहो वन के रूख' इत्यादि गाती हुई वृक्षों से पूछती है) हाय! कोई नहीं बतलाता! अरे मेरे नित के साथियों, कुछ तो सहाय करो।

अरे पौन सुख भौन सबै थल गौन तुम्हारो।
क्यौं न कहौ राधिका रौन सों मौन निवारो॥
अहे भंवर तुम श्याम रंग मोहन व्रत धारी।
क्यौं न कहौं वा निठुर श्याम सों दसा हमारी॥
अहे हंस तुम राजबंस सरवर की सोभा।
क्यौं न कहो मेरे मानस सों या दुःख के गोभा॥
हे सारस, तुम नीके बिछुरन बेदन जानौ।
तौ क्यौं पीतम सों नहिं मेरी दसा बखानौ॥
हे कोकिल, कुल श्याम रंग के तुम अनुरागी।
क्यौं नहिं बोलहु तहीं जायं जहं हरि बड़भागी॥
हे पपिहा! तुम पिउ पिउ पिय पिय रटत सदाई।
आजहु क्यौं नहिं रटि रटि कै पिय लेहु बुलाई॥
अहे भानु, तुम तो घर घर में किरिन प्रकासो।
क्यौं नहिं पियहिं मिलाइ हमारो दुःख तम नासो॥
हाय!

कोउ नहिं उत्तर देत भए सबही निरमोही।
प्रान पियारे अब बोलौ कहां खोजौं तोहीं॥

[चन्द्रमा बदली की ओट हो जाता है और बादल छा जाते हैं]

(स्मरण करके) हाय! मैं ऐसी भूली हुई थी, कि रात को दिन बतलाती थी, अरे मैं किसको ढूंढ़ती थी? हा! मेरी इस मूर्खता पर उन तीनों सखियों ने क्या कहा होगा। अरे यह तो चन्द्रमा था जो बदली के ओट में छिप गया। हा! यह हत्यारिन बरषा ऋतु है, मैं तो भूल गई थी। इस अंधेरे में मार्ग तो दिखाता ही नहीं, चलूंगी कहां और घर कैसे पहुंचूंगी? प्यारे देखो, जो जो तुम्हारे मिलने में सुहावने जान पड़ते थे वही अब भयावने हो गए। हा! जो वन आंखों से देखने में कैसा भला दिखता था वही अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है। देखो सब कुछ है एक तुम्हीं नहीं हौ। (नेत्रों से आंसू गिरते हैं) प्यारे! छोड़ के कहां चले गए? नाथ! आंखें बहुत प्यासी हो रही हैं, इनको रूप सुधा कब पिलाओगे? प्यारे बेनी की लट बंध गई है इन्हें कब सुलझाओगे? (रोती है) नाथ, इन आंसुओं को तुम्हारे बिना और कोई पोंछने वाला भी नहीं है। हा! यह गत तो अनाथ की भी नहीं होती। अरे बिधिना! मुझे कौन सा सुख दिया था जिस के बदले इतना दुःख देता है, सुख का तो मैं नाम सुन के चौंक उठती थी और धीरज धर के कहती थी कि कभी तो दिन फिरैंगे सो अच्छे दिन फिरे। प्यारे, बस बहुत भई अब नहीं सही जाती। मिलना हो तो जीते जी मिल जाओ। हाय! जो भर आंखों देख भी लिया होता तो जी का उमाह निकल गया होता। मिलना दूर रहे, मैं तो मुंह देखने को तरसती थी, कभी सपने में भी गले न लगाया, जब सपने में देखा तभी घबड़ा कर चौंक उठी। हाय! इन घरवालों और बाहरवालों के पीछे कभी उनसे रो रोकर अपनी बिपत भी न सुनाई कि जी भर जाता। लो घरवालों और बाहरवालों! व्रज को सम्हालो; मैं तो अब यहीं...(कंठ गद्गद होकर रोने लगती थी) हाय रे निठुर! मैं ऐसा निरमोही नहीं समझी थी, अरे इन बादलों की ओर देख के तो मिलता। इस ऋतु में तो परदेसी भी अपने घर आ जाते हैं, पर तू न मिला। हा! मैं इसी दुःख को देखने को जीती हूं कि बरषा आवै और तुम न आओ। हाय! फेर बरषा आई, फेर पत्ते हरे हुए, फेर कोइल बोली, पर प्यारे तुम न मिले। हाय! सब सखियां हिंडोले झूलती होंगी पर मैं किसके संग झूलूं, क्योंकि हिंडोला झुलाने वाले

मिलेंगे, पर आप भींजकर मुझे बचाने वाला और प्यारी कहने वाला कौन मिलैगा (**रोती है**) हा! मैं बड़ी निर्लज्ज हूं। अरे प्रेम! मैंने प्रेमिन बन कर तुझे भी लज्जित किया कि अब तक जीती हूं, इन प्रानों को अब न जाने कौन लाहे लूटने हैं कि नहीं निकलते। अरे कोई देखो, मेरो छाती वज्र की तो नहीं है कि अब तक...

[इतना कहते ही मूर्छा खाकर ज्यौं ही गिरा चाहती है। उसी समय तीनों सखियां आकर सम्हालती हैं]

[जवनिका गिरती है]

।।प्रियान्वेषण नामक दूसरा अंक समाप्त।।

●

दूसरे अंक के अन्तर्गत

॥अंकावतार॥

स्थान–बीथी, वृक्षा

[सन्ध्यावली दौड़ी हुई आती है]

सन्ध्यावली : राम राम! मैं तो दौरत दौरत हार गई, या व्रज की गऊ का हैं सांड़ हैं; कैसी एक साथ पूंछ उठाय कै मेरे संग दौरी हैं, तापैं वा निपूते सुबल को बुरो होय, और हू तूमड़ी बजाय कै मेरी ओर उन सबन को लहकाय दीनो, अरे जो मैं एक संग प्रान छोड़ि कै न भाजती तौ उन के रपट्टा में कब की आय जाती। देखि आज वा सुबल की कौन गति कराऊं, बड़ो ढीठ भयो है, प्रानन की हांसी कौन काम की। देखौ तो आज सोमवार है नन्दगांव में हाट लगी होयगी। मैं वहीं जाती, इन सबन ने बीच ही आय धरी, मैं चन्द्रावली की पाती वाके यारैं सौंप देती तो इतनों खुटकोऊ ने रहतो। **(घवड़ा कर)** अरे आईं ये गौवें तो फेर इतै ही कूं अरराई।

[दौड़ कर जाती है और चोली में से पत्र गिर पड़ता है। चंपकलता आती है]

चंपकलता : **(पत्र गिरा हुआ देख कर)** अरे! यह चिट्ठी किसकी पड़ी है? किसी की हो, देखूं तो इस में क्या लिखा है। **(उठाकर देखती है)** राम राम! न जाने किस दुखिया की लिखी है कि आंसुओं से भींजकर ऐसी चिपट गई है कि पढ़ी ही नहीं जाती और खोलने में फट जाती है

[बड़ी कठिनाई से खोल कर पढ़ती है]

प्यारे!

क्या लिखूं! तुम बड़े दुष्ट हो, चलो, भला सब अपनी वीरता हमीं पर दिखानी थी। हां! भला मैंने तो लोक वेद, अपना-विराना सब छोड़कर तुम्हें पाया, तुमने हमैं छोड़ के क्या पाया? और जो धर्म्म उपदेश करो तो धर्म्म से फल होता है, फल से धर्म्म नहीं होता निर्लज्ज, लाज भी नहीं आती मुंह ढको फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हो,

चलो वाह! अच्छी प्रीति निबाही। जो हो, तुम जानते ही हौ। हाय कभी न करूंगी योंही सही, अन्त मरना, है, मैंने अपनी ओर से खबर दे दी, अब मेरा दोष नहीं, बस।

—"केवल तुम्हारी"

(लम्बी सांस ले कर) हा! बुरा रोग है, न करै किसी के सिर बैठे बिठाए—यह चक्र घहराय। इस चिट्ठी के देखने से कलेजा कांपा जाता है। बुरा! तिस में स्त्रियों की बड़ी बुरी दशा है, क्यौंकि कपोतव्रत बुरा होता है कि गला घोंट डालो मुंह से बात न निकलै। प्रेम भी इसी का नाम है। राम राम! उस मुंह से जीभ खींच ली जाय जिससे हाय निकले। इस व्यथा को मैं जानती हूं और कोई क्या जानैगा क्यौंकि "जाके पांव न भई बिवाई सो क्या जाने पीर पराई"। यह तो हुआ पर यह चिट्ठी है किसकी? यह न जान पड़ी, **(कुछ सोच कर)** अहा जानी! निश्चय यह चन्द्रावली ही की चिट्ठी है। क्यौंकि अक्षर भी उसी के से हैं और इस पर चन्द्रावली का चिह्न भी बनाया है। हा! मेरी सखी बुरी फंसी। मैं तो पहिले ही उसके लच्छनों से जान गई थी, पर इतना नहीं जानती थी, अहा! गुप्त प्रीति भी विलक्षण होती है, देखो इस प्रीति में संसार की रीति से कुछ भी लाभ नहीं। मनुष्य न इधर का होता है न उधर का। संसार के सुख छोड़ कर अपने हाथ आप मूर्ख बन जाता है। जो हो, यह पत्र तो मैं आप उन्हें जाकर दे आऊंगी और मिलने की भी विनती करूंगी।

[नेपथ्य में बूढ़ों के से सुर से]

हां तू सब करैगी।

चंपकलता : **(सुन कर और सोच कर)** अरे यह कौन है? **(देख कर)** न जानै कोऊ बूढ़ी फूंस सी डोकरी है। ऐसो न होय कै यह बात फोड़ि कै उलटी आग लगावै, अब तो पहिलै याहि समझावनो पर्‌यौ, चलूं।

[जाती है]

। भेद प्रकाशन नामक अंकावतारः।

●

तीसरा अंक

स्थान-तालाब के पास एक बगीचा
समय तीसरा पहर, गहिरे बादल छाए हुए
[झूला पड़ा है, कुछ सखी झूलती, कुछ इधर उधर फिरती हैं]
[चन्द्रावली, माधवी, काममंजरी, विलासिनी, इत्यादि एक स्थान पर बैठी हैं, चन्द्रकान्ता, वल्लभा, श्यामला, भामा झूले पर हैं कामिनी और माधुरी हाथ में हाथ दिए घूमती हैं]

कामिनी : सखी, देख बरसात भी अबकी किस धूमधाम से आई है मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जान कर इनके जीतने को अपनी सेना भिजवाई है। धूम से चारों ओर से घूम घूम कर बादल परे के परे जमाए बगपंगति का निसान उड़ाए लपलपाती नंगी तलवार-सी बिजली चमकाते गरज गरज कर डराते बान के समान पानी बरखा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखासा कुछ अलग पुकार पुकार गा रहे हैं। कुल की मरजादा ही पर इन निगोड़ों की चढ़ाई है। मनोरथों से कलेजा उमगा आता है और काम की उमंग जो अंग अंग में भरी है उनके निकले बिना जी तिलमिलाता है। ऐसे बादलों को देख कर कौन लाज की चद्दर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है!

माधुरी : विशेष कर वह जो आप कामिनी हो (हंसती है)

कामिनी : चल तुझे हंसने ही की पड़ी है। देख, भूमि चारों ओर हरी हरी हो रही है। नदी नाले, बावली तालाब सब भर गए। पच्छी लोग, पर समेटे पत्तों की आड़ में चुपचाप सकपके से होकर बैठे हैं। बीरबहूटी और जुगुनूं पारी पारी रात और दिन को इधर उधर बहुत दिखाई पड़ते हैं। नदियों के करारे धमाधम टूट कर गिरते है। सर्प निकल निकल अशरण से इधर उधर भागे फिरते हैं। मार्ग बन्द हो रहे है। परदेशी जो जिस नगर में हैं वहीं पड़े पड़े पछता रहे हैं, आगे बढ़ नहीं सकते। वियोगियों को तो मानो छोटा प्रलय काल ही आया है।

माधुरी : छोटा क्यों बड़ा प्रलय काल आया है। पानी चारों ओर से उमड़ ही रहा है। लाज के बड़े बड़े जहाज गारद हो चुके, ...फिर वियोगियों के हिसाब तो संसार डूबा ही है तो प्रलय ही ठहरा।

कामिनी : पर तुझ को तो बटे कृष्ण का अवलम्ब है न, फिर तुझे क्या? भांडीर वट के पास उस दिन खड़ी बात कर ही रही थी, गए हम...।

माधुरी : और चन्द्रावली?

कामिनी : हां, चन्द्रावली बिचारी तो आप ही गई बीती है, उस में भी अब तो पहरे में हैं, नजरबन्द रहती है, झलक भी नहीं देखने पाती, अब क्या...।

माधुरी : जाने दे नित्य का झंखना। देख, फिर पुरवैया झकोरने लगी और वृक्षों से लपटी लताएं फिर से लरजने लगीं। साड़ियों के आंचल और दामन फिर उड़ने लगे और मोर लोगों ने एक साथ फिर शोर किया। देख यह घटा अभी गरज गई थी पर फिर गरजने लगी।

कामिनी : सखी वसन्त का ठंडा पवन और सरद की चांदनी से राम राम करके वियोगियों के प्राण बच भी सकते हैं, पर इन काली काली घटा और पुरवैया के झोंके तथा पानी के एकतार झमाके से तो कोई भी न बचैगा।

माधुरी : तिस में तू तो कामिनी ठहरी, तू बचना क्या जानै।

कामिनी : चल ठठोलिन। तेरी आंखों में अभी तक उस दिन की खुमारी भरी है, इसी से किसी को कुछ नहीं समझती। तेरे सिर बीते तो मालूम पड़ै।

माधुरी : बीती है मेरे सिर। मैं ऐसी कच्ची नहीं कि थोड़े में बहुत उबल पड़ूं।

कामिनी : चल तू हई है क्या कि न उबल पड़ैगी? स्त्री की बिसात ही कितनी बड़े-बड़े जोगियों के ध्यान इस बरसात में छूट जाते हैं, कोई जोगी होने ही पर मन ही मन पछताते हैं, कोई जटा पटक कर हाय हाय चिल्लाते हैं और बहुतेरे तो तूमड़ी तोड़ तोड़ कर जोगी से भोगी हो ही जाते हैं।

माधुरी : तो तू भी किसी सिद्ध से कान फुंकवा कर तुमड़ी तोड़वा ले।

कामिनी : चल! तू क्या जाने इस पीर को। सखी, यही भूमि और यही कदम कुछ दूसरे ही हो रहे हैं और यह दुष्ट बादल मन ही दूसरा किए देते हैं। तुझे प्रेम हो तब सूझे। इस आनन्द की धुनि में संसार ही दूसरा एक विचित्र शोभावाला और सहज काम जगानेवाला मालूम पड़ता है।

माधुरी : कामिनी पर काम का दावा है इसी से हेर फेर उसी को बहुत छेड़ा करता है।

[नेपथ्य में बारम्बार मोर कूकते हैं]

कामिनी : हाय हाय! इस कठिन कुलाहल से बचने का उपाय एक विषपान ही है। इन दईमारों का कूकना और पुरवैया का झकोर कर चलना यह दो बातैं बड़ी कठिन हैं। धन्य हैं वे जो ऐसे समय में रंग रंग के कपड़े पहिने ऊंची-ऊंची अटारियों पर चढ़ी पीतम के संग घटा और हरियाली देखती हैं वा बगीचों, पहाड़ों और मैदानों में गलबाहीं डाले फिरती हैं। दोनों परस्पर पानी बचाते हैं और रंगीन कपड़े निचोड़ कर चौगुना रंग बढ़ाते हैं। झूलते हैं, झुलाते हैं, हंसते हैं, हंसाते हैं, भीगते हैं, भीगाते हैं, गाते हैं, गवाते हैं और गले लगते हैं, लगाते हैं।

माधुरी : और तेरो न कोई पानी बचानेवाला न तुझे कोई निचोड़ने वाला, फिर चौगुने की कौन कहे ड्यौढ़ा सवाया तो तेरा रंग बढ़ैगा ही नहीं।

कामिनी : चल लुच्चिन! जाके पायं न भई बिवाई सो क्या जानै पीर पराई।

[बात करती करती पेड़ की आड़ में चली आती हैं]

माधवी : (चन्द्रावली से) सखी, श्यामला का दर्शन कर, देख कैसी सुहावनी मालूम पड़ती है। मुखचन्द्र पर चूनरी चुई पड़ती है। लटें सगबगी होकर गले में लपट रही हैं। कपड़े अंग में लपट गए हैं। भींगने से मुख का पान और काजल सब की एक विचित्र शोभा हो गई है।

चन्द्रावली : क्यौं न हो। हमारे प्यारे की प्यारी है। मैं पास होती तो दोनों हाथों से इसकी बलैया लेती और छाती से लगाती।

काममंजरी : सखी, सचमुच आज तो इस कदम्ब के नीचे रंग बरस रहा है। जैसी समा बंधी है वैसी ही झूलनेवाली हैं। झूलने में रंग रंग की साड़ी की अर्द्ध चन्द्राकार रेखा इन्द्रधनुष की छवि दिखाती है। कोई सुख से बैठी झूले की ठंढी ठंढी हवा खा रही है, कोई गांती बांधे, लांग कसे, पेंग मारती है, कोई गाती है; कोई डरकर दूसरी के गले में लपट जाती है, कोई उतरने को अनेक सौगन्द देती है, पर दूसरी उसको चिढ़ाने को झूला और भी झोंके से झुला देती है।

माधवी : हिंडोरा ही नहीं झूलता। हृदय में प्रीतम को झुलाने के मनोरथ और नैनों में पिया की मूर्ति भी झूल रही है। सखी आज सांवला ही की मेंहदी और चूनरी पर तो रंग हैं। देख बिजुली की चमक में उस की मुख छवि कैसी सुन्दर चमक उठती है और वैसे पवन भी बार बार घूंघट उलट देता है। देख—

हूलति हिये में प्राण प्यारे कि विरह सूल,
फूलती उमंग भरी झूलति हिंडोरे पै।

गावति रिझावति हंसावति सबन 'हरिचन्द'
चाव चौगुनों बढ़ाइ घन घोरे पै॥
वारि वारि डारौं प्राण हंसनि मुरनि
बत रान मुंह पान कजरारे दृग डोरे पै।
ऊनरी घटा मैं देखि दूनरी लगी है आहा,
कैसी आजु चूनरी फबी है मुख गोरे पै॥

चन्द्रावली : सखियों, देखो कैसो अन्धेर और गजब है कि या रुत में सब अपनो मनोरथ पूरो करैं और मेरी यह दुरगत होय! भला काहुवे तो दया आवती।

[आंखों में आंसू भर लेती है]

माधवी : सखी, तू क्यौं उदास होय है। हम सब कहा करैं, हम तो आज्ञाकारिणी दासी ठहरीं, हमारो का अखत्यार है तऊ हममैं सों तो कोऊ कछू तोहि नायं कहै।

काममंजरी : भलो सखी, हम याहि कहा कहैंगी! याहू तो हमारी छोटी स्वामिनी ठहरी।

विलासिनी : हां सखी, हमारी तो दोऊ स्वामिनी हैं। सखी, बात यह है कै खराबी तो हम लोगन की है, ये दोऊ फेर एक की एक होयगी। लाठी मारवे सों पानी थोरों हूं जुदा होयगो, पर अभी जो सुन पावैं कि ढिमकी सखी ने चन्द्रावलियै अकेलि छोड़ि दीनी तो फिर देखौ तमासा।

माधवी : हम्बै बीर। और केर कामहू तौ हमीं सब बिगारैं। अब देखि कौन नै स्वामिनी सों चुगली खाई। हमारेइ तुमारे में सो बहू है। सखी चन्द्रावलियै जो दुःख देयगी वह आप दुःख पावैगी।

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय! प्यारे, हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते। प्यारे, फिर से शरीर कहां और हम तुम कहां? प्यारे, यह संयोग हम को तो अबकी ही बना है, फिर यह बातैं दुर्लभ हो जायंगी। हाय नाथ! मैं अपने इन मनोरथों को किसको सुनाऊं और अपनी उमंगें कैसे निकालूं। प्यारे, रात छोटी है और स्वांग बहुत हैं। जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा। हाय! मुझ सी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं। रात दिन रोते ही बीतते हैं। कोई बात पूछने वाला नहीं, क्यौंकि संसार में जी कोई नहीं देखता, सब ऊपर ही की बात देखते हैं। हाय! मैं तो अपने पराए सब से बुरी बन कर बेकाम हो गई। सबको छोड़कर तुम्हारा आसरा पकड़ा था सो तुमने यह गति की। हाय! मैं किसकी होके रहूं, मैं किसका मुंह देख कर जिऊं। प्यारे, मेरे पीछे कोई ऐसा चाहने वाला न मिलैगा। प्यारे, फिर दीया लेकर मुझ को

खोजोगे। हा! तुमने विश्वासघात किया। प्यारे, तुम्हारे निर्दयीपन की भी कहानी चलैगी। हमारा तो कपोतव्रत है। हाय, स्नेह लगा कर दगा देने पर भी सुजान कहलाते हो। बकरा जान से गया, पर खाने वाले को स्वाद न मिला। हाय, यह न समझा था कि यह परिणाम करोगे। वाह! खूब निबाह किया। बधिक भी बध कर सुधि लेता है, पर तुमने न सुधि ली। हाय! एक बेर तो आकर अंक में लगा जाओ। प्यारे, जीते जी आदमी का गुन नहीं मालूम होता। हाय! फिर तुम्हारे मिलने को कौन तरसेगा और कौन रोएगा। हाय! संसार छोड़ा भी नहीं जाता। सब दुःख सहती हूं पर इसी में फंसी पड़ी हूं। हाय नाथ! चारों ओर से जकड़ कर ऐसी बेकाम क्यौं कर डाली है। प्यारे, यौं ही रोते दिन बीतैंगे, नाथ यह हौ मन की मन ही में रह जायगी। प्यारे, प्रकट होकर संसार का मुंह क्यौं नहीं बन्द करते और क्यौं शंका द्वार खुला रखते हो? प्यारे, सब दीनदयालुता कहां गई! प्यारे, जल्दी इस संसार से छुड़ाओ। अब नहीं सही जाती। प्यारे, जैसी हैं, तुम्हारी हैं। प्यारे, अपने कनौड़े को जगत की कनौड़ी मत बनाओ। नाथ, जहां इतने गुन सीखे वहां प्रीति निबाहना क्यौं न सीखा? हाय! मंझदार में डूबा कर ऊपर से उतराई मांगते हो; प्यारे सो भी दे चुकी, अब तो पार लगाओ। प्यारे, सब्र की हद होती है। हाय! हम तड़तैं और तुम तमाशा देखो। जन कुटुम्ब से छुड़ाकर यों छितर बितर करके बेकाम कर देना यह कौन बात है। हाय! सबकी आंखों में हलकी हो गई। जहां जाओ वहां दुर दुर, उस पर यह गति। हाय! "भामिनी तें भौंड़ी करी, मानिनी तें मौड़ी करी, कौड़ी करी हीरा तें, कनौड़ी करी कुल तें" तुम पर बड़ा क्रोध आता है और कुछ कहने को जी चाहता है। बस अब मैं गाली दूंगी। और क्या कहूं, बस आप आप ही हौ; देखो गाली में भी तुम्हें मैं मर्मवाक्य कहूंगी—झूठे, निर्दय, निर्घृण, "निर्दय हृदय कपाट" बखेड़िए और निर्लज्ज, ये सब तुम्हें सच्ची गालियां हैं; भला, जो कुछ करना ही नहीं था तो इतना क्यौं झूठ बके? किसने बकाया था? कूद कूदकर प्रतिज्ञा करने बिना क्या डूबी जाती थी? झूठे! झूठे!! झूठे!!! झूठे ही नहीं वरंच विश्वास घातक! क्यौं इतनी छाती ठोंक और हाथ उठा उठा कर लोगों को विश्वास दिया? आप ही सब मरते चाहे जहन्नुम में पड़ते, और उस पर तुर्रा यह है कि किसी को चाहे कितना भी दुखी देखैं आप को कुछ घृणा तो होती ही नहीं, हाय हाय, कैसे कैसे दुखी लोग हैं—और मजा तो यह है कि सब धान बाइस पसेरी। चाहे आप के वास्ते दुखी हो, चाहे अपने संसार के दुःख से; आप को, दोनों उल्लू

फंसे हैं। इसी से तो "निर्दय हृदय कपाट" यह नाम है। भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया? किसने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था, कुछ न होता, तुम्हीं तुम रहते बस चैन था केवल आनन्द था। फिर क्यों यह विषमय संसार किया। बखेड़िए! और इतने बड़े कारनामे पर बेहयाई परले सिरे की। नाम बिकै, लोग झूठा कहैं, अपने मारे फिरैं, आप भी अपने मुंह झूठे बनैं, पर वाह रे शुद्ध बेहयाई और पूरी निर्लज्जता! बेशरमी हो तो इतनी तो हो। क्या कहना है! लाज को जूतों मार के पीट पीट के निकाल दिया है। जिस मुहल्ले में आप रहते हैं, उस मुहल्ले में लाज की हवा भी नहीं जाती। जब ऐसे हो तब ऐसे हो। हाय! एक बेर भी मुंह दिखा दिया होता तो मत वाले मतवाले बने क्यों लड़ लड़कर सिर फोड़ते। अच्छे खासे अनूठे निर्लज्ज हो, काहे को ऐसे बेशरम मिलैंगे, हुकुमी बेहया हो, कितनी गाली दूं बड़े भारी पूरे हो, शरमाओगे थोड़े ही कि माथा खाली करना सुफल हो। जाने दो—हम भी तो वैसी ही निर्लज्ज और झूठी हैं। क्यों न हों। जस दूलह तस बनी बराता। पर इस में भी मूल उपद्रव तुम्हारा ही है, पर यह जान रखना कि इतना और कोई न कहैगा, क्यौंकि सिफारिशी नेति नेति कहैंगे, सच्ची थोड़े ही कहैंगे। पर यह तो कहो कि यह दुखमय पचड़ा ऐसा ही फैला रहैगा कि कुछ तै भी होगा, वा न तै होय। हम को क्या? पर हमारा तो पचड़ा छुड़ाओ। हाय! मैं किससे कहती हूं। कोई सुनने वाला है। जंगल में मोर नाचा किसने देखा। नहीं नहीं, वह सब देखता है, वा देखता होता तो अब तक मेरी खबर न लेता। पत्थर होता तो वह भी पसीजता। नहीं नहीं, मैंने प्यारे को इतना दोष व्यर्थ दिया। प्यारे, तुम्हारा दोष कुछ नहीं। यह सब मेरे करम का दोष है। नाथ, मैं तो तुम्हारी नित्य की अपराधिनी हूं। प्यारे क्षमा करो। मेरे अपराधों की ओर न देखो, अपनी ओर देखो।

[रोती है]

माधवी : हाय हाय सखियो! यह तो रोय रही है।

कामिनी : सखी, प्यारी रोवै मती। सखी तोहि मेरे सिर की सौंह जो रोवै।

माधुरी : सखी, मैं तेरे हाथ जोडूं मत रोवै। सखी, हम सबन को जीव भर्‌यो आवै है।

विलासिनी : सखी, जो तू कहैगी हम सब करैंगी। हम भले ही प्रियाजी की रिस सहैंगी, पर तो सूं हम सब काहू बात सों बाहर नहीं।

माधवी : हाय हाय! यह तो मानै ही नहीं **(आंसू पोंछ कर)** मेरी प्यारी, मैं हाथ जोडूं हा हा कसम खाउं मानि जा।

काममंजरी : सखी, यासों मति कछू कहौ। आओ हम सब मिलि के विचार करै जासों याको काम होय।

विलासिनी : सखी, हमारे तो प्रानताई यापैं निछावर हैं पर जो कछू उपाय सूझै।

चन्द्रावली : (रो कर) सखी, एक उपाय मुझे सूझा है जो तुम मानो।

माधवी : सखी, क्यौं न मानैगी तू कहैं क्यौं नहीं।

चन्द्रावली : सखी, मुझे यहां अकेली छोड़ जाओ।

माधवी : तौ तू अकेली यहां का करैगी?

चन्द्रावली : जो मेरी इच्छा होगी।

माधवी : भलो तेरी इच्छा का होयगी हमहूं सुनैं?

चन्द्रावली : सखी, वह उपाय कहा नहीं जाता।

माधवी : तौ का अपनो प्रान देगी। सखी, हम ऐसी भोरी नहीं हैं के तोहि अकेली छोड़ जायंगी।

विलासिनी : सखी, तू व्यर्थ प्रान देने को मनोरथ करै है। तेरे प्रान तोहि न छोड़ैंगे। जौ प्रांन तोहि छोड़ जायंगे तो इन को ऐसो सुन्दर शरीर फेरि कहां मिलैगो।

काममंजरी : सखी, ऐसी बात हम सूं मति कहै, और जो कहै सो-सो हम करिबे को तैयार हैं, और या बात को ध्यान तू सपने हूं मैं मति करि। जब ताईं हमारे प्रान हैं तब ताईं तोहि न मरन देयंगी पीछे भलेई जो होय सो होय।

चन्द्रावली : (रो कर) हाय! मरने भी नहीं पाती। यह अन्याय!

माधवी : सखी, अन्याय नहीं, यही न्याय है।

काममंजरी : जान दै माधवी वासों मति कछु पूछै। आओ हम तुम मिल कै सल्लाह करैं के अब का करनो चाहिए।

विलासिनी : हां माधवी, तू ही चतुर है, तू ही उपाय सोच।

माधवी : सखी, मेरे जी में तो एक बात आवै। हम तीनि हैं सो तीनि काम बांटि लें। प्यारीजू के मनाइबे को मेरो जिम्मा। यही काम सब में कठिन है और तुम दोउन मैं सो एक याके धरकेन सों याकी सफाई करावै और एक लालजू सों मिलिबे की कहै।

काममंजरी : लाल जी सों मैं कहूंगी। मैं विन्नै बहुती लजाऊंगी और जैसे होय गो वैसे यासों मिलाऊंगी।

माधवी : सखी, वेऊ का करैं। प्रियाजी के डर सों कछू नहीं कर सकैं।

विलासिनी : सो प्रियाजी को जिम्मा तेरो हई है।

माधवी : हां हां, प्रियाजी को जिम्मा मेरो।

विलासिनी : तौ याके घर को मेरौ।

माधवी : भयो, फेर का। सखी काहू बात को सोच मति करै। उठि।

चन्द्रावली : सखियो! व्यर्थ क्यौं यत्न करती हौ। मेरे भाग्य ऐसे नहीं हैं कि कोई काम सिद्ध हो।

माधवी : सखी, हमारे भाग्य तो सीधे हैं। हम अपने भाग्य बल सों सब काम करैंगी।

काममंजरी : सखी, तू व्यर्थ क्यौं उदास भई जाय है। जब तक सांसा तब तक आसा।

माधवी : तौ सखी, बस अब यह सलाह पक्की भई। जब ताईं काम सिद्ध न होय तब ताईं काहुवै खबर न परै।

विलासिनी : नहीं खबर कैसे परैगी?

काममंजरी : **(चन्द्रावली का हाथ पकड़ कर)** लै सखी, अब उठि। चलि हिंडोरों झूलि।

माधवी : हां सखी, अब तो अनमनोपन छोड़ि।

चन्द्रावली : सखी, छूटा ही सा है, पर मैं हिंडोरे न झूलूंगी। मेरे तां नेत्र आप ही हिंडोरे झूला करते हैं—

पल पटुली पैं डोर प्रेम की लगाय चार
आसा ही के खम्भ दोय गाढ़ कै धरत हैं।
झुमका ललित काम पूरन उछाह भर्‌यो,
लोग बदनामी झूमि झालर झरत हैं॥
'हरीचन्द' आंसू दृग नीर बरसाइ प्यारे
पिया-गुन-गान सों मलार उचरत हैं।
मिलन मनोरथ के झोंटन बढ़ाइ सदा
विरह हिंडोरे नैन झूल्योई करत हैं॥

और सखी! मेरा जी हिंडोरे पर और उदास होगा।

माधवी : तौ सखी, तेरी जो प्रसन्नता होय! हम तौ तेरे सुख की गाहक हैं।

चन्द्रावली : हा! इन बादलों को देख कर तो और भी जी दुखी होता है—

देखि घन स्याम घनस्याम की सुरति करि,
जिय मैं विरह घटा घहरि घहरि उठै।
त्यौंहीं इंद्रधनु बगमाल देखि बनमाल,
मोतीलर पी की जय लहरि लहरि उठै॥
'हरीचन्द' मोर पिक धुनि सुनि बंसीनाद,
बांकी छबि बार बार छहरि छहरि उठै।
देखि देखि दामिनी की दुगुन दमकपीत,
पट छोरे मेरे हिय फहरि फहरि उठै॥

हाय! जो बरसात संसार को सुखद है वह मुझे इतनी दुखदायिनी हो रही है।

माधवी : तौ न दुखदायिनी होयगी। चल उठि घर चलि।

काममंजरी : हां चलि।

[सब जाती हैं]

[जवनिका गिरती है।]

॥ वर्षा वियोग विपत्ति नामक तीसरा अंक समाप्त ॥

चौथा अंक

स्थान–चन्द्रावलीजी की बैठक

[खिड़की में से यमुनाजी दिखाई पड़ती हैं। पलंग बिछा हुआ, परदे पड़े हुए, इतरदान पानदान इत्यादि सजे हुए]

[जोगिन[1]आती है]

जोगिन : अलख! अलख! आदेश आदेश गुरु को! अरे कोई है इस घर में? कोई नहीं बोलता। क्या कोई नहीं है? तो अब मैं क्या करूं? बैठूं। क्या चिन्ता है। फकीरों को कहीं कुछ रोक नहीं। उसमें भी हम प्रेम की जोगी, तो अब कुछ गावैं।

[बैठकर गाती है]

''कोई एक जोगिन रूप कियैं।
भौहैं बंक छकोहैं लोयन चलि चलि कोयन कान छियैं॥
सोभा लखि मोहत नारीनर बारि फेरि जल सबहिं पियैं।
नागर मनमथ अलख जगावत गावत कांधे बीन लियै।''[2]
बनी मनमोहिनी जोगिनियां।
गल सेली तन गेरुआ सारी केस खुले सिर बैंदी सोहनियां।
मातै नैन लाल रंग डोरे मद बोरे मोहै सबन छलिनियां।
हाथ सरंगी लिये बजावत गाय जगावत बिरह अगिनियां॥[3]
जोगिन प्रेम की आई।
बड़े-बड़े नैन छुए कानन लौं चितवन मद अलसाई॥
पूरी प्रीति रीति रस सानी प्रेमी जन मन भाई।
नेह नगर मैं अलख जगावत गावत बिरह बधाई॥

---

1. गेरुआ सारी, गहना सब जनाना पहिने रंग सांवला। सेंदुर का लम्बा टीका बेड़ा। बाल खुले हुए हाथ में सरंगी लिये हुए। नेत्र लाल सुन्दर। जब जब गावैगी सरंगी बजा कर गावैगी। सारंगी बजाकर गावैगी।
2. काफी।
3. चैती गौरी वा पीलू खेमटा।

जोगिन आंखन प्रेम खुमारी।
चंचल लोयन कोयन खुभि रही काजर रेख ढरारी॥
डोरे लाल लाल रस बोरे फैली मुख उजियारी।
हाथ सरंगी लिए बजावत प्रेमिन प्राण पियारी॥
जोगिन मुख पर लट लटकाई।
कारी घूंघरवारी प्यारी देखत सब मन भाई॥
छूटे केस गेरुआ बागे शोभा दुगुन बढ़ाई।
सांचे ढरी प्रेम की मूरति अंखियां निरखि पिराई॥

[नेपथ्य में से पैजनी की झनकार सुन कर]

अरे, कोई आता है। तो मैं छिप रहूं। चुपचाप सुनूं। देखूं यह सब क्या बातें करती हैं।

[जोगिन जाती है, ललिता आती है]

ललिता : हैं! अब तक चन्द्रावली नहीं आई। सांझ हो गई, न घर में कोई सखी है न दासी, भला कोई चोर चकार चला आवै तो क्या हो। (खिड़की की ओर देख कर) अहा! जमुनाजी की कैसी शोभा हो रही है। जैसा वर्षा का बीतना और शरद का आरम्भ होना, वैसा ही वृन्दावन के फूलों की सुगन्धि से मिले हुए पवन की झकोर से जमुनाजी का लहराना कैसा सुन्दर और सुहावना है कि चित्त को मोहे लेता है। आह! जमुनाजी की शोभा तो कुछ कही ही नहीं जाती। इस समय चन्द्रावली होती तो यह शोभा उसे दिखाती। वा वह देख ही के क्या करती, उलटा उसका बिरह और बढ़ता। (जमुनाजी की ओर देख कर) निस्सन्देह इस समय बड़ी ही शोभा है।

तरनि तनुजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुं सुहाए॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज निज शोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप बारन तीर कों सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥
कहुं तीर पर कमल अमल सोभित बहु भांतिन।
कहुं सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पांतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत व्रज शोभा।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा॥
कै करि कै कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥

कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि नहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत॥
कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत झांई।
कै ब्रज हरिपद परस हेतु कमला बहु आई॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमंडल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी भौन एहि करि सतधा निज जल धरत॥
तिन पैं जेहि छिन चंद जोति राका निसि आवति।
जल मैं मिलिकै नभ अवनी लौं तान तनावति॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा॥
सो को कवि जो छवि कहि सकै ता छन जमुना नीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छवि इक सी नभ तीर की॥

परत चन्द्र प्रतिबिम्ब कहूं जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुं सोई मन भायो॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छवि छायो॥
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जलबम्ब लखात है॥
कबहुं होत सत चन्द कबहुं प्रगटन दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै॥

कै बालगुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती॥
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल॥
कै कालिन्दी नीर तरंग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत॥

कूजत कहुं कलहंस कहूं मज्जत पारावत।
कहुं कारंडव उड़त कहूं जल कुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुं बसत कहुं बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुं पियत कहूं भ्रमरावलि गावत॥
कहुं तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट शोभा सब जिय धरत॥

कहूं बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई॥
पिय के आगम हेत पांवड़े मन्हुं बिछाए।
रत्नरासि करि चूर कूल मैं मनु बगराए॥
मनु मुक्त मांग सोभित भरी, श्यामनीर चिकुरन परसि।
सतगुन छायो कै तीर मैं, व्रज निवास लखि हिय हरसि॥

[चन्द्रावली अचानक आती है]

चन्द्रावली : वाह, वाह री बैहना, आजु तो बड़ी कविता करी। कविताई की मोट की मोट खोलि दीनी। मैं सब छिपे छिपे सुनती थी।

[दबे पांव से जोगिन आ कर एक कोने में खड़ी हो जाती है]

ललिता : भलो भलो बीर, तोहि कविता सुनिबे को सुधि तौ आई, हमारे इतनोई बहुत है।

चन्द्रावली : (सुनते ही स्मरण पूर्व्वक लम्बी सांस ले कर)

सखी री क्यौं सुधि मोहि दिवाई।
हौं अपने गृह कारज भूली भूलि रही बिलमाई॥
फेर वहै मन भयो जात अब मरिहौं जिय अकुलाई।
हौं तबही लौं जगत काज की जब लौं रहौं भुलाई॥

ललिता : चल जान दे, दूसरी बात कर।

जोगिनी : (आप ही आप) निस्सन्देह इस का प्रेम पक्का है, देखो मेरी सुधि आते ही इस के कपोलों पर कैसी एक साथ जरदी दौड़ गई। नेत्रों में आंसुओं का प्रवाह उमग आया। मुंह सुख कर छोटा-सा हो गया। हाय! एक ही पल में यह तो कुछ की कुछ हो गई। अरे, इस की तो यही गति हैं।

छरी सी छकी सी जड़ भई सी जकी सी घर।
हारी सी बिकी सी सो तो सबही घरी रहै॥
बोले तें न बोलै दृग खोलै नाहि डोलै बैठी।
एकटक देखै सो खिलौना सी धरी रहै॥

'हरीचन्द' औरो घबरात समुझाएं हाय।
हिचकि-हिचकि रोवै जीवति मरी रहै॥
याद ओएं सखिन रोवावै दुःख कहि कहि।
तौ लौं सुख पावै जौ लौं मुरछि परी रहै॥

अब तो मुझ से रहा नहीं जाता। इस से मिलने को अब तो सभी अंग व्याकुल हो रहे हैं।

चन्द्रावली : **(ललिता की बात सुनी अनसुनी कर के बायें अंग का फरकना देख कर आप ही आप)** अरे! यह असमय में अच्छा सगुन क्यों होता है। **(कुछ ठहर कर)** हाय! आशा भी क्या ही बुरी वस्तु है और प्रेम भी मनुष्य को कैसा अन्धा कर देता है। भला वह कहां और मैं कहां, पर जी इसी भरोसे पर फूला जाता है कि अच्छा सगुन हुआ है तो जरूर आवैंगे **(हंस कर)** हैं–उनको हमारी इस बखत फिकिर होगी। "मान न मान मैं तेरा मेहमान", मन को अपने ही मतलब की सूझती है। "मेरो पिय मोहि बात न पूछै तऊ सोहागिन नाम" **(लम्बी सांस लेकर)** हा! देखो प्रेम की गति! यह कभी आशा नहीं छोड़ती। जिस को आप चाहो वह चाहे झूठ झूठ भी बात न पूछे पर अपने जी को यह भरोसा रहता है कि वे भी जरूर इतना ही चाहते होंगे। **(कलेजे पर हाथ रख कर)** रहो रहो, क्यों उमगे आते हो धीरज धरो, वे कुछ दीवार में से थोड़े ही निकल आवैंगे।

जोगिन : **(आप ही आप)** होगा प्यारी, ऐसा ही होगा। प्यारी! मैं तो यहीं हूं। यह मेरा ही कलेजा है कि अन्तर्यामी कहलाकर भी अपने लोगों से मिलने में इतनी देर लगती है। **(प्रकट सामने बढ़ कर)** अलख! अलख!

[दोनों आदर कर के बैठाती हैं]

ललिता : हमारे बड़े भाग जो आपु सो महात्मा के दर्शन भए।

चन्द्रावली : **(आप ही आप)** न जानैं क्यों इस जोगिन की ओर मेरा मन आप से आप खिंचा जाता है।

जोगिन : भला हम अतीतन को दरसन कहा, यौं ही नित्य ही घर घर डोलत फिरैं।

ललिता : कहां तुम्हारो देस है।

जोगिन : प्रेम नगर पिय गांव।

ललिता : कहा गुरु कहि बोलहीं।

जोगिन : प्रेमी मेरो गांव।

ललिता : जोग लियो केहि कारनै।

जोगिन : अपने पिय के काज।

ललिता : मन्त्र कौन?

जोगिन : पिय नाम इक।

ललिता : कहा तज्यौ?

जोगिन : जग लाज।

ललिता : आसन कित?

जोगिन : जितही रमे।

ललिता : पन्थ कौन।

जोगिन : अनुराग।

ललिता : साधन कौन।

जोगिन : पिया मिलन।

ललिता : गादी कौन।

जोगिन : सुहाग।

नैन कहें गुरु मन दियो, बिरह सिद्धि उपदेश।
तब सों सब कुछ छोड़ि हम, फिरत देस परदेश॥

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय! यह भी कोई बड़ी भारी वियोगिन है। तभी इस की ओर मेरा मन आप से आप खिंचा जाता है।

ललिता : तौ संसार को जोग तो और ही रकम को है और आप को तो पन्थ ही दूसरो है। तौ भला हम यह पूछैं कि का संसार के और जोगी लोग वृथा जोग साधैं हैं।

जोगिन : यामैं का सन्देह है सुनो। (सारंगी छेड़ कर गाती है)

पचि मरत वृथा सब लोग जोग सिरधारी।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥
बिरहागिन धूनी चारों ओर लगाई।
बंसी धुनि की मुद्रा कानो पहिराई॥
अंसुअन की सेली गल में लगत सुहाई।
तन धूर जमी सोई अंग भभूत रमाई॥
लट उरझि रहीं सोइ लटकाई लटकारी।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥
गुरु बिरह दियो उपदेस सुनो ब्रजबाला।
पिय बिछुरन दुःख काज बिछाओ तुम मृगछाला॥
मन के मन के की जपो पिया की माला।
बिरहिन की तो हैं सभी निराली चाला॥

पीतम से लगि लौ अचल समाधि न टारी।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥
यह है सुहाग का अचल हमारे बाना।
असगुन की मूरति खाक न कभी चढ़ाना॥
सिर सेंदुर देकर चोटी गूंथ बनाना।
कर चूरी मुख में रंग तमोल जमाना॥
पीना प्याला भर रखना वही खुमारी।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥
है पन्थ हमारा नैंनों के मत जाना।
कुल लोक वेद सब औ परलोक मिटाना॥
शिवजी से जोगी को भी जोग सिखाना।
'हरिचन्द' एक प्यारे से नेह बढ़ाना॥
ऐसे वियोग पर लाख जोग बलिहारी।
सांची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय हाय, इसका गाना कैसा जी को बेधे डालता है। इस के शब्द का जी पर एक ऐसा विचित्र अधिकार होता है कि वर्णन के बाहर है। या मेरा जी ही चोटल हो रहा है। हाय हाय! ठीक प्रान प्यारे की सी इस की आवाज है। (बल पूर्व्वक आंसुओं को रोक कर और जी बहला कर) कुछ इस से और गवाऊं। (प्रकट) जोगिनजी कष्ट न हो तो कुछ और गाओ।

[कह कर कभी चाव से उसकी ओर देखती है और कभी नीचा सिर करके कुछ सोचने लगती है।]

जोगिन : (मुसका कर) अच्छा प्यारी! सुनो। (गाती है)

जोगिन रूप सुधा की प्यासी।
बिनु पिय मिले फिरत वन ही वन छाई मुखहि उदासी॥
भोग छोड़ि धन धाम काम तजि भई प्रेम बनबासी।
पिय हित अलख अलख रट लागी पीतम रूप उपासी॥
मनमोहन प्यारे तेरे लिए जोगिन वन वन वन छान फिरी।
कोमल से तन पर खाक मली ले जोग स्वांग सामान फिरी॥
तेरे दरसन कारन डगर डगर करती तेरा गुन गान फिरी।
अब तो सूरत दिखला प्यारे 'हरिचन्द' बहुत हैरान फिरी॥

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय, यह तो सभी बातें पते की कहती है। मेरा कलेजा तो एक साथ ऊपर को खिंचा आता है। हाय! अब तो सूरत दिखला प्यारे।

जोगिन : तो अब तुम को भी गाना होगा। यहां तो फकीर हैं। हम तुम्हारे सामने गावैं तुम हमारे सामने न गाओगी। (आप ही आप) भला इसी बहाने प्यारी की अमृत बानी तो सुनैंगे। (प्रकट) हां! देखो हमारी यह पहिली भिक्षा खाली न जाय। हम तो फकीर हैं हम से कौन लाज है।

चन्द्रावली : भला, मैं गाना क्या जानूं। और फिर मेरा जी भी आज अच्छा नहीं है, गला बैठा हुआ है। (कुछ ठहर कर नीची आंख कर के) और फिर मुझे संकोच लगता है।

जोगिन : (मुसका कर) वाह रे संकोच वाली! भला मुझ से कौन संकोच है? मैं फिर रूठ जाऊंगी जो मेरा कहना न करैगी।

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय हाय! इसकी कैसी मीठी बोलन है जो एक साथ जी को छीने लेती है। जरा से झूठे क्रोध से जो इस ने मौहें तनेनी की हैं, वह कैसी भली मालूम पड़ती है। हाय! प्राननाथ कहीं तुम्हीं तो जोगिन नहीं बन आए हो। (प्रकट) नहीं नहीं रूठो मत मैं क्यौं न गाऊंगी। जो भला बुरा आता है सुना दूंगी, पर फिर भी कहती हूं आप मेरे गाने से प्रसन्न न होंगी। ऐ, मैं हाथ जोड़ती हूं, मुझे न गवाओ।

[हाथ जोड़ती है]

ललिता : वाह! मुझे नए पाहुने की बात अवश्य माननी होगी। ले, मैं तेरे हाथ जोडूं हूं, क्यौं न गावैगी। यह तो उस से बहाली बता जो न जानती हो।

चन्द्रावली : तो तू ही क्यौं नहीं गाती। दूसरों पर हुकुम चलाने को तो बड़ी मुस्तैद होती है।

जोगिन : हां हां सखी, तू ही न पहिले गा। ले मैं सरंगी से सुर की आस देती जाती हूं।

ललिता : यह देखो। जो बोले सो धी को जाय। मुझे क्या, मैं अभी गाती हूं।

[राग विहाग गाती है]

अलख गति जुगल पिया प्यारी की।
को लखि कै लखत नहीं आवै तेरी गिरिधारी की॥
बलि बलि बिछुरनि मिलनि हंसनि रूठनि नितहीं यारी की।
त्रिभुवन की सब रति गति मति छबि या पर बलिहारी की॥

चन्द्रावली : (आप ही आप) हाय! यहां! आज न जाने क्या हो रहा है। मैं कुछ सपना तो नहीं देखती। मुझे तो आज कुछ सामान ही दूसरे दिखाई पड़ते हैं। मेरे तो कुछ समझ ही नहीं पड़ता कि मैं क्या देख सुन रही हूं। क्या मैंने कुछ नशा तो नहीं पिया है। अरे यह जोगिन कहीं जादूगर तो नहीं है।

[घबड़ानी सी हो कर इधर उधर देखती है। इस की दशा देख कर ललिता सकपकाती और जोगिन हंसती है]

ललिता : क्यों? आप हंसती क्यों हैं?

जोगिन : नहीं, यौं ही मैं इस को गीत सुनाया चाहती हूं पर जो यह फिर गाने का करार करै।

चन्द्रावली : (घबड़ा कर) हां मैं अवश्य गाऊंगी आप गाइए।

[फिर ध्यानावस्थित सी हो जाती है]

[जोगिन सारंगी बजाकर गाती है]

[संकरा]

जोगिन :
तू केहि चितवति चकित मृगी सी।
केहि ढूंढ़त तेरो कहा खोयो क्यौं अकुलाति लखाति ठगी सी॥
तन सुधि करूं उघरत री आंचर कौन ख्याल तू रहति खगी सी।
उतरु न देत जकी सी बैठी मद पीयो कै रैन जगी सी।
चौंकि चौंकि चितवति चारहु दिस सपने पिय देखति उमगी सी।
भूलि बैखरी मृग छौनी ज्यौं निज दल तजि कहूँ दूर भगी सी॥
करति न लाज हाट घर बर की कुल मरजादा जाति डगी सी।
'हरीचन्द' ऐसिहि उरझी तौ क्यौं नहिं डोलत संग लगी सी॥
तू केहि चितवति चकित मृगी सी।

चन्द्रावली : (उन्माद से) डोलूंगी डोलूंगी संग लगी (स्मरण कर के लजा कर आप ही आप) हाय हाय! मुझे क्या हो गया है। मैंने सब लज्जा ऐसी धो बहाई कि आए गए भीतर बाहर वाले सबके सामने कुछ बक उठती हूं भला, यह एक दिन के लिए आई बिचारी योगिन क्या कहैगी? तौ भी धीरज ने इस समय बड़ी लाज रखी नहीं तो मैं राम राम नहीं नहीं मैंने धीरे से कहा था। किसी ने सुना न होगा। अहा! संगीत और साहित्य में भी कैसा गुण होता है कि मनुष्य तन्मय हो जाता है। उस पर भी जले पर नोन। हाय! नाथ हम अपने उन अनुभव सिद्ध अनुरागों और बढ़े हुए मनोरथों को किस को सुनावें? जो काव्य के एक एक तुक और संगीत की एक एक तान से लाख लाख गुन बढ़ते हैं और तुम्हारे मधुर रूप और चरित्र के ध्यान से अपने आप ऐसे उज्जल सरस और प्रेममय हो जाते हैं, मानो सब प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। पर हा! अन्त में करुण रस में उन की समाप्ति होती है क्यौंकि शरीर की सुधि आते ही एक साथ बेबसी का समुद्र उमड़ पड़ता है।

जोगिन : वाह! अब यह क्या सोच रही हो! गाओ! ले अब हम नहीं मानैंगी।

ललिता : हां सखी, अब अपना बचन सच कर।

चन्द्रावली : (अर्द्धोन्माद की भांति) हां हां मैं गाती हूं।

[कभी आंसू भर कर, कभी कई बेर, कभी ठहर कर, कभी भाव वता कर, कभी बेसुर ताल ही, कभी ठीक ठीक कभी टूटी आवाज से पागल की भांति गाती है]

मन की कासों पीर सुनाऊं।
बकनो वृथा और पत खोनी सबै चवाई गाऊं॥
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै धरिहै उलटो नाऊं।
यह तो जो जानै सोइ जानै क्यौं करि प्रकट जनाऊं॥
रोम रोम प्रति नैन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊं।
बिना सुजान शिरोमनि री केहि हियरो काढ़ि दिखाऊं॥
मरमिन सखिन बियोग दुखिन क्यौं कहि निज दसा रोआऊं।
'हरीचन्द' पिय मिले तो पग परि गहि पटुका समझाऊं॥

[गाते-गाते बेसुध होकर गिरा चाहती है कि एक बिजली सी चमकती है और जोगिन श्रीकृष्ण बन कर उठा कर गले लगाती है और नेपथ्य में बाजे बजते हैं]

ललिता : (बड़े आनन्द से) सखी, बधाई है, लाखन बधाई है। ले होश में आ जा। देख तो कौन तुझे गोद में लिए है।)

चन्द्रावली : (उन्माद की भांति भगवान् के गले में लपट कर)

पिय तोहि राखौंगी भुजन मैं बाँधि।
जान न दैहौं तोहि पियारे धरौंगी हिए सों नांधि॥
बाहर गर लगाई राखौंगी अन्तर करौंगी समाधि।
'हरीचन्द' छूटन नहिं पैहौं लाल चतुराई साधि॥
पिय तोहि कैसे हिए राखौं छिपाय?
सुन्दर रूप लखत सब कोऊ यहै कसक जिय आय॥
नैनन में पुतरी करि राखौं पलकन ओट दुराय।
हियरे में मनहूं के अन्तर कैसे लेउं लुकाय॥
मेरो भाग रूप पिय तुमरो छीनत सौतैं हाय।
'हरीचन्द' जीवन धन मेर छिपत न क्यौं इत धाय॥

पिय तुम और कहूं जिन जाहू।
लेन देहु किन मों रंकिन को रूप सुधा रस लाहु॥
जो जो कहौ करौं सोइ सोई धरि जिय अमित उछाहु।
राखौं हिए लगाइ पियारे किन मन माहिं समाहु॥

अनुदिन सुन्दर वदन सुधानिधि नैन चकोर दिखाहु।
'हरीचन्द' पलकन की ओटैं छिनहु न नाथ दुराहु॥

पिय तोहि कैसे बस करि राखौं।
तुव दृग मैं दृग तुव हिय मैं निज हियरो केहि विधि नाखौं॥
कहा करौं का जतन विचारौं बिनती केहि विधि भाखौं।
'हरीचन्द' प्यासी जनमन की अधरसुधा किमि चाखौं॥

भगवान : तौ प्यारी मैं तोहि छोड़ि कै कहां जाऊंगो? तू तौ मेरी स्वरूप ही है। यह सब प्रेम की शिक्षा करिबे कों तेरी लीला है।

ललिता : अहा! इस समय जो मुझे आनन्द हुआ है उस का अनुभव और कौन कर सकता है। जो आनन्द चन्द्रावली को हुआ है वही अनुभव मुझे भी होता है। सच है जुगल के अनुग्रह बिना इस अकथ आनन्द का अनुभव और किस को है?

चन्द्रावली : पर नाथ, ऐसे निठुर क्यों हौ! अपनों को तुम कैसे दुखी देख सकते हो? हा! लाखों बातें सोची थी कि जब कभी पाऊंगी तो यह कहूंगी यह पूछूंगी पर आज सामने कुछ नहीं पूछा जाता!

भगवान : प्यारी! मैं निठुर नहीं हूं। मैं तो अपने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूं। परन्तु मोहि निहचै है कै हमारे प्रेमिन को हम सों हूं हमारो विरह प्यारो है। ताही सों मैं हूं बचाय जाऊं हूं। या निठुरता मैं जे प्रेमी हैं विन को तो प्रेम और बढ़ै और जे कच्चे हैं विन की बात खुल जाय। सो प्यारी वह बात हूं दूसरेन की है। तुमारो का तुम और हम तो एक ही हैं। न तुम हम सौं जुदी हो न प्यारी जू सौं। हमने तो पहिले ही कही कै यह सब लीला है। (हाथ जोड़ कर) प्यारी, छिमा करियौ, हम तौं तुम्हारे सबन के जनम जनम के रिनियां हैं। तुम से हम कभू उरिन होईबेई के नहीं।

[आंखों में आंसू भर आते हैं]

चन्द्रावली : **(घबड़ा कर दोनों हाथ छुड़ा कर आंसू भर के)** बस बस नाथ बहुत भई, इतनी न सही जायगी। आप की आंखों में आंसू देख कर मुझ से धीरज न धरा जायगा।

[गले लगा लेती है। विशाखा आती है]

विशाखा : सखी! बधाई है। स्वामिनी ने आज्ञा दई है के प्यारे सों कही दे चन्द्रावली की कुंज मैं सुखेन पधारौ।

चन्द्रावली : **(बड़े आनंद से घबड़ा कर ललिता विशाखा से)** सखियों, मैं तो तुम्हारे दिए पीतम पाए हैं। **(हाथ जोड़ कर)** तुमारो गुन जनम जनम गाऊंगी।

विशाखा : सखी, पीतम तेरो तू पीतम की। हम तौ तेरी टहलनी हैं। यह सब तौ तुम सबन की लीला है। यामैं कौन बोलै और बोलै हू कहा जौ कछू समुझै तो बोलै—या प्रेम कौ तो अकथ कहानी है। तेरे प्रेम को परिलेख तो प्रेम की टकसाल होयगो और उत्तम प्रेमिन को छोड़ि और काहू की समझ ही मैं न आवैगो। तू धन्य, तेरो प्रेम धन्य, या प्रेम के समझिवेवारे धन्य और तेरे प्रेम को चरित्र जो पढ़ै सो धन्य। तो मैं और स्वामी मैं भेद नहीं है, ताहू मैं तू रस की पोषक ठैरी। बस, अब हमारी दोउन की यही विनती है कै तुम दोऊ गलबाही दै कै बिराजौ और हम जुगल जोड़ी को दर्शन करि आज नेत्र सफल करैं। सिच्छा करिबे को तेरी लीला है।

[गलबाहीं देकर जुगल स्वरूप बैठते हैं]

दोनों—

नीके निरखि निहारी नैन भरि
नैनन को फल आजु लहौ री।
जुगुल रूप छबि अमित माधुरी
रूप सुधा रस सिन्धु बहौ री।
इनहीं सौं अभिलाख लाख करि
इक इनहीं को नितहि चहौ री।
जो नर तनहि सफल करि चाहौ
इनहीं के पद कंज गहौ री।
करम ज्ञान संसार जाल तजि
बरु बदनामी कोटि सहौ री।
इनहीं के रस मत्त मगन नित
इनहीं के स्वै जगत रहौ री।
इनके बल जग जाल कोटि अध
तृन सम प्रेम प्रभाव दहौ री।
इनहीं के सरवस करि जानौ
यहै मनोरथ जिय उमहौ री।
राधा चन्द्रावली कृष्ण व्रज जमुना
गिरिवर मुखहिं कहौ री।
जनम जनम यह कठिन प्रेमव्रत
'हरीचन्द' इकरस निबहौं री॥

भगवान : प्यारी! और जो इच्छा होय सो कहौ। काहे सों कै जो तुम्हैं प्यारो है सोई हमैं हूं प्यारो है।

चन्द्रावली : नाथ! और कोई इच्छा नहीं। हमारी तो सब इच्छा की अवधि आप के

दर्शन ही ताई हैं, तथापि भरत को यह वाक्य सफल होय—

परमारथ स्वारथ दोउ कह संग मेलि न सानैं।
जे आचारज होइं धरम निज तेइ पहिचानैं।
वृन्दा विपिन बिहार सदा सुख सों थिर होई।
जन बल्लभी कहाइ भक्ति बिनु होइ न कोई॥
जगजाल छांडि अधिकार लहि कृष्णचरित सवही कहै।
यह रतनदीप हरिप्रेम को सदा प्रकाशित जग रहै॥

[फूल की वृष्टि होती है, बाजे बजते हैं और जवनिका गिरती है]

॥इति परमफल चतुर्थ अंक॥

[यह नाटिका सन 1876 ई. में छपी थी। पं. गोपाल शास्त्री ने इसका संस्कृत अनुवाद किया था। यह अनुवाद 1878 ई. में हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में धारावाहिक छपा था।]

विषस्यविषमौषधम्

(भाण)

सन 1876 ई.

विषस्यविषमौषधम्

भाण

परतिय रत रावन बध्यौ, पर धन रत तिमि कंस।
राम कृष्ण जय सूर ससि, करन मोह अधधंस॥

(भंडाचार्य्य आता है)

भंडाचार्य्य–(लम्बी सांस लेकर)

पर नारी पैनी छुरी, ताहि न लाओ अंग।
रावनहू को सिर गयो, पर नारी के संग॥

हमारी दशा भी अब रावण की हुआ चाहती है, तो क्या हुआ, होय।

रावन ने दस सिर दिए, जनक नन्दनी काज।
जौ मेरो इक सिर गयो, तो यामें कहं लाज॥

देखो पर स्त्री संग से चन्द्रमा यद्यपि लांछित है तो भी जगत को आनन्द देता है वैसे ही (मोछों पर हाथ फेर कर) हम बड़े कलंकित सही पर इस नगर की शोभा हैं। भला दुष्ट बाबाभट्ट क्या हुआ, तुम ने हमारा सब भेद खोल दिया, यह भेद खुलने पर भी हम ने तुम्हें और कृष्णाबाई दोनों को न छकाया तो मेरा नाम भंडाचार्य्य नहीं। अब भी क्या खंडेराव का राज्य है कि पहलवानों की पूछ होगी, अब तो जो कुछ हैं हमीं लोग हैं (ऊपर देख कर) क्या कहा कि 'इसी उपद्रव से न यह गति हुई' किसकी किसकी? महाराज मल्हारराव की? ए भाई जरा हाल तो कहे जाओ! (ऊपर देख कर) हैं चला गया, कौन गति हुई, इतना तो हमने भी सुना था कि कुछ दिन हुए एक खबीसन आई थी, क्या जानै कौन साहेब उस के मालिक थे। उः अरे वह तो इसी बात पर न आई थी कि महाराज की भेड़ियां उन से अच्छी तरह नहीं चराई जातीं, तो फिर इस से क्या? अपनी नाक ठहरी चाहे जिधर फेर दिया। और फिर उस का प्रबन्ध करने तो उन के साढ़े तीन नातेदार आए न थे–एक दादा, दूसरा भाई, तीसरा पति (नौरा) और आधी जीजी, क्या उन से भी कुछ न हुआ (ऊपर देख कर) क्या कहा, होता कहां से मलहर जी कुछ करने देते तब तो।

अजी बावले हुए हो, करने क्या देते? राजा होता है प्रभु और 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु समर्थः प्रभुः'[1] यह प्रभु का लक्षण है, फिर उनकी बकरी थी चाहै जिस घाट पानी पिलाया। हम तो अपने नौकरों से रात दिन जो चाहते हैं काम लेते हैं और फिर सुख भी तो हिन्दुस्तान में तीन ही ने किया–एक मुहम्मदशाह ने, दूसरे वाजिदअली शाह ने, तीसरे हमारे महाराज ने। मुहम्मदशाह के जमाने में नादिरशाही हुई, वाजिदअली से लखनऊ ही छूटा, अब देखें इन की कौन गति होती है। इस का तो यही फल है, पर फिर कौन इस रंग में नहीं है, बड़े बड़े ऋषि, मुनि राजा, महाराजा नये, पुराने सभी तो इस में फंसे हैं। अहा स्त्री वस्तु भी ऐसी ही है–

पुरुष जनन के मोहन को विधि यन्त्र विचित्र बनायो है।
काम अनल लावन्य सुजल वल जाको बिरचि चलायो है॥
कमर कमानी बार तार सों सुन्दर ताहि सजायो है।
धरमघड़ी अरु रेलहु सों बढ़ि यह सबके मन भायो है॥

यह तो कल के अर्थ में यन्त्र हुआ अब हिन्दुस्तानी तन्त्र का यन्त्र का वर्णन सुनिए–

पुरुष जनन के मोहन को यह मंगल यन्त्र बनायो है।
कामदेव के बीच मन्त्र सों अंकित सब मन भायो है॥
ग्रहण दिवारी कारी चौदस सारी रात जगायो है।
सिद्ध भयो को मन मोहत नारी नाम धरायो है॥

(ऊपर देख कर) क्या कहा? इसी यन्त्र के अनुष्ठान का न यह फल हुआ कि सिर पर इतनी भारी जवाबदेही आ पड़ी। किस के किस के? किस के बल हम कूदते हैं! अरे महाराज के? क्या हुआ (ऊपर देख कर) क्या कहा? 'तुम को क्या नहीं मालूम' हम को यहां तक तो मालूम है कि पहिले एक कमीशन आया था और फिर कुछ आया के आया जाया की गड़बड़ सुनी थी। छिः छिः स्त्री ऐसी ही वस्तु है उस पर भी कुमारी। बिजली को घन का पच्चड़। स्त्री और बिजली जिससे छू गई वह गया (ऊपर देख कर) क्या कहा, "गया भी ऐसा कि फिर न बहुरैगा" अरे कौन कौन? क्या कहा? वही जिस का तुम सबेरे से पचड़ा गा रहे हो! हाय! हाय! महाराज! अरे क्या हुए? गद्दी से उतारे गए? हाय! महा अनर्थ हुआ। महाराज नहीं गए, हिन्दुस्तान गया। भला पूरा हाल तो कहो (कुछ ठहर कर ऊपर देख कर) हां समझा। हाय, बहुत ही बुरा हुआ, बुढ़िया मरने का डर नहीं जम परचने का डर है? 'परचल गोह करौंदा खाय'। वाजिदअली शाह भी तो इसी खुराफात से उतरे थे–"मां

---

1. स्वामी ही करने, न करने या और कुछ करने में समर्थ होता है।

और भाई मलिकाः से इन्साफ चाहने के लिए विलायत पहुंचे। दोनों अपनी जान मलिका पर निछावर कर गुजरे" "सो बातैं सुनि राजसभा में ह्वै निशंक बिस्तारी जू"। 'भाई यस्यास्ति भाग्यं स नरः कुलीन : स पण्ड़ितः श्रुतिमान् गुणाज्ञः स एव दाता स च दर्शनीयः सर्व्वेगुणा : भाग्यवता मधीनाः'।[1] हमारा तो सुनकर जी जल गया कि 'कविवचन-सुधा नाम का कोई अखबार सोने के और लाल टाइप में उस दिन छपा था जिस दिन महाराज उतारे गए। वाह रे सिफारशियो! अरे खुशामद की भी कुछ हद होती है। एक बादशाह ने हुक्म दिया बड़े बड़े खुशामदी लाओ। तीन आदमी हाजिर किए गए। बादशाह ने पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे? पहिला बोला, हुजूर क्यौं नहीं। बादशाह ने उसे निकाल दिया। दूसरे से पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे? उसने कहा, जहांपनाह जहां तक हो सकैगी। बादशाह ने उसे भी निकाल दिया। तीसरे से भी पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे? बोला गरीब परवर क्या मजाल भला मेरी ताकत है कि हुजूर की खुशामद कर सकूं। बादशाह ने कहा हां यह पक्का खुशामदी है। ठीक वही हाल है। और निबाह भी इसी से है। हजार जान दे मरो सिफारिश नहीं तो कुछ भी नहीं। जान भी दे तो बादशाह ही न था। पर भाई सिफारशियों का कल्याण है। तो 'हमहुं कहब अब ठकुरसोहाती। हसब ठठाइ फुलाउब गालू', पर हम से न होगा। भला कहां हिन्दुस्तानी सिफारिशी दरबार, कहां हम से पण्डित। "हरि संग भोग कियो जा तन सों तासों कैसे जोग करैं।" पक्षपात नहीं है ऐसा ही है। लाखों सबूत दे सकते हैं पर कोई सुनै भी। हाय! कोई सुनने वाला भी तो नहीं "प्राणपियारे तिहारै बिना कहो काहि करेजो निकासि दिखाऊं" ए भाई कुछ कहना भी तो झख मारना है। 'पासा पड़ै सो दाव, राजा करै सो न्याव।' "कहै जो लोग बस उस को बजा, कहिए बजा। इनका राज गया तो क्या! आश्चर्य है यह कुछ आज ही थोड़े हुई है, सनातन से चली आई है। और फिर राजनीति की रक्षा भी तो इसी से होती है। पर ऐसे ही सारे भारतवर्ष की प्रजा का सरकार ध्यान नहीं रखती। रामपुर में दुरन्त यवन हिन्दुओं को इतना दुख देते हैं; पूजा नहीं करने देते; शंख नहीं बजता पर सरकार इस बात की पुकार नहीं सुनती। यद्यपि यह अनर्थ वहां है जहां पहिले सरकारी राज्य था और जिस देश के विषय में पक्का अहदनाम हो चुका है। अहदनामे पर क्या, जैसे अधिकारी आते हैं, वैसा बरताव होता है। सरकार बिचारी कुछ देखने थोड़े ही आती है। धन्य है ईश्वर! सन 1599 में जो लोग सौदागरी करने आए थे वे आज स्वतन्त्र राजाओं को यों दूध की मक्खी बना देते हैं। वा यह तो बुद्धि का प्रभाव है। और यह तो उनके सुशासन और बल का फल है। साढ़े सत्रह सौ के सन में जब आरकाट में क्लाइव किले में बन्द था तो हिन्दुस्तानियों ने कहा कि रसद घट गई है; सिर्फ चावल है सो गोरे खायं हम लोग मांड़ पीकर

---

1. जो भाग्यवान हैं; वही मनुष्य कुलीन, वेदज्ञ, गुणवान दाता और सुन्दर है। सभी गुण उस के अधीन हैं।

रहेंगे। सन 1617 में जब सरकार से सब मरहठे मात्र बिगड़े थे तब सिर्फ बड़ौदे वाले साथ थे। उन के कुल की यह दशा! यह तो अब पहिले कमीशन आया था तभी हम समझे थे। यदाऽश्रौषं माधवं वासुदेव सर्वात्मना पाण्डवार्थे निविष्टं। यस्येमां गां विक्रममेकं माहुस्तादानाशंसे विजयाय संजय। जो हो मलहर की यह करतूत भी कभी न भूलैगी। कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्व्व कृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं तो उन्होंने उत्तर दिया और शतरंज के राजा, जहां चलाइए वहां चलैं। (ऊपर देख कर) क्या कहा? यह सब ठीक, पर कहै कौन? सो तो ठीक है 'कौन साहिबनु अक्खे' यों नहीं यों कर। राजा और दैव बराबर होते हैं–ये जो करैं सो देखते चलो बोलने की तो जगह ही नहीं। मलहर सुनते ही तो यह नौबत काहे को होती। राजा बनारस के अधिकार के विषय में जब कौन्सिल में चर्चा हुई तो हेस्टिंग्स साहिब ने रेजिडेंट लोगों के विषय में बहुत ठीक कहा था कि और इलाके में रेजिडेंट न मुकर्रर हो, वे कम्पनी को पटने के इलाके में मालगुजारी दिया करैं, क्योंकि रेजिडेंट मुकर्रर होने से वह राजा और राज्य पर अपना अख्तियार जारी करने की कोशिश करैगा और इन से राजा के साथ उसका विवाद होनें से कौन्सिल में हमेशा नालिशें आवैंगी, जिस में कि निस्सन्देह रेजिडेंट की बात पर विश्वास कर के राजा के विपक्ष में फैसला होगा और पश्चात् एतद्द्वारा उनका सब नुकसान होकर उनको साधारण जमींदारी की अवस्था भोगनी पड़ैगी।'' सो उन्हीं रेजिडेंट से मलहर ने बिगाड़ कर लिया। ठीक है अरे भाई अपने हिन्दुस्तानियों का चाल व्यवहार जितना हिन्दुस्तानी समझैंगे उतना और कोई क्या समझैगा? वरंच ऐसे मामलों का अन्तःसार हिन्दुस्तानी ही लोग जानते हैं, ''सहवासी विजानीयात चरितंसहवासिनः''। हाय! ऐसे बड़े वंश की यह दुर्दशा! सच है, कुपुत्र बुरा होता है। इनका पुरखा दमाजी गायकवाड़ कैसा प्रतापी था, जिसके बल से पेशवा रघुनाथराव निशंक रहता था। सन 1768 में जब माधवराव रघुनाथराव से जूती उछली थी तो इसी दमा ने अपने बेटे गोविन्दराव को भेजा था। सुना है कि दमा के चार बेटे थे–बड़ा पर छोटी रानी से तो सियाजी, छोटा पर बड़ी रानी से गोविन्दराव। सब से छोटकी रानी से फते सिंह और माणिक जी। यही गोविन्दराव बाप के मरने पर साढ़े पचास लाख रुपया देकर और हर साल उनहत्तर हजार रुपया और तीन हजार सवार, समय पड़े पांच हजार सवार देने के करार पर सैना खास खेल हुआ (ऊपर देख कर) क्या कहा? फते सिंह भी तो लड़ा था? हां सियाजी को राजा बनाकर लड़ता भिड़ता रहा, पर बाजीराव ने पेशवा होकर गोविन्दराय को पक्का न कर दिया, वरंच हरिफड़ के चढ़ाव के समय फौज लेकर आप बड़ौदे गया और गोविन्दराव को राजा बनाया। सरकार ही ने तो इन दोनों की कलह मिटाई थी जिस में तै कर दिया था कि छब्बीस लाख रुपया तो तीन महीने में गायकवाड़ पेशवा रघुनाथ को दे और पेशवा उस को दस लाख की दक्षिण में जागीर दे और दो लाख तेरह हजार की जमीन गायकवाड़ सरकार को दे (ऊपर देख कर)

क्या कहा? कभी कर्नल गाड़ ने बड़ौदे का भी तो कुछ हिस्सा ले लिया था? हां फतेसिंह ने कुछ गड़बड़ किया था पर उस पर कर्नल गाड़ ने हुमायूं का शहर ले लिया था। (ऊपर देख कर) क्या कहा कि फिर क्या हुआ? फिर यह तै हुआ कि मायी नदी के उत्तर की पृथ्वी पेशवा फतेसिंह ले और सरकार को भरोच अठविशी के अठाइसो परगने, शिनोर परगना और कुछ जमीन मिलै। यह फतेसिंह नाना फड़नवीस के दौर दौरा में साढ़े पन्द्रह लाख रुपया पेशवस को और एक लाख दीवान को देकर सैना खास खेल हुआ। बिचारा सन 1791 ई. में गिर कर मर गया और उसका छोटा भाई मानिक जी सिया जी को नाव का राजा बना कर राज चलाने लगा। पर गोविन्द राव ने, जो जब खेड़े गांव में पूने के पास रहता था पेशवा से कहा कि हमारा राज अब हम को मिलै। यह सुनते ही माणिक जी ने तैंतीस लाख तेरह हजार रुपया नजर और अड़तीस लाख की बाकी देकर फड़नवीस से राज की सनद ले ली और इधर गोविन्दा ने महाजी सेधिया के पूना आने पर उनके द्वारा सनद पायी। इसी बखेड़े में माणिकराव आप ही मर गया तब भी नाना ने गोविन्दा को पहिली नजर दिए बिना जाने न दिया, देखो इन्हीं अंगरेजों ने पहिले तै हुई बात के विरुद्ध समझ कर उस समय गोविन्दा की सहायता की और नाना को समझाया कि सालपी में जो तै हो चुका है उसके बरखिलाफ अब नया ताप्ती के दक्षिण का मुल्क बिचारे गोविन्दा से क्यौं मांगते हौ और इन्हीं के बदौलत बिचारा गोविन्दा सन 1792 दिसम्बर को 19 तारीख को राजा हुआ और सन 1799 में बम्बई के गवर्नर डंकन साहब से मिल कर शिष्टाचार करके सूरत का चौथाई हिस्सा और चौरासी परगना दिया (ऊपर देख कर) क्या कहा? हां कुछ बड़ौदा का हाल और भी कहो? सुनो, हम तो इस वंश के पुराने पुरोहित हैं। सब शाखोच्चार करैं। हां तो सबसे पहिले गोविन्दा राजगद्दी पर बैठे, फिर आबा शेलूकर जो नाना के साथ कैद में पड़ा था सो सेंधिया को दस लाख रुपया देकर छूटा और अहमदाबाद का हाकिम हुआ, बाजीराव ने गोविन्दराव से और उससे बिगाड़ कराया जिस से इन दोनों में रात दिन धौल धप्पड़ होती रही पर डंकन साहब से गोविन्दराव से मेल होने से आबा मन्द पड़ गया, बिचारा गोविन्दराव 1810 सन में मर गया। कुछ मल्हारराव की पुरुषार्थी नहीं हैं। गोविन्दराव के समय से यह बात है क्यौंकि वह चार सेन और सात दासीपुत्र छोड़ गए थे, आनन्दराव सब में बड़ा था उसी को राजवाले मालिक समझते थे। पर वह बुद्धिमान नहीं था इस से दूसरे हिस्सेदारों ने अपना तार जमाना चाहा गोविन्दराव ने दूसरे लड़के कान्हो जी को फसादी जान कर अपने सामने से कैद किया था। पर पीछे आनन्दराव से बहुत मिन्नत कर के और फौज के अफसरों को बीच में डाल कर छूटा और मुख्य दीवान, हुआ पर उस पर सन्तोष न कर के सारे राज पर सत्ता बढ़ाने लगा अन्त में रावजी आपा परभू पुराने कारिन्दे ने प्रबल होकर उस को पदच्युत किया। इन दोनों ने सरकार से सहायता चाही। जिस में कान्होजी ने पुराने करार के सिवाय चिखली का परगना

देने को कहा। आनन्दराव और उस के दीवान आपा की मदद को सात हजार अरब सवार थे क्योंकि आपा का भाई बाबा जी उनका सरदार था, कान्होवा का पक्षपाती कड़ी की जमींदार मल्हारराव गायकवाड़ था और यह मनुष्य शूर चतुर था, इसने आनन्दराव के राज में जब बहुत उपद्रव किया और बहुत से किले भी ले लिये तब आपा ने बम्बई के गवर्नर को मदद के वास्ते लिखा और पांच पल्टन इस शर्त पर मांगी कि उन का खर्च वह देगा। बम्बई के गवर्नर ने बिना गवर्नर जनरल से पूछे पूरी मदद कैसे दें—यह सोच कर मेजर बाकर साहब की मुहतमी में 1600 आदमी भेजे जो आनन्दराव की पल्टन से मिल के कड़ी पर चढ़ दौड़े। उस समय मल्हारराव ने, मुझ से चूक हुई, सब फेर देंगे, वह कह के मेल का पैगाम डाला। पर उस के जी में छल था। इसी से जब ये लोग बेखबर थे, तब छापा मारा पर बाकर साहब की बुद्धिमानी से फौज बच गई। थोड़े दिन में मालूम हुआ कि मल्हार ने आनन्दराव के बहुत से लोग मिला लिये जिस से वाकर साहब को उस समय अपनी रक्षा के सिवा और कुछ न सूझी और बम्बई कुमुक भेजने को लिखा। एप्रिल की 23 तारीख को बम्बई से कुछ लोगों को मदद आ गई और वे लोग खाई खोद कर कड़ी का किला घेर कर पड़े रहे। गायकवाड़ और सरकार की फौज ने मिल कर कड़ी जीत लिया जिस में 113 सरकारी आदमी मरे, मल्हारराव सरकार के आधीन हुआ और सवा लाख रुपया साल नरियाद की आमदनी में से देकर वहीं नजरबन्द रखा गया और कड़ी का किला गायकवाड़ के अधिकार में आया। मल्हारराव का पक्षपाती गणपतराव गायकवाड़ बड़ौदे के पास लड़ता था सो संकरे के किले में बन्द हुआ। सरकार ने वह किला भी छीन लिया और गणपतराव और गोविन्दराव का दासीपुत्र मुरारराव ये दोनों धार भाग गए और यहां के पवार राजा के आश्रम में रहे। थोड़े दिन पीछे अरब लोगों ने अपनी तनखाह न मिलने के बहाने बड़ा उपद्रव किया आनन्दराव को कैद कर लिया और कान्होवा को कैद से छोड़ दिया। मेजर बाकर ने पहिले तो उन्हें बहुत समझाया फिर दस दिन तक खूब लड़े और अन्त में जब किले की दीवार तोड़ा, तब अरब लोगों ने हार कर मेल करना चाहा। इस लड़ाई में अच्छे अच्छे अंग्रेजी सरदार मारे गए। सवा सत्रह लाख तनखाह बाकी देकर इस करार पर मेल हुआ कि वे लोग अपने देश या राज के बाहर चले जायं। उस में बहुत तो चले गए पर आबू जमादार राज पिंपली गांव में कान्होवा से जा मिला। कान्होवा ने फिर मार धाड़ लूट खसोट शुरू की, पर अन्त में होम्स साहब से हार कर उज्जैन में आ रहा। हां, हां इस के सिवा एक बात और भी है। एक दफे बड़ौदा के वकील आप मैराल को बाजीराव ने कहा कि बड़ौदा वालों के यहां हमारा एक करोड़ रुपया बाकी है। सो उस में से सत्रह लाख हम छोड़ देते हैं बाकी इन से दिलवा दो। बाजीराव ने केवल दगाबाजी से बड़ौदे पर हाथ डालने की यह युक्ति की थी, बड़ौदे वाले कहते थे कि हम ने जो बहुत से पेशवा के काम किए हैं उस के बदले हमी को अभी कुछ चाहिए गंगाधरशास्त्री पट्टवर्धन को गायकवाड़ ने सरकार की रक्षा

में पेशवा के यहां भेजा। पेशवा ने कछु बात तै नहीं की और शिष्टाचार में लगा कर शास्त्री को लेकर अपने सलाही त्रयम्बक जी डगला के साथ पंढरपुर गया और वहां छल से 1815 की चौदहवीं जुलाई को शास्त्री को किसी सिपाही से मरवा डाला। सरकार ने इस बात पर अत्यन्त क्रोध किया और चारों ओर से पेशवा पर फौज भेजी। पेशवा ने अन्त में हार कर त्रयम्बक को सरकार के हवाले किया और आगे से बड़ौदावालों को छेड़ने से हाथ उठाया। हाय! यह वही बड़ौदा है जिस पर सरकार की सदा से ऐसी छाया रही।

(ऊपर देख कर) क्या कहा 'हां कहे चलो' जाने दो इन पुराने पचड़ों को लेकर कौन रोवै पर भाई एचिसन साहब ने अपने अहदनामों में लिखा है कि खंडेराव और मल्हारराव के सिवाय पीलजी गायकवाड़ के असली और नसली वंश में और कोई नहीं है; तब मल्हारराव का वंश राज पर बैठने से रोका जाय यह तनिक अनुचित मालूम होता है। अनुचित काहे को है सन 1802 में ओ अहदनामे हुए हैं, उन में तो सरकार को गायकवाड़ की खानगी बातों में बिलकुल अधिकार है। फिर यह रोना क्या। हम तो जानते हैं कि जब मल्हारराव ने लक्ष्मीबाई से विवाह किया तभी से उस की बड़ी बहिन दरिद्राबाई थी इनके ताक में थी और समय पाकर अपनी बहिन के पास आ गई। शास्त्रों में लिखा है कि लक्ष्मी, दरिद्रा दोनों बहिन हैं। पर भाई! यह कन्या फली नहीं, मुद्राराक्षस की विषकन्या हो गई। अत्त भी तो बड़ी हुई। सुना है कि जब महाराज शहर के अमीरों के घर में जाते थे तो उनके ड़र के मारे औरतें कुएं में उतारी जाती थीं। क्या हुआ सनातन से चली आई है। अग्नि वर्ण भी तों ऐसा ही था—

'अंकमंकपरिवर्त्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे।
वल्लकींच हृदयंगमस्वना वल्गुवागपिच वामलोचना'।[1]

और नहीं तो क्या। बगल में मोहताब हो या आफताब या साकी हो या शराब। भला रावन इनसे बढ़ के था कि ये रावन से बढ़ के? एक बात में तो ये रावन से बढ़ गए कि ऐसे काल में और सरकार के राज्य में इन्होंने ऐसा उपद्रव किया! धन्य भारत भूमि! तुझे ऐसे ही पुत्र प्रसव करने थे। हाय! मुहम्मदशाह और वाजिद अली शाह तो मुसलमान हो के छूटे पर मल्हारराव का कलंक हिन्दुओं से कैसे छूटैगा। विधवा विवाह सब कराया चाहते हैं पर इस ने सौभाग्यवती विवाह निकाला। भला मुसलमान होता तो तलाक दिलवा के भी हलाल कर लेता। पर तलाक कहां, लक्ष्मीबाई के खसम ने तो नालिश की थी। सच है यह ऐसे ही हजरत थे। हमारी सरकार के

1. अंक (गोद में ही लेटने में पटु मनोहर शब्द वाली वीणा तथा मधुर बोलने वाली वामा दोनों गोद की शून्यता को दूर करैं।

विरुद्ध जो कुछ कहे वह झख मारे। यदि ऐसे लोगों के उचित दंड न हो तो ये लोग न जानें क्या अनर्थ करें। कहा भी तो है—

अदंड्याान दंडयेत राजा दंड्यानेवभिनन्दयन्।
अयशोमहदाप्नोति नारकीं च गतिंपरां॥[1]

(ऊपर देख कर) क्या कहा? और खानदेश का एक कुमार गद्दी पर बैठा भी तो दिया गया। लो भया तब क्या हहाहा! भला तब हम क्या इतना झंखते थे। अहा धन्य है सरकार! यह बात कहीं नहीं है। दूध का दूध पानी का पानी। और कोई बादशाह होता तो राज जप्त हो जाता। यह इन्हीं का कलेजा है। हे ईश्वर, जब तक गंगा, यमुना में पानी है तब तक इनका राज स्थिर रहै। अहा! हमारी तो पुरोहिती फिर जगी। हमें मल्हारराव से क्या काम, हमें तो उस गद्दी से काम है ''कोउ नृप होउ हमें का हानी'' धन्य अंगरेज! राम और युधिष्ठिर का धर्म्मराज्य इस काल में प्रत्यक्ष कर दिखाया, अहाहा! (ऊपर देख कर) क्या कहा? कहो और क्या चाहते हो! भला और क्या चाहैंगे हमारा भंडपना जारी ही रहा। बड़ौदा का राज फिर सुख से बसा तो अब और क्या चाहिए। और मल्हारराव का जो कहो तो उस का कौन सोच है, जैसे व्रत वैसे उद्यापन।

विषस्यविषमौषधं, तो भी यह भरत वाक्य सफल हो—

परतिय परधन देखि न नृपगन चित्त चलावैं।
गाय दूध बहु देहि, मेघ सुभ जल बरसावैं॥
हरि पद में रति होइ न दुख कोऊ कहं व्यापै।
अंगरेज को राज ईस इत थिर करि थापै॥
श्रुति पन्थ चलैं सज्जन सबै सुखी होहिं तजि दुष्ट भय।
कविबानी थिर रस सों रहै भारत की नित होइ जय॥

[जवनिका गिरती है।]

[इति विषस्यविषमौषधम् नाम भाणं]

[भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह नाटक 'हरिचन्द्रचन्द्रिका' में 10 अक्टूबर, सन 1876 ई. को प्रकाशित हुआ था। 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' में इसके शीर्षक के ऊपर 'प्राप्त' लिखा हुआ है। ऐसा लगता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने यह शीर्षक किसी अन्य लेखक से लिया है।]

●

1. दंड न देने योग्य व्यक्ति को दंड देता हुआ और दंड देने योग्य व्यक्ति पर कृपा करता हुआ राजा बड़ी कुकीर्ति को प्राप्त होता है और अन्त में नरक में जाता है।

सत्यहरिश्चन्द्र

एक रूपक

सन 1876 ई.

सत्यहरिश्चन्द्र

एक रूपक

करुण रस अंगी

भयानक और वीर अंग

चार अंकों में

पहिला अंक	इन्द्र सभा
दूसरा अंक	हरिश्चन्द्र की सभा
तीसरा अंक	काशी में विक्रय
चौथा अंक	श्मशान

सन 1876 ई.

समर्पण

नाथ!

यह एक नया कौतुक देखो। तुम्हारे सत्यपथ पर चलने वाले कितना कष्ट उठाते हैं यही इस में दिखाया है। भला हम क्या कहैं? जो हरिश्चन्द्र ने किया वह तो अब कोई भी भारतवासी न करैगा पर उस वंश ही के नाते इन को भी मानना। हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं। पर तुम्हारी ही बहुत कुछ है। बस, इतनी ही सही। लो 'सत्य हरिश्चन्द्र' तुम्हें समर्पित है; अंगीकार करो। छल मत समझना सत्य का शब्द सार्थ है, कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं है।

तुम्हारा

ज्येष्ठ शुद्ध 5 सं. 1933 हरिश्चन्द्र

उपक्रम

मेरे मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद वी. ए. ने मुझ से कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखैं जो लड़कों के पढ़ने पढ़ाने योग्य हो क्यौंकि शृंगार रस के आप ने जो नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं लड़कों को उन से कोई लाभ नहीं। उन्हीं की इच्छानुसार मैंने यह सत्य हरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है।

इस में सूर्य्य कुल सम्भूत राजा हरिश्चन्द्र की कथा है। राजा हरिश्चन्द्र सूर्य्यवंश का अट्ठाइसवां राजा रामचन्द्र से 35 पीढ़ी पहले त्रिशंकु का पुत्र था। इस ने शौभपुर नामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इस की कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपाल दे के समय में आर्य्य क्षेमीश्वर कवि ने चंडकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द्र के चरित्र में बनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए क्यौंकि बिश्वनाथ कबिराज ने अपने साहित्य ग्रन्थ में इसका नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। यह एक बेर संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब वशिष्ठ ने सैन समेत उसकी जाफ़त अपनी शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप सें बड़े धूमधाम से की तो विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और गऊ के बदले भी वशिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना नाश कर दिया और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिए। विश्वामित्र इस पराजय से उदास होकर तप करने लगे और महादेवजी से वरदान में सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आए। वशिष्ठ ने मन्त्र के बल से एक ऐसा ब्रह्मदंड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। हारकर विश्वामित्र ने सोचा कि अब तप करके ब्राह्मण होना चाहिए और तप करके अन्त में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गए। यह वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या कांड के 52 से 60 सर्ग तक सविस्तर वर्णित है।

जब हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठ जी से कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह अशक्य काम हम से न होगा। तब त्रिशंकु

वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उनसे भी कोरा जवाब पाया तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं किया और हम को कोरा जवाब दिया इस से अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट होकर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चांडाल हो जा। बिचारा त्रिशंकु चांडाल बनकर विश्वामित्र के पास गया और दुखी होकर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने वैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोच कर राजा से प्रतिज्ञा किया कि इसी देह से तुम को स्वर्ग भेजैंगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आए पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आए और कहा कि चांडाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहां कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट होकर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देख कर और बिचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मन्त्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञ में भाग लेने न आए तो विश्वामित्र ने क्रोध से श्रुवा उठा कर कहा कि त्रिशंकु यज्ञ से कुछ काम नहीं तुम हमारे तपोबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आया चाहता है तो पुकारा कि अरे तू यहाँ आने के योग्य नहीं है नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा होकर नीचे गिरा और विश्वामित्र से त्राहि-त्राहि पुकारा। विश्वामित्र ने तप बल से उस को वहां बीच ही में स्थिर रक्खा। कर्म्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रुव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्होंने नए बनाए और बहुत से जीव जन्तु, फल मूल बनाकर जब इन्द्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डरकर इन से क्षमा मांगने गए। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रख कर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भांति प्रकाशमान स्थिर रख कर क्षमा किया। यह सब भी रामायण ही में है। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा इस से बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चांडाल के घर भीख मांगने गए और जब कुत्ते का मांस पाया तो उसी से देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इन के भय से कांप गए और इन्द्र ने उसी समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शांतिपर्व्व के 141वें अध्याय में है। फिर हरिश्चन्द्र की विपत्ति सुन कर क्रोध से वशिष्ठ जी ने उन को शाप दिया कि तुम बकुला हो जाओ और विश्वामित्र ने यह सुन कर वशिष्ठ को शाप दिया कि तुम आड़ी[1] हो जाओ। पक्षी बन कर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया जिससे त्रैलोक्य कांप गया। अन्त में ब्रह्मा ने दोनों से मेल कराया। यह उपाख्यान मारकण्डेय पुरान के नवें अध्याय में है। इनकी उत्पत्ति यों है। भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को ब्याह किये देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और बेटा बहू देखने को उन के घर आए।

---

1. किसी जाति का गिद्ध।

उन दोनों ने पिता की पूजा किया और हाथ जोड़ कर सामने खड़े हो गए। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी वर मांग। सत्यवती ने यह वर मांगा कि मुझे तो वेद शास्त्र जानने वाला और मेरी माता को युद्ध विद्या विशारद पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कह कर ध्यान दे प्राणायाम किया और उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए। भृगु ने वह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में अश्वत्थ का आलिंगन करके खाय और तुम यह सफेद चरु उसी भांति उदुम्बर का आलिंगन करके खाना। भृगु के वाक्यानुसार सत्यवती ने कनौज के राजा गाधि की स्त्री अपनी माता से सब कहा। उसकी माता ने यह समझा कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने को चरु दिया होगा जब ऋतुकाल आया तब लाल चरु तो कन्या को खिलाया और सफेद आप खाया। भगवान भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो आ कर बहू से कहा कि तुम ने चरु को उलट पुलट किया इस से तुम्हारा लड़का ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय कर्म्म होगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हो जायगा सत्यवती ने जब ससुर से इस अपराध की क्षमा चाही तब उन्हीं ने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रियकर्म्मा होगा। वही राजा गाधि को विश्वामित्र हुए और च्यवन को जमदग्नि और जमदग्नि को परशुराम हुए। यह उपाख्यान कालिका पुराण के 84वें अध्याय में स्पष्ट है।

इन उपाख्यानों के जानने से इस नाटक के पढ़ने वालों को बड़ी सहायता मिलैगी। इस भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्व्वपुरुष महाराज हरिश्चन्द्र भी थे यह समझ कर इस नाटक के पढ़ने वाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारैंगे तो कवि का परिश्रम सुफल होगा।

सत्यहरिश्चन्द्र

मंगलाचरण

दोहा

सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुख कन्द।
जनहित कमला तजन जय शिव नृप कवि हरिचन्द[1]॥

[नान्दी के पीछे सूत्रधार[2] आता है]

सूत्रधार : अहा! आज की सन्ध्या भी धन्य है कि इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सब की इच्छा है कि हिन्दी भाषा का कोई नवीन नाटक देखैं। धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहां के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे, भला वहां अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त तो हुई। परन्तु हा! शोच की बात है कि जो बड़े बड़े लोग हैं और जिनके लिए कुछ हो सकता है वे ऐसी अन्धपरम्परा में फंसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह, उन्हीं की बात है, जिन्हें झूठी खैरखाही दिखाना वा लम्बा चौड़ा गाल बजाना आता है। **(कुछ सोच कर)** क्या हुआ, ढंग पर चला जायगा तो यों भी बहुत कुछ हो रहैगा। काल बड़ा बली है, धीरे धीरे सब आप ही कर देगा। पर भला, आज इन लोगों को लीला कौन सी दिखाऊं। **(सोच कर)** अच्छा उनसे भी तो पूछ लें? ऐसे कौतुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है। **(नेपथ्य की**

---

1. यह श्लेष शिवजी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि पांच का वर्णन करता है।
2. सूत्रधार हरे वा नीले रंग की साटन का कामदार जांघिया पहिने उस के आगे पटुके की तरह कमरबन्द के दोनों किनारे नीचे ऊपर लटकते हुए, गले में चुस्त सामने बुताम की मिरजई, ऊपर माला वगैरह और सब गहिने, सिर पर टिपारा, पैर में घुंघरू, हाथ में छड़ी, पैजामा वा काछनी, सिर पर मुकुट।

ओर देख कर) मोहना! अपनी भाभी को जरा इधर तो भेजना।

[नेपथ्य में से 'मैं तो आप ही आती थी' कहती हुई नटी[1] आती है]

नटी : मैं तो आप ही आती थी। वह एक मनिहारिन आ गई थी उसी के बखेड़े में लग गई नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती। कहिए, आज जो लीला करनी हो वह पहिले ही से जानी रहे तो मैं और सभों से कह कर सावधान कर दूं।

सूत्रधार : आज का नाटक तो हमने तुम्हारी ही प्रसन्नता पर छोड़ दिया है।

नटी : हम लोगों को तो 'सत्यहरिश्चन्द्र' आजकल अच्छी तरह याद है और उसका खेल भी सब छोटे बड़े को मंज रहा है।

सूत्रधार : ठीक है, यही हो। भला इस से अच्छा और कौन नाटक होगा। एक तो इन लोगों ने उसे अभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणापूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उस का कवि भी हम लोगों का एक मात्र जीवन है।

नटी : (लम्बी सांस लेकर) हा! प्यारे हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण रूप न समझा। क्या हुआ?

कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछे।
प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जायगी॥

सूत्रधार : इस में क्या सन्देह है। काशी के पंडितों ही ने कहा है :

सब सज्जन के मान को, कारन इक हरिचन्द।
जिमि सुभाव दिन रैन के, कारन नित हरिचन्द[2]॥

और फिर उनके मित्र पंडित शीतलाप्रसादजी ने इस नाटक के नायक से उन की समता भी की है। इस से उनके बनाए नाटकों में भी 'सत्य हरिश्चन्द्र' ही आज खेलने को जी चाहता है।

नटी : कैसी समता, मैं भी सुनूं?

सूत्रधार : **जो गुन नृप हरिचन्द मैं, जगहित सुनियत कान।**
सो सब कवि हरिचन्द मैं लखहु प्रतच्छ सुजान॥

[नेपथ्य में]

अरे! यहां सत्य भय एक के, कांपत सब सुर लोक।
यह दूजो हरिचन्द को, करन इन्द्र उर सोक[3]॥

---

1. महाराष्ट्री वेष, कमर पर पेटी कसे, वा मर्दाना कपड़ा पहिने पर जेवर सब जनाने।
2. "विद्वज्जनप्रतिष्ठाकारणमेवं हरिश्चन्द्रः स्वभावगत्यादिनरात्र्योर्वा हरिश्चन्द्रः"।
3. "श्रूयन्ते ये हरिश्चन्द्रे जगदाल्हादिनो गुणाः। दृश्यन्ते ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शनि॥"

सूत्रधार : (सुन कर और नेपथ्य की ओर देख कर) यह देखो हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बनकर आ पहुंचा। तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों।

[दोनों जाते हैं]

॥ इति प्रस्तावना ॥

●

पहिला अंक

[जंवनिका उठती है]

स्थान–इन्द्रसभा

[बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ]

(इन्द्र[1] आता है।)

[यहां 'सत्यभय एक के' यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर उधर घूमता है]

[द्वारपाल[2] आता है।]

द्वारपाल : महाराज! नारदजी आते हैं।

इन्द्र : आने दो अच्छे अवसर पर आए।

द्वारपाल : जो आज्ञा।

[जाता है]

इन्द्र : (आप ही आप) नारदजी, सारी पृथ्वी पर इधर उधर फिरा करते हैं, इन से सब बातों का पक्का पता लगैगा। हमने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि उसके धर्म्म की एक बेर परीक्षा तो लेनी चाहिए।

[नारद जी[3] आते हैं]

इन्द्र : (हाथ जोड़ कर दंडवत करता है) आइए आइए। धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़े?

नारद : हमें और भी कोई काम है? केवल यहां से वहां और वहां से यहां, यही हमें है कि और भी कुछ।

इन्द्र : साधु स्वभाव ही से परोपकारी होते हैं, विशेषकर के आप ऐसे जो

---

1. जामा, क्रीट, कुंडल और गहने पहने हुए, हाथ में वज्र (कई फल का छोटा भाला) लिये हुए।
2. छज्जेदार पगड़ी, चपकन, घेरदार पाजामा पहने कमरबन्द कसे और हाथ में असा लिये हुए।
3. धोती की लांग कसे, गांती बांधे, सिर से पांव तक चन्दन का खौर दिए, पैर में घुंघरू, सिर के बाल छुटे और हाथ में बीन लिये हुए। आने और जाने के समय 'राम कृष्ण गोविन्द' की ध्वनि नेपथ्य में से हो।

हमारे से दीन गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं, क्यौंकि जो लोग गृहस्थ और कामकाजी हैं वे स्वभाव ही से गृहस्थी के बन्धनों से ऐसे जकड़ जाते हैं कि साधु संगम तो उन को सपने में भी दुर्लभ हो जाता है। न वे अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावैंगे न कहीं जायंगे।

नारद : आप को इतना शिष्टाचार नहीं सोहता। आप देवराज हैं और आप के संग की तो बड़े बड़े ऋषि मुनि इच्छा करते हैं। फिर आप को सत्संग कौन दुर्लभ है। केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुंह देखा व्यापार होता है वैसी ही बातें आप इस समय कर रहे हैं।

इन्द्र : हम को बड़ा शोच है कि आप ने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा। क्षमा कीजिए। आप से हम बनावट नहीं कर सकते। भला विराजिए तो सही। यह बातैं तो होती ही रहैंगी।

नारद : विराजिए।

[दोनों बैठते हैं]

इन्द्र : कहिए, इस समय कहां से आना हुआ?

नारद : अयोध्या से। अहा! राजा हरिश्चन्द्र धन्य हैं। मैं तो उसके निष्कपट और अकृत्रिम स्वभाव से बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। यद्यपि इसी सूर्य्यकुल में अनेक बड़े बड़े धार्म्मिक हुए पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही है।

इन्द्र : **(आप ही आप)** यह भी तो उसी का गुण गाते हैं।

नारद : महाराज। सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्ति हैं। निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत भूमि का सिर केवल इनके स्मरण से उस समय भी ऊंचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी।

इन्द्र : **(आप ही आप)** अहा! हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनाई है। यद्यपि इस का स्वभाव सहज ही गुणग्राही हो तथापि दूसरों की उत्कट कीर्ति से इस में ईर्ष्या होती ही है। उसमें भी जो जितने बड़े हैं उनकी ईर्ष्या उतनी ही बड़ी है। हमारे ऐसे बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना संताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्ति।

नारद : आप क्या सोच रहे हैं?

इन्द्र : कुछ नहीं। यों ही मैं यह सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्ति आजकल छोटे बड़े सबके मुंह से सुनाई पड़ती है। इससे निश्चय होता है कि नहीं, हरिश्चन्द्र निस्सन्देह बड़ा मनुष्य है।

नारद : क्यौं नहीं, बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे बड़े सब मानैं। और फिर नाम भी तो उसी का रह जायगा जो दृढ़ होकर धर्म्म साधन करैगा। **(आप ही आप)** और उस की बड़ाई का यह भी तो एक

बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उस से बुरा मानते हैं क्योंकि जिस से बड़े बड़े लोग डाह करें पर उसका कुछ बिगाड़ न सकें—वह निस्सन्देह बहुत बड़ा मनुष्य है।

इन्द्र : भला! उसके गृह चरित्र कैसे हैं?

नारद : दूसरों के लिए उदाहरण बनने के योग्य। भला पहिले जिस ने अप ने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किए हैं उसकी और बातों पर क्यों विश्वास हो सकता है। शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है। वचन से उपदेशक और क्रियादिक से कैसा भी धर्म्मनिष्ठ क्यों न हो पर यदि उसका चरित्र शुद्ध नहीं है तो लोगों में वह टकसाल न समझा जायगा और उस की बातें प्रमाण न होंगी! महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन, वचन और कर्म्म एक रहते हैं, इनके भिन्न भिन्न। निस्सन्देह हरिश्चन्द्र महाशय हैं। उस के आशय बहुत उदार हैं इस में कोई सन्देह नहीं।

इन्द्र : भला आप उदार वा महाशय किस को कहते हैं?

नारद : जिस का भीतर बाहर एक सा हो और विद्यानुरागिता, उपकारप्रियता आदि गुण जिसमें सहज हों; अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य्य, सम्पत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिस की स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है। हरिश्चन्द्र में ये सब बातें सहज हैं। दान करके उसको प्रसन्नता होती है और कितना भी दे पर सन्तोष नहीं होता। यही समझता है कि अभी तक कुछ दिया ही नहीं।

इन्द्र : (आप ही आप) हृदय! पत्थर के होकर तुम यह सब कान खोल के सुनो।

नारद : और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चला भक्ति उस में ऐसी है जो सबका भूषण है क्योंकि उस के बिना किसी की शोभा नहीं। फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को सन्देह होता है कि इन्हें राज काज देखने की छुट्टी कब मिलती है। सच है छोटे जी के लोग थोड़े ही कामों में ऐसे घबड़ा जाते हैं मानो सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है; पर जो बड़े लोग हैं उन के सब काम महारम्भ होते हैं तब भी उन के मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती, क्योंकि एक तो उन के उदार चित्त में धैर्य्य और अवकाश बहुत है, दूसरे उन के समय व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथायोग्य बंटे रहते हैं जिस से उन पर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं।

इन्द्र : भला महाराज, वह ऐसे दानी हैं तो उनकी लक्ष्मी कैसे स्थिर हैं?

नारद : यही तो हम कहते हैं। निस्सन्देह वह राजा कुल का कलंक है जिसने बिना पात्र विचारे दान देते देते सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया, आप कुछ उपार्जन किया ही नहीं, जो था वह नाश हो गया। और जहां प्रबन्ध है वहां धन की क्या कमी है। मनुष्य कितना धन देगा और जाचक कितना लेंगे?

इन्द्र : पर यदि कोई अपने वित्त के बाहर मांगैं या ऐसी वस्तु मांगैं जिस से दाता की सर्वस्व हानि होती हो, तो वह दे कि नहीं?

नारद : क्यौं नहीं? अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिए। जिस को धन पाकर सत्पात्र में उस के त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहां हुआ।

इन्द्र : **(आप ही आप)** भला, देखैंगे न।

नारद : राजन! मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है। वे तो अपने सहज सुभाव ही से सत्य और विचार तथा दृढ़ता में ऐसे बंधे हैं कि सत्पात्र मिलने या बात पड़ने पर उनको स्वर्ण का पर्वत भी तिल सा दिखाई देता है और उस में भी हरिश्चन्द्र—जिसका सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष, रानी और तलवार पर भी नहीं है। जो सत्यानुरागी ही नहीं है भला उससे न्याय कब होगा, और जिस में न्याय नहीं है, वह राजा ही काहे का है। कैसी भी विपत्ति और उभय संकट पड़े और कैसी ही हानि वा लाभ हो, पर जो न्याय न छोड़े वही धीर और वही राजा। और उस न्याय का मूल सत्य है।

इन्द्र : तो भला वह जिसे जो देने को कहैगा वह देगा वा जो करने को कहैगा वह करैगा?

नारद : क्या आप उसका परिहास करते हैं? किसी बड़े के विषय में ऐसी शंका ही उसकी निन्दा है। क्या आप ने उसका यह सहज साभिमान वचन कभी नहीं सुना है—

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य विचार॥

इन्द्र : **(आप ही आप)** तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हम को भी अच्छा उपाय मिला। **(प्रकट)** हां पर आप यह भी जानते हैं कि क्या वह यह सब धर्म्म स्वर्ग लेने को करता है।

नारद : वाह! भला जो ऐसे उदार हैं उनके आगे स्वर्ग क्या वस्तु है। क्या बड़े लोग धर्म्म स्वर्ग पाने को करते हैं। जो अपने निर्मल चरित्र से सन्तुष्ट हैं उनके आगे स्वर्ग कौन वस्तु है। फिर भला जिनके शुद्ध

हृदय और सहज व्यवहार हैं वे क्या यश वा स्वर्ग की लालच से धर्म्म करते हैं? वे तो आप के स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं, और जिन लोगों को भगवान के चरणारविन्द में भक्ति है वे क्या किसी कामना से धर्म्माचरण करते हैं? यह भी तो एक क्षुद्रता है कि इस लोक में एक देकर परलोक में दो की आशा रखना।

इन्द्र : (**आप ही आप**) हमने माना कि उस की स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि अपने कर्म्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायगा।

नारद : और जिन को अपने किए शुभ अनुष्ठानों से आप सन्तोष मिलता है उनके उस असीम आनन्द के आगे आप के स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महा महातुच्छ हैं। क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं।

इन्द्र : तथापि एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।

नारद : राजन्! आप का यह सब सोचना बहुत अयोग्य है। ईश्वर ने आप को बड़ा किया है तो आप को दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर संतोष करना चाहिए। ईर्षा करना तो क्षुद्राशयों का काम है। महाशय वही है जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझै।

इन्द्र : (**आप ही आप**) इन से काम न होगा। (**बात बहला कर प्रकट**) नहीं नहीं, मेरी यह इच्छा थी कि मैं भी उन के गुणों को अपनी आंखों से देखता। भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूं जिस से उन्हें कुछ कष्ट हो।

नारद : (**आप ही आप**) अहा! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जिस का चित्त बड़ा है। अधिकार तो बड़ा है पर जिस के चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं, वह आदर के योग्य नहीं है परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है पर उसका चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है।

[द्वारपाल आता है]

द्वारपाल : महाराज! विश्वामित्रजी आए हैं।

इन्द्र : (**आप ही आप**) हां इनसे यह काम होगा। अच्छे अवसर पर आए। जैसा काम हो, वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहिए। (**प्रकट**) हां हां लिवा लाओ।

द्वारपाल : जो आज्ञा। (**जाता है**)

[विश्वामित्रजी[1] आते हैं]

---

1. मृगचर्म, दाढ़ी, जटा, हाथों में पवित्री और कमंडल, खड़ाऊं पर चढ़े।

इन्द्र : **(प्रणामादि शिष्टाचार करके)** आइए, भगवन् विराजिए।

[विश्वामित्र नारदजी को प्रणाम करके और इन्द्र को आशीर्वाद देकर बैठते हैं]

नारद : तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम से जाना है।

विश्वामित्र : यह क्या? हमारे आते ही आप चले। भला ऐसी रुष्टता किस काम की।

नारद : हरे हरे! आप ऐसी बात सोचते हैं। राम राम! भला आप के आने से हम क्यों जायंगे। मैं तो जाने ही को था इतने में आप आ गए।

इन्द्र : **(हंस कर)** आप की जो इच्छा।

नारद : **(आप ही आप)** हमारी इच्छा क्या, अब तो आप ही की यह इच्छा है कि हम जायं, क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्रजी से राजा हरिश्चन्द्र को दुःख देने की सलाह कीजिएगा, तो हम उसके बाधक क्यों हों पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं उतनी ही उनकी सत्य कीर्ति तपाए सोने की भांति और भी चमकती है क्योंकि विपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती। **(प्रकट)** यद्यपि 'जो इच्छा' आप ने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन वचन नहीं कहते क्योंकि इन वाक्यों से रूखापन झलकता है। मैं कुछ इसका ध्यान नहीं करता, केवल मित्र भाव से कहता हूं—लो जाता हूं और यही आशीर्वाद देकर जाता हूं कि तुम किसी को कष्टदायक मत होओ क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं, सुख देना शोभा है।

[इन्द्र कुछ लज्जित होकर प्रणाम करता है। नारदजी जाते हैं]

विश्वामित्र : यह क्यों? आज नारद भगवान ऐसी जली कटी क्यों बोलते थे? क्या तुमने कुछ कहा था।

इन्द्र : नहीं तो। राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग निकला था सो उन्होंने उसकी बड़ी स्तुति की और हमारा उच्च पद का आदरणीय स्वभाव उस परकीर्ति को सहन न कर सका। इस में कुछ बात ही बात ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गए।

विश्वामित्र : तो हरिश्चन्द्र में कौन से ऐसे गुण हैं?

[सहज ही भृकुटी चढ़ जाती है]

इन्द्र : **(ऋषि का भ्रूभंग देख कर चित्त में सन्तोष कर के उनका क्रोध बढ़ाता हुआ)** महाराज सिफारसी लोग चाहे जिस को बढ़ा दें चाहे घटा दें। भला सत्य धर्म्म पालन क्या हंसी खेल है। यह आप ऐसे महात्माओं

ही का काम है जिन्होंने घर बार छोड़ दिया है। भला राज करके और घर में रहके मनुष्य क्या धर्म्म का हठ करैगा? और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ता। इन्हीं बातों से तो नारदजी बिना बात ही अप्रसन्न हुए।

विश्वामित्र : मैं अभी देखता हूं न। जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनैगा और क्या दानीपने का अभिमान करैगा।

[क्रोधपूर्व्वक उठ कर चला चाहते हैं कि परदा गिरता है]

॥इति प्रथम अंक॥

●

दूसरा अंक

स्थान—राजा हरिश्चन्द्र का राजभवन।

[रानी शैव्या[1] बैठी हैं और एक सहेली[2] बगल में खड़ी है]

रानी : अरी? आज मैंने ऐसे बुरे बुरे सपने देखे हैं कि जब से सो के उठी हूं कलेजा कांप रहा है। भगवान कुशल करैं।

सहेली : महाराज के पुण्य प्रताप से सब कुशल ही होगा। आप कुछ चिन्ता न करैं। भला क्या सपना देखा है, मैं भी सुनूं?

रानी : महाराज को तो मैंने सारे अंग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बाल खोले और **(आंखों में आंसू भर कर)** रोहिताश्व को देखा है कि उसे सांप काट गया है।

सहेली : राम! राम! भगवान सब कुशल करैगा। भगवान करैं रोहिताश्व जुग जुग जिए और जब तक गंगा जमुना में पानी है आप का सोहाग अचल रहे। भला आप ने इसकी शान्ति का भी कुछ उपाय किया है।

रानी : हां, गुरुजी से तो सब समाचार कहला भेजा है। देखो, वह क्या करते हैं।

सहेली : हे भगवान हमारे महाराज महारानी कुंअर सब कुशल से रहैं, मैं आंचल पसार के यह वरदान मांगती हूं।

[ब्राह्मण आता है][3]

ब्राह्मण : **(आशीर्वाद देता है)**

स्वस्त्यस्तुते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु
गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु
ऐश्वर्यमस्तु कुशलोस्तुरिपुक्षयोस्तु[4]
सन्तानवृद्धिसहिताहरिभक्तिरस्तु॥

[रानी हाथ जोड़ कर प्रणाम करती है]

1. लहंगा, साड़ी, सब जनाना गहि[illegible], बन्दी बेना इत्यादि।
2. साड़ी, सादा सिंगार।
3. धोती, उपरना, सिर पर चुंदी वा सिर पर बाल, ड़ाढ़ी हाथों में पवित्री, तिलक, खड़ाऊं।
4. आप का शुभ हो, कुशल हो और आप दीर्घायु हों। गाय, घोड़ा, हाथी और धन धान्य की वृद्धि हो। ऐश्वर्य और कौशल की वृद्धि हो और शत्रु का नाश हो। सन्तान की वृद्धि के साथ हरिभक्ति बनी रहै।

ब्राह्मण : महाराज गुरुजी ने यह अभिमन्त्रित जल भेजा है। इसे महारानी पहिले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा सा पान भी कर लें और यह रक्षाबन्धन भेजा है इसे कुमार रोहिताश्व की दाहिनी भुजा पर बांध दें। फिर इस जल से मैं मार्जन करूंगा।

रानी : **(नेत्रों में जल लगा कर और कुछ मुंह फेर कर आचमन करके)** मालती यह रक्षाबन्धन तू संभाल के अपने पास रख! जब रोहिताश्व मिले उसके दाहिने हाथ पर बांध दीजियो।

सहेली : जो आज्ञा।

[रक्षाबन्धन अपने पास रखती है]

ब्राह्मण : तो अब आप सावधान हो जायं, मैं मार्जन कर लूं।

रानी : **(सावधान होकर)** जो आज्ञा।

ब्राह्मण : **(दूर्वा से मार्जन करता है)।**

देवास्त्वामभिषिंचन्तुब्रह्माविष्णु शिवादयः
गन्धर्व्वाः किन्नराः नागाः रक्षां कुर्व्वन्तु ते सदा।
पितरोगुह्यकायक्षाः देव्योभूताश्च मातरः
सर्व्वे त्वामभिषिंचन्तु रक्षांकुर्वन्तु तेसदा।
भद्रमस्तु शिवंचास्तुमहालक्ष्मी प्रसीदतु
पतिपुत्रयुता साध्विजीवत्वं शरदांशतं॥

(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंक कर)
यत्पापंरोगमशुभंतद्दूरे प्रतिहतमस्तु।

[फिर रानी पर मार्जन करके]

यन्मंगलंशुभं सौभाग्यं धनधान्य मारोग्यं बहु।
पुत्रत्वं तत्सर्व्वमीशप्रसादात् ब्राह्मणवचनात् त्वय्यस्तु॥

[मार्जन करके फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है]

रानी : **(हाथ जोड़ कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती हैं)** महाराज गुरुजी से मेरी ओर से विनती करके दंडवत कह दीजिएगा।

ब्राह्मण : जो आज्ञा।

[आशीर्वाद देकर जाता है]

रानी : आज महाराज अब तक सभा में नहीं आए।

सहेली : अब आते होंगे पूजा में कुछ देर लगी होगी।

[नेपथ्य में वैतालिक गाते हैं]

[राग भैरव]

प्रगटहु रविकुलरवि निसि बीती प्रजा कमलगन फूले।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन भय तम उनमूले॥
नसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध बन्दी सूत चिरैयन मिलि कलरोर मचायो॥
तुव जस सीतल पौन परसि चटकीं गुलाब की कलियां।
अति सुख पाइ असीस देत सोई करि अंगुरिन चट अलियां॥
भए धरम मैं थित सब द्विजजन प्रजा काज निज लागे।
रिपु जुवती मुख कुमुद मन्द जन चक्रवाक अनुरागे॥
अरघ सरिस उपहार लिए नृप ठाढ़े तिन कहु तोखौ।
न्याय कृपा सों ऊंच नीच सम समुझि परसि कर पोखौं॥

[नेपथ्य में से बाजे की धुन सुन पड़ती है]

रानी : महाराज ठाकुरजी के मन्दिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बन्दी लोग भी गाते आते हैं।

सहेली : आप कहती हैं चले, देखिए आ पहुंचे कि चले।

[रानी घवड़ाकर आदर के हेतु उठती हैं]

[परिकर[1] सहित महाराज हरिश्चन्द्र[2] आते हैं। रानी प्रणाम करती हैं और सब लोग यथा स्थान बैठते हैं]

हरिश्चन्द्र : (रानी से प्रीति पूर्व्वक) प्रिये! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलिन क्यौं हो रहा है?

रानी : पिछली रात मैंने कुछ दुःस्वप्न ऐसे देखे हैं जिनसे चित्त व्याकुल हो रहा है।

हरिश्चन्द्र : प्रिये! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है पर तुम तो वीरकन्या, वीरपत्नी और वीरमाता हो, तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यौं?

रानी : नाथ! मोह से धीरज जाता रहता है।

हरिश्चन्द्र : तो गुरुजी से कुछ शान्ति करने को नहीं कहलाया।

रानी : महाराज! शान्ति तो गुरुजी ने कर दी है।

हरिश्चन्द्र : तब क्या चिन्ता है। शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रक्खो, सब कल्याण होगा। सदा सर्व्वदा सहज मंगल साधन करते भी जो आपत्ति

---

1. राजा के परिकर में प्रथम मन्त्री, नीमा, पैजामा, कमरबन्द, दुशाला, पगड़ी, सिरपेच सजे। दो मुसाहिब साधारण सभ्यों के वेश में। एक निशान वाला सेवक के वेश में। निशान पर सूर्य्य के नीचे 'सत्यं नास्ति भयंक्वचित्' लिखा हुआ। चार शस्त्रधारी अंगरक्षक, दो सेवक।
2. सफेद वा केसरी जामा, पैजामा, कमरबन्द, मर्दाना सब गहना, सिर पर किरीट वा पगड़ी, सिरपेंच, तुर्रा, हाथ में तलवार, दुशाला वा कोई चमकता रुमाल ओढ़े।

आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के संतोष करना चाहिए।

रानी : महाराज! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने भी ग्रन्थों में देखा है?

हरिश्चन्द्र : **(रानी की बात अनसुनी करके)** स्वप्न तो कुछ हमने भी देखा है। **(चिन्तापूर्व्वक स्मरण करके)** हां, यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्या साधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जानकर उनको बचाने गया हूं तो वह मुझी से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैंने उसे मनाया है तो उसने मुझसे मेरा सारा राज्य मांगा है। मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया

[इतना कह कर अत्यन्त व्याकुलता का नाट्य करता है]

रानी : नाथ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यौं हो गए?

हरिश्चन्द्र : मैं यह सोचता हूं कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहां पाऊंगा और बिना उस की थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूंगा?

रानी : नाथ! क्या स्वप्न के व्यवहार को भी आप सत्य मानिएगा?

हरिश्चन्द्र : प्रिये, हरिश्चन्द्र की अर्द्धांगिनी होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। हां! भला तुम ऐसी बात मुंह से निकालती हो! स्वप्न किसने देखा? मैंने न। फिर क्या? स्वप्न संसार अपने काल में असत्य है, इसका कौन प्रमाण है? और जो अब असत्य कहो, तो मरने के पीछे तो यह संसार भी असत्य है, फिर इस संसार में परलोक के हेतु लोग धर्म्माचरण क्यौं करते हैं? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष?

रानी : **(हाथ जोड़ कर)** नाथ, क्षमा कीजिए, स्त्री की बुद्धि ही कितनी।

हरिश्चन्द्र : **(चिन्ता कर के)** पर मैं अब करूं क्या! अच्छा प्रधान! नगर में डौंड़ी पिटवा दो कि राज्य को सब लोग आज से अज्ञात नाम गोत्र ब्राह्मण का समझैं, उस के अभाव में हरिश्चन्द्र उस के सेवक की भांति उसकी थाती समझ के राज कार्य्य करैगा और दो मुहर राजकाज के हेतु बनवा लो, एक पर 'अज्ञात नाम गोत्र ब्राह्मण महाराजा का सेवक हरिश्चन्द्र' और दूसरे पर 'राजाधिराज अज्ञात नाम गोत्र ब्राह्मण महाराज' खुदा रहै और आज से राजकाज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहै। देस देस के राजाओं और बड़े बड़े कार्य्याधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अज्ञात नाम गोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है, इस से आज से उस का राज्य हरिश्चन्द्र

मन्त्री की भांति संभालेगा।

[द्वारपाल आता है]

द्वारपाल : महाराजाधिराज! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है।

हरिश्चन्द्र : (घबड़ा कर) अभी आदरपूर्व्वक ले आओ।

द्वारपाल : जो आज्ञा। (जाता है)

हरिश्चन्द्र : यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात है।

[द्वारपाल के साथ विश्वामित्र[1] आते हैं]

हरिश्चन्द्र : (आदरपूर्व्वक आगे से लेकर और प्रणाम कर के) महाराज! पधारिए, यह आसन है।

विश्वामित्र : बैठे, बैठे, बैठ चुके; बोल, अभी तैंने मुझे पहिचाना कि नहीं?

हरिश्चन्द्र : (घबड़ा कर) महाराज! पूर्व्व परिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

विश्वामित्र : (क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम! तू काहे को पहिचानैगा? सच है रे सूर्य्यकुलकलंक! तू क्यौं पहिचानैगा? धिक्कार तेरे मिथ्या धर्म्माभिमान को, ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट! तैं भूल गया कल पृथ्वी किस को दान दी थी? जानता नहीं कि मैं कौन हूं?

'जातिस्वयंग्रहणदुर्ललितैकविप्रं
दृप्यद्वशिष्ठसुतकाननधूमकेतुम्।
सर्गान्तराहरणभीतजगत् कृतान्तं
चांडालयाजिनमवैषिन कौशिकं माम्॥

हरिश्चन्द्र : (पैरों पर गिर के बड़े विनय से) महाराज! भला, आप को त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानैगा?

'अन्नक्षयादिषु तथा विहितात्मवृत्तिं
राजप्रतिग्रहपराङ्मुखमानसं त्वाम्
आडीबकप्रधनकम्पितजीवलोकं
कस्तेजसां च तपसां च निधिर्निवेत्ति॥'

विश्वामित्र : (क्रोध से) सच है रे पाप पाषंड, मिथ्यादानवीर! तू क्यौं न मुझे 'राज प्रतिग्रह पराङ्मुख' कहैगा; क्यौंकि तैंने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान दे दी है ठहर, ठहर, देख इस झूठ का कैसा फल भोगता है। हा! इसे देख कर क्रोध से जैसे मेरी दाहिनी भुजा शाप देने को उठती है, वैसे ही जातिस्मरण के संस्कार से बाईं भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है। (अत्यन्त क्रोध से लम्बी सांस लेकर और बांह उठा कर) अरे ब्रह्मा!

---

1. जटा और दाढ़ी बढ़ाए, खड़ाऊं पहिने, गले में मृगछाला बांधे, धोती पर बाघ की मोटी करधनी, एक हाथ में कुश और कमंडल।

संभाल अपनी सृष्टि को, नहीं तो परम तेज पुंज दीर्घतपोवर्द्धित मेरे आज इस असह्य क्रोध से सारा संसार नाश हो जायगा, अथवा संसार के नाश ही से क्या? ब्रह्मा का तो गर्व्व उसी दिन मैंने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई, आज इस राजकुलांगार का अभिमान चूर्ण करूंगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत् में दानी प्रसिद्ध हो रहा है।

हरिश्चन्द्र : **(पैरों पर गिर के)** महाराज! क्षमा कीजिए, मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था, सारी पृथ्वी आप की, मैं आप का, भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुंह से निकालते हैं। **(ईषत् क्रोध से)** और आप बारम्बार मुझे झूठा न कहिए। सुनिए, मेरी यह प्रतिज्ञा है–

'चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत ब्यौहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य विचार॥'

विश्वामित्र : **(क्रोध और अनादरपूर्व्वक हंस कर)** ह ह ह ह! सच है, सच है रे मूढ़! क्यों नहीं, आखिर सूर्य्यवंशी है। तो दे हमारी पृथ्वी।

हरिश्चन्द्र : लीजिए, इस में विलम्ब क्या है, मैंने तो आप के आगमन के पूर्व्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है।

[पृथ्वी की ओर देख कर]

जेहि पाली इक्ष्वाकु सौं अबलौं रवि कुल राज।
ताहि देत हरिचन्द नृप विश्वामित्रहिं आज॥
बसुधे! तुम बहु सुख कियो मम पुरुषन की होय।
धरमबद्ध हरिचन्द को छमहु सु परबस जोय[1]॥

विश्वामित्र : **(आप ही आप)** अच्छा! अभी अभिमान दिखा ले। तो मेरा नाम विश्वामित्र, जो तुझ को सत्यभ्रष्ट करके न छोड़ा और लक्ष्मी से तो भ्रष्ट हो ही चुका है। **(प्रकट)** स्वस्ति। अब इस महादान की दक्षिणा कहां है?

हरिश्चन्द्र : महाराज! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

विश्वामित्र : भला दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी।

हरिश्चन्द्र : जो आज्ञा। **(मन्त्री से)** 'मन्त्री! दस हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ।'

विश्वामित्र : **(क्रोध से)** "मन्त्री! दस हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ" मन्त्री कहां से लावैगा? क्या अब खजाना तेरा है कि तैं मन्त्री पर हुकुम चलाता है? झूठा कहीं का! देना ही नहीं था तो मुंह से कहा क्यों? चल मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा।

---

1. वैवस्वतैर्नृपतिभिः किल लोक धात्रि।
त्वं देवि! वीर यशसा सह रक्षितासि॥

हरिश्चन्द्र : **(हाथ जोड़ कर विनय से)** महाराज, ठीक है। खजाना अब सब आप का है, मैं भूला, क्षमा कीजिए। क्या हुआ, खजाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है।

विश्वामित्र : एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदंड गिराऊंगा, देख केवल एक मास की अवधि है।

हरिश्चन्द्र : महाराज! मैं ब्रह्मदंड से उतना नहीं डरता जितना सत्यदंड से। इससे—

वेंचि देह दारा सुअन, होइ दास हूँ मन्द।
रखिहै निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द॥[1]

[आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है]

[जवनिका गिरती है]

॥इति दूसरा अंक॥

●

1. ददामि पालयन् सत्य ब्राह्मणाय प्रतिश्रुतम्।
हरिश्चन्द्र इवाद्यैव पुत्रदारात्म विक्रयात्॥

तीसरा अंक : अंकावतार

स्थान–वाराणसी का बाहरी प्रान्त–तालाब।

[पाप[1] आता है]

पाप : **(इधर उधर दौड़ता और हांफता हुआ)** मरे रे मरे! जले रे जले!! कहां जायं, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुण्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते। सुना है कि राजा हरिश्चन्द्र काशी गए हैं, क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हम को तुम ने दान दे दी है, इस से पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेचकर हम से उरिन नहीं हो सकते। यह बात जब हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत ही घबराए और सोच विचार कर उन्होंने कहा कि बहुत अच्छा महाराज, हम काशी में अपना शरीर बेचैंगे, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है। यह सुन कर हम भी दौड़े कि चलो हम भी काशी चलैं क्योंकि जहां हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहां हमारे प्राण बचैंगे, सो यहां और भी उत्पात हो रहा है। जहां देखो वहां स्नान, पूजा, जप, पाठ, दान, धर्म्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानो जड़ ही खोद डालैंगे। रात दिन शंख, घंटा की घनघोर ध्वनि के साथ वेद की धुनि मानो ललकार ललकार के हमारे शत्रु धर्म्म की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यौं न तपा हो, भगवती भागीरथी के जलकण मिले वायु से उस का हृदय एक साथ ही शीतल हो जाता है। इसके उपरान्त शि शि शि... ध्वनि अलग मारे डालती है। हाय, कहां जायं क्या करैं? हमारी तो संसार से मानो जड़ ही कटी जाती है, भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है, पर यहां तो मानो हमारा राज ही नहीं, कैसा भी बड़ा पापी क्यौं न हो यहां आया कि गति भई।

---

1. काजल सा रंग, लाल नेत्र, महा कुरूप, हाथ में नंगी तलवार लिये, नीला काछ कछे।

[नेपथ्य में]

सच है, ''येषांक्वापिगतिर्नास्ति तेषांवाराणसीगतिः।''

पाप : अरे! यह कौन महा भयंकर भेष, अंग में भभूत पोते; एड़ी तक जटा लटकाए, लाल लाल आंख निकाले साक्षात् काल की भांति त्रिशूल घुमाता हुआ चला आता है। प्राण! तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल में, अब इस समय भूमंडल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है।

[भागता हुआ जाता है]

[भैरव[1] आते हैं]

भैरव : सच है! येषांक्वापिगतिर्नास्ति तेषांवाराणसी गतिः। देखो इतना बड़ा पुण्यशील राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी आत्मा और स्त्री, पुत्र बेचने को यहीं आया है। अहा! धन्य है सत्य। आज जब भगवान् भूतनाथ राजा हरिश्चन्द्र का वृत्तान्त भवानी से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गए और रोमांच होने से सब शरीर के भस्मकण अलग अलग हो गए। मुझ को आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्व्वदा राजा हरिश्चन्द्र की अंगरक्षा करना। इससे चलूं मैं भी भेष बदल कर भगवान की आज्ञा पालन में प्रवृत्त होऊं।

[जाते हैं। जवनिका गिरती है]

---

1. महादेव जी का सा सिंगार, तीन नेत्र, नीला रंग एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में प्याला।

तीसरा अंक

स्थान–काशी के घाट किनारे की सड़क

[महाराज हरिश्चन्द्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं]

हरिश्चन्द्र : देखो, काशी भी पहुंच गए। अहा! धन्य है काशी। भगवति वाराणसि! तुम्हें अनेक प्रणाम हैं। अहा! काशी की कैसी अनुपम शोभा है।

'चारहु आश्रम बर्न बसैं मनि,
कंचन धाम अकास बिभासिका।
शोभा नहीं कहि जाई कछु बिधि नै,
रची मानो पुरीन की नासिका।
आपु बसैं गिरिधारन जू तट,
देवनदी बर बारि बिलासिका।
पुन्यप्रकासिका पापबिनासिका
हीयहुलासिका सोहत कासिका॥1॥
बसैं बिन्दुमाधव बिसेसरादि देव सबै
दरसन ही तें लागै जय मुख मसी है।
तीरथ अनादि पंचगंगा मनिकर्निकादि
सात आवरन मध्य पुन्य रूप धंसी है।
गिरिधरदास पास भागीरथी शोभा देत,
जाकी धार तोरे आसु कर्म रूप रसी है।
ससी सम जसी असी बरना में बसी पाप,
खसी हेतु असी ऐसी लसी बारानसी है॥2॥
रचित प्रभासी भासी अवलि मकानन की
जिनमें अकासी फबै रतन नकासी है।
फिरैं दास दासी विप्रगृही औ सन्यासी लसैं,
बर गुनरासी देवपुरी हूं न जासी है

गिरिधरदास विश्वकीरति बिलासी रमा,
हासी लौं उजासी जाकी जगत हुलासी है।
खासी परकासी पुनवांसी चन्द्रिका सी,
जाके वासी अबिनासी अघनासी ऐसी कासी है' ॥3॥

देखो! जैसा ईश्वर ने यह सुन्दर अंगूठी के नगीने सा नगर बनाया है वैसी ही नदी भी इसके लिए दी है। धन्य गंगे!

जम की सब त्रास बिनास करी, मुख तें निजनाम उचारन में।
सब पाप प्रतापहि दूर दर्‌यौ, तुम आपन आप निहारन में॥
अहो गंग अनंग के शत्रु करे, बहु, नेकु जलै मुख डारन में।
गिरिधारनजू कितने बिरचे, गिरिधारन धारन धारन में[1]॥

कुछ माहात्म्य ही नहीं, गंगाजी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है। आहा!

नव उज्जल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्री हरिपद नख चन्द्रकान्त मनि द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमंडल मंडन, भव खंडन सुर सरबस॥
शिव सिर मालति माल, भगीरथ नृपति पुन्य फल।
ऐरावत गज गिरि पति हिम नग कंठहार कल॥
सगर सुअन सठ सहस परस जल मात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन॥
कासी कहं प्रिय जानि ललकि भेट्‌यौ जग धाई।
सपनेहूं नहिं तजी रही अंकन लपटाई॥
कहूं बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुं छतरी, कहुं मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवन धाम चहुं ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत, कहूं नारी नर गावत।
बेद पढ़त कहुं द्विज कहुं जोगी ध्यान लगावत॥

1. यह चारों कवित्त ग्रन्थकर्ता के पिता श्री बाबू गोपालचन्द्र के बनाए हैं जो कविता में अपना नाम गिरिधरदास रखते थे।

कहुं सुंदरी नहात नीर कर जुगल उछारत।
जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोअत सुंदरि बदन करन अति ही छबि पावत।
बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत॥
सुंदरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमलबेलि लहलही नवल कुसमन मन मोहत॥
दीठि जहीं जहं जात रहत तितहीं ठहराई।
गंगा छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई॥

(**कुछ सोच कर**) पर हां! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जान पड़ता है।

अशनं वसनं वासो येषां चैवाविधानताः।
मगधेनसमाकाशी गंगाप्यंगारवाहिनी॥

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिए दुखी होता है। हा! कैसे कष्ट की बात है। राजपाट धनधाम सब छूटा, अब दक्षिणा कहां से देंगे। क्या करैं! हम सत्य धर्म कभी छोड़ै ही गे नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे, और जो वह शाप न भी देंगे तो क्या? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग कर सकते। क्या करैं? कुबेर को जीतकर धन लावैं? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है तो क्या किसी से मांग कर दें? पर क्षत्रिय का तो धर्म्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे। फिर ऋण काढ़ैं? पर देंगे कहां से। हा! देखो, काशी में आकर लोग संसार के बन्धन से छूटते हैं, पर हमको यहां भी हाय हाय मची है। हा! पृथ्वी तू फट क्यौं नहीं जाती कि मैं अपना कलंकित मुंह फिर किसी को न दिखाऊं। (**आतंक से**) पर यह क्या? सूर्य्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे यह कर्म्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिए बिना पृथ्वी में समा जाना सोचैं। (**कुछ सोच कर**) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती। क्या करैं? हमें तो संसार सूना देख पड़ता है। (**चिन्ता करके। एक साथ हर्ष से**) वाह, अभी तो स्त्री, पुत्र और हम तीन, तीन, मनुष्य तैयार हैं। क्या हम लोगों के बिकने से दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा भी न मिलैगी? तब फिर किस बात का इतना शोच? न जाने बुद्धि इतनी देर तक कहां सोई थी। हमने तो पहिले ही विश्वामित्र से कहा था—

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हूं मन्द।
रखिहैं निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द॥

(**नेपथ्य में**) तो क्यौं नहीं जल्दी अपने को बेचता? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे पीछे दक्षिणा के वास्ते लगे फिरैं?

हरिश्चन्द्र : अरे मुनि तो आ पहुंचे। क्या हुआ आज उन से एक दो दिन की अवधि और लेंगे।

[विश्वामित्र आते हैं]

विश्वामित्र : (**आप ही आप**) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी, इसी दुष्ट के कारण फिर बहक गई, कुछ इन्द्र के कहने ही पर नहीं, हमारा इस पर स्वतः भी क्रोध है, पर क्या करैं, इसके सत्य, धैर्य्य और विनय के आगे हमारा क्रोध कुछ काम नहीं करता। यद्यपि यह राज्यभ्रष्ट हो चुका, पर जब तक इसे सत्यभ्रष्ट न कर लूंगा तब तक मेरा सन्तोष न होगा। (**आगे देख कर**) अरे! यही दुरात्मा (**कुछ रुक कर**) वा, महात्मा हरिश्चन्द्र है? (**प्रकट**) क्यौं रे! आज महीने में कै दिन बाकी हैं? बोल कब दक्षिणा देगा?

हरिश्चन्द्र : (**घबड़ा कर**) अहा! महात्मा कौशिक! भगवन! प्रणाम करता हूं।

[दंडवत करता है]

विश्वामित्र : हुई प्रणाम! बोल तैंने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया? आज महीना पूरा हुआ, अब मैं एक क्षण भर भी न मानूंगा। दे अभी, नहीं तो (**शाप के वास्ते कमडंल से जल हाथ में लेते हैं**)

हरिश्चन्द्र : (**पैरों में गिर कर**) भगवन क्षमा कीजिए; क्षमा कीजिए। यदि आज सूर्यास्त के पहिले न दूं तो जो चाहे कीजिएगा। मैं अभी अपने को बेचकर मुद्रा ले आता हूं।

विश्वामित्र : (**आप ही आप**) वाह रे महानुभावता! (**प्रकट**) अच्छा आज सांझ तक और सही। सांझ को न देगा तो मैं शाप ही न दूंगा वरंच त्रैलोक्य में आज ही विदित कर दूंगा कि हरिश्चन्द्र सत्यभ्रष्ट हुआ।

[जाते हैं]

हरिश्चन्द्र : भला किसी तरह मुनि से प्राण बचे। अब चलैं, अपना शरीर बेच कर दक्षिणा देने का उपाय सोचैं। हा! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है। इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लेहनदार की लाल लाल आंखें नहीं देखी हैं। (**आगे चल कर**) अरे, क्या बाजार में आ गए। अच्छा, (**सिर पर तृण[1] रख कर**) अरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दुकानदार हम किसी कारण से अपने को पांच हजार मोहर पर बेचते हैं—किसी को लेना हो तो लो। (**इसी तरह कहता हुआ इधर उधर फिरता है**) देखो, कोई दिन

---

1. उस काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तो सिर पर तृण रखता था।

वह था कि इसी मनुष्य विक्रय को अनुचित जानकर हम दूसरों को दंड देते थे, पर आज वही कर्म्म हम आप करते है। दैव बली है। (**'अरे सुनो' भाई इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है। ऊपर देख कर**) क्या कहा? "क्यौं तुम ऐसा दुष्कर कर्म्म करते हो?" आर्य्य यह मत पूछो, यह सब कर्म्म की गति है। (**ऊपर देख कर**) क्या कहा? 'तुम क्या कर सकते हो; क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे?' इसका क्या पूछना है। स्वामी जो कहैगा वही करैंगे; समझते सब कुछ हैं पर इस अवसर पर समझना कुछ काम नहीं आता; और जैसे स्वामी रक्खैगा वैसे रहैंगे। जब अपने को बेच ही दिया तब इसका क्या विचार है। (**ऊपर देख कर**) क्या कहा? 'कुछ दाम कम करो।' आर्य्य हम लोग तो क्षत्रिय हैं, हम दो बात कहां से जानैं। जो कुछ ठीक था कह दिया।

[नेपथ्य में से]

आर्य्यपुत्र! ऐसे समय में हम को छोड़े जाते हो। तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रह के क्या करूंगी। स्त्री को अर्द्धांगिनी कहते हैं, इससे पहिले बायां अंग बेच लो—तब दाहिना अंग बेचो।

हरिश्चन्द्र : (**सुन कर बड़े शोक से**) हा! रानी की यह दशा इन आंखों से कैसे देखी जायगी!

[सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं]

शैव्या : कोई महात्मा कृपा कर के हम को मोल ले तो बड़ा उपकार हो।

बालक : अमको बी कोई मोल ले तो बला उपकाल ओ।

शैव्या : (**आंखों में आंसू भर कर**) पुत्र! चन्द्रकुलभूषण महाराज वीरसेन का नाती और सूर्य्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू क्यौं ऐसे कातर वचन कहता है। मैं अभी जीती हूं।

[रोती है]

बालक : (**मां का आंचल पकड़ के**) मां! तुम को कोई मोल लेगा तो अम को बी मोल लेगा। आं आं मां लोती काए को औ।

[कुछ रोना सा मुंह बना के शैव्या का आंचल पकड़ के झूलने लगता है]

शैव्या : (**आंसू पोंछ कर**) पुत्र! मेरे भाग्य से पूछ।

हरिश्चन्द्र : अहह! भाग्य! यह भी तुम्हें देखना था? हा! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई, हम उनको कुछ धीरज भी न दे आए। उनकी अब कौन गति होगी। हा! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो। अब यह देखना पड़ा। हृदय! तुम इस चक्रवर्ती की सेवा योग्य बालक

को और स्त्री को बिकता देख कर टुकड़े टुकड़े क्यों नहीं हो जाते?

[बारम्बार लम्बी सांसें लेकर आंसू बहाता है]

शैव्या : (**'कोई महात्मा' इत्यादि कहती हुई ऊपर देख कर**) क्या कहा? 'क्या करोगी?' 'परपुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़ कर और सब सेवा करूंगी। (**ऊपर देख कर**) क्या कहा?' इतने मोल पर कौन लेगा?' 'आर्य्य! कोई साधु ब्राह्मण महात्मा कृपा करके ले ही लेंगे।'

[उपाध्याय और बटुक आते हैं]

उपाध्याय : क्यों रे कौंडिन्य! सच ही दासी बिकती है?

बटुक : हां गुरुजी, क्या मैं झूठ कहूंगा। आप ही देख लीजिएगा।

उपाध्याय : तो चल, आगे आगे भीड़ हटाता चल। देख, धारा प्रवाह की भांति कैसे सब काम काजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं, भीड़ के मारे पैर धरने की जगह नहीं है। और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता।

बटुक : (**आगे आगे चलता हुआ**) हटो भाई हटो! (**कुछ आगे बढ़ कर**) गुरुजी, यह जहां भीड़ लगी है, वहीं होगी।

उपाध्याय : (**शैव्या को देख कर**) अरे, यही दासी बिकती है?

[शैव्या, अरे कोई हम को मोल ले' इत्यादि कहती और रोती है। बालक माता की भांति तोतली बोली से कहता है]

उपाध्याय : पुत्री! कहो तुम कौन कौन सेवा करोगी?

शैव्या : परपुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़ कर और जो-जो कहिएगा, सब सेवा करूंगी।

उपाध्याय : वाह! ठीक है। अच्छा लो यह सुवर्ण। हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र की अग्नि की सेवा से घर के काम काज नहीं कर सकती, सो तुम सम्हालना।

शैव्या : (**हाथ फैला कर**) महाराज, आप ने बड़ा उपकार किया।

उपाध्याय : (**शैव्या को भलीभांति देख कर आप ही आप**) आहा! यह निस्सन्देह किसी बड़े कुल की है। इसका मुख सहज लज्जा से ऊंचा नहीं होता, और दृष्टि बराबर पैर ही पर है। जो बोलती है, धीरे धीरे और बहुत सम्हाल के बोलती है। हा! इस की यह गति क्यों हुई! (**प्रकट**) पुत्री, तुम्हारे पति हैं न?

[शैव्या राजा की ओर देखती है]

हरिश्चन्द्र : (**आप ही आप दुःख से**) अब नहीं हैं। पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो।

उपाध्याय : (**राजा को देख कर आश्चर्य से**) अरे, यह विशाल नेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल, और संसार की रक्षा करने के योग्य लम्बी लम्बी भुजावाला कौन

मनुष्य है और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यौं रखा है? **(प्रकट)** महात्मा तुम हम को अपने दुःख का भागी समझो और कृपापूर्व्वक अपना सब वृत्तान्त कहो।

हरिश्चन्द्र : भगवन्! और तो विदित करने का अवसर नहीं है। इतना ही कह सकता हूं कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई।

उपाध्याय : तो हम से धन लेकर आप शीघ्र ही ऋणमुक्त हूजिये।

हरिश्चन्द्र : **(दोनों कानों पर हाथ रख कर)** राम राम! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है। आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी?

उपाध्याय : तो पांच हजार पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले।

शैव्या : **(राजा से हाथ जोड़ कर)** नाथ! हमारे आछत आप मत बिकिए, जिस में हम को अपनी आंख से यह न देखना पड़े, हमारी इतनी विनती मानिए।

[रोती है]

हरिश्चन्द्र : **(आंसू रोक कर)** अच्छा! तुम्हीं जाओ। **(आप ही आप)** हां! यह वज्र हृदय हरिश्चन्द्र ही का है कि अब भी नहीं विदीर्ण होता।

शैव्या : **(राजा के कपड़े में सोना बांधती हुई)** नाथ! अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे। **(रोती हुई उपाध्याय से)** आर्य्य! आप क्षण भर क्षमा करैं तो मैं आर्य्य पुत्र का भलीभांति दर्शन कर लूं। फिर यह मुख कहां और मैं कहां।

उपाध्याय : हां हां मैं जाता हूं कौंडिन्य यहां है तुम उस के साथ आना।

[जाता है]

शैव्या : **(रो कर)** नाथ! मेरे अपराधों को क्षमा करना।

हरिश्चन्द्र : **(अत्यन्त घबड़ा कर)** अरे अरे विधाता! तुझे यही करना था! **(आप ही आप)** हा! पहिले महारानी बनाकर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बदा था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान सूर्य्य का भी मुख मलिन हो रहा है। **(रोता हुआ प्रकट रानी से)** प्रिये! सर्व्वभाव से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करना।

शैव्या : **(रो कर)** नाथ! जो आज्ञा।

बटुक : उपाध्याय जी गए। अब चलो जल्दी करो।

हरिश्चन्द्र : **(आंखों में आंसू भर के)** देवी! **(फिर रुक कर अत्यन्त सोच से आप ही आप)** हाय! अब मैं देवी क्यौं कहता हूं अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया। **(धैर्य्य से)** देवी! उपाध्याय की आराधना भली भांति करना और इनके सब शिष्यों से भी सुहृद भाव रखना, ब्राह्मण की स्त्री की प्रीतिपूर्व्वक सेवा करना, बालक का यथासम्भव पालन करना,

और अपने धर्म्म और प्राण की रक्षा करना। विशेष हम क्या समझावैं जो जो देव दिखावै उसे धीरज से देखना।

[आंसू बहते हैं]

शैव्या : जो आज्ञा।

[राजा के पैरों पर गिर के रोती है]

हरिश्चन्द्र : (धैर्य्यपूर्व्वक) प्रिये! देर मत करो बटुक घबड़ा रहे हैं।

[शैव्या उठ कर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे धीरे चलती है]

बालक : (राजा से) पिताजी, मां कआं जाती ऐं?

हरिश्चन्द्र : (धैर्य्य से आंसू रोक कर) जहां हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बालक : (बटुक से) अले मां को मत ले जा।

[मां का आंचल पकड़ के खींचता है]

बटुक : (बालक को ढकेल कर) चल चल देर होती है।

[बालक ढकेलने से गिरकर रोता हुआ उठ कर अत्यन्त क्रोध और करुणा से माता पिता की ओर देखता है]

हरिश्चन्द्र : ब्राह्मण देवता! बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना चाहिए (**बालक को उठा कर धूर पोंछ के मुंह चूमता हुआ**) पुत्र मुझ चांडाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए। जाओ माता के संग, मुझ भाग्यहीन के साथ रहकर क्या करोगे? (**रानी से**) प्रिये, धैर्य्य धरो। अपना कुल और जाति स्मरण करो। अब जाओ, देर होती है।

[रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं]

हरिश्चन्द्र : धन्य हरिश्चन्द्र! तुम्हारे सिवाय और ऐसा कठोर हृदय किस का होगा। संसार में धन और जन छोड़ कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं पर तुम ने उसका भी त्याग किया।

[विश्वामित्र आते हैं और हरिश्चन्द्र पैर पर गिर के प्रणाम करता है]

विश्वामित्र : ला, दे दक्षिणा! अब सांझ होने में कुछ देर नहीं है।

हरिश्चन्द्र : (हाथ जोड़ कर) महाराज, आधी लीजिए आधी अभी देता हूं।

[सोना देता है]

विश्वामित्र : हम आधी दक्षिणा लेके क्या करैं, दे चाहे जहां से सब दक्षिणा।

[नेपथ्य में]

धिक् तपो धिक् व्रतमिदं धिक् ज्ञानं धिक् हुबहुश्रुतम्।
नीतवानऽसियब्रह्मन् हरिश्चन्द्रमिमां दशां॥

विश्वामित्र. : (**बड़े क्रोध से**) आ : हम को धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है?

(ऊपर देख कर) अरे विश्वेदेवा (क्रोध से जल हाथ में लेकर) अरे क्षत्रिय के पक्षपातियो! तुम अभी विमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहां भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ मारे जाओ[1]। **[जल छोड़ते हैं]**

[नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है]

[सुन कर और ऊपर देख कर आनन्द से]

ह ह ह ह! अच्छा हुआ! यह देखो, किरीट कुंडल बिना मेरे क्रोध से विमान से छूट कर विश्वेदेवा उल्टे हो होकर नीचे गिरते हैं।

हरिश्चन्द्र : **(ऊपर देख कर भय से)** वाह रे तप का प्रभाव! **(आप ही आप)** तब तो हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया है यही बड़ा अनुग्रह है। **(प्रकट)** भगवन् स्त्री बेच कर यह आधा धन पाया है। सो लें, और आधा हम अपने को बेच कर अभी देते हैं।

[नेपथ्य में]

अरे अब तो नहीं सही जाती।

विश्वामित्र : हम आधा न लेंगे चाहे जहां से अभी सब दे।

[हरिश्चन्द्र 'अरे सुनो भाई सेठ साहूकार' इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है। चांडाल[2] के भेष में धर्म्म और सत्य आते हैं]

धर्म्म : (आप ही आप)

हम प्रत्तच्छ हरिरूप जगत हमरे बल चालत।
जल थल नभ थिर मो प्रभाव मरजाद न टालत॥
हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी।
इक हमही संग जात तजत सब पितु सुत नारी॥
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जियो।
सोई सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो॥

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है।

[आगे बढ़ कर प्रत्यक्ष]

अरे! हरजनवां! मोहर का सन्दूख ले आवा है न?

सत्य : क चौधरी! मोहर ले के का करबो?

धर्म्म : तोहसे का काम पूछै से?

---

1. यही पांचों विश्वेदेवा विश्वामित्र के शाप से द्वापर में द्रौपदी के पांच पुत्र हुए थे जिन्हें अश्वत्थामा ने वालकपन ही में मार डाला।
2. काछ कछे, काला रंग, लाल नेत्र, सिर पर छोटे छोटे घुंघराले बाल और शरीर नंगा, वातों से मतवालापन झलकता हुआ।

[दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं]

हरिश्चन्द्र : (**'अरे सुनो भाई सेठ साहूकार' इत्यादि दो तीन बेर पुकार के इधर उधर घूम कर**) हाय! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु भगवान सूर्य्य भी आज हम से रुष्ट होकर शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं।

[घबराहट दिखाता है]

धर्म्म : (**आप ही आप**) हाय! हाय! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है। तो अब चलैं आगे। (**आगे बढ़ कर**) अरे! अरे! हम तुम को मोल लेंगे। लेव, यह पचास सै मौहर लेव।

हरिश्चन्द्र : (**आनन्द से आगे बढ़ कर**) वाह कृपा निधान! बड़े अवसर पर आप आए। लाइए। (**उस को पहिचान कर**) आप मोल लोगे?

धर्म्म : हां हम मोल लेंगे।

[सोना देना चाहता है]

हरिश्चन्द्र : आप कौन हैं?

धर्म्म : **हम चौधरी डोम सरदार।**

अमल हमारा दोनों पार॥

सब मसान पर हमरा राज।

कफ़न मांगने का है काज॥

फूलमती देबी[1] के दास।

पूजैं सती मसान निवास॥

धनतेरस औ रात दिवाली।

बलि चढ़ाय के पूजैं काली॥

सो हम तुमको लेंगे मोल।

देंगे मुहर गांठ से खोल॥

[मत्त की भांति चेष्टा करता है]

हरिश्चन्द्र : (**बड़े दुःख से**) अहह! बड़ा दारुण विषय उपस्थित हुआ है। (**विश्वामित्र से**) भगवन्! मैं पैर पड़ता हूं, मैं जन्म भर आप का दास होकर रहूंगा, मुझे चांडाल होने से बचाइए।

विश्वामित्र : छिः मूर्ख! भला हम दास लेके क्या करैंगे। 'स्वयंदासास्तपस्विनः'

हरिश्चन्द्र : (**हाथ जोड़ कर**) जो आज्ञा कीजिएगा हम सब करैंगे।

विश्वामित्र : सब करैगा न? (**ऊपर हाथ उठा कर**) धर्म्म के साक्षी देवता लोग सुनैं, यह कहता है कि जो आप कहैंगे मैं सब करूंगा।

हरिश्चन्द्र : हां हां जो आप कहिएगा सब करूंगा।

---

1. प्राचीन काल में चांडालों की कुल देवी चंडकात्यायनी थी परन्तु इस काल में फूलमती इन लोगों की कुलदेवी है।

विश्वामित्र : तो इसी गांहक के हाथ अपने को बेच कर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे।

हरिश्चन्द्र : जो आज्ञा! (आप ही आप) अब कौन सोच है। (प्रकट धर्म्म से) तो हम एक नियम पर बिकैंगे।

धर्म्म : वह कौन?

हरिश्चन्द्र : भीख असन कम्मल बसन रखिहैं दूर निवास।
जो प्रभु आज्ञा होइहै करिहैं सब स्वै दास॥

धर्म्म : ठीक है लेव सोना

[दूर से राजा के आंचल में मोहर देता है]

हरिश्चन्द्र : (लेकर हर्ष से आप ही आप)
ऋण छूट्यो पूर्यो बचन द्विजहु न दीनो शाप।
सत्य पालि चंडालहू होई आजु मोहि दाप॥
(प्रकट विश्वामित्र से) भगवन्! लीजिए यह मोहर।

विश्वामित्र : (मुंह चिढ़ा कर) सचमुच देता है?

हरिश्चन्द्र : हां हां यह लीजिए।

[मोहर देते हैं]

विश्वामित्र : (लेकर) स्वस्ति। (आप ही आप) बस अब चलो बहुत परीक्षा हो चुकी।

[जाना चाहते हैं]

हरिश्चन्द्र : (हाथ जोड़ कर) भगवन्! दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न?

विश्वामित्र : हां, क्षमा हुआ। अब हम जाते हैं।

हरिश्चन्द्र : भगवन्, प्रणाम करता हूं।

[विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं]

हरिश्चन्द्र : अब चौधरीजी (लज्जा से रुक कर) स्वामी की जो आज्ञा हो वह करैं।

धर्म्म : (मत्त की भांति नाचता हुआ)
जाओ अभी दक्खिनी मसान।
लेवो वहां कफ्फन का दान॥
जो कर तुमको नहीं चुकावै।
सो किरिया करने नहिं पावै॥
चलो घाट पर करो निवास।
भए आज से हमरे दास॥

हरिश्चन्द्र : जो आज्ञा।

[जवनिका गिरती है]

●

चौथा अंक

स्थान–दक्षिण श्मशान

[नदी, पीपल का बड़ा पेड़, चिता, मुरदे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी, इत्यादि]

[कम्बल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिये हुए राजा हरिश्चन्द्र फिरते दिखाई पड़ते हैं]

हरिश्चन्द्र : **(लम्बी सांस लेकर)** हाय! अब जन्म भर यही दुःख भोगना पड़ैगा।

जाति दास चंडाल की, घर घनघोर मसान।
कफन खसोटी को करम, सब ही एक समान॥

न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शान्त हुआ कि नहीं? बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है। दक्षिणा का ऋण चुका तो यह कर्म्म करना पड़ा। हम क्या सोचें? अपनी अनाथ प्रजा को या दीन नातेदारों को या अशरण नौकरों को या रोती हुई दासियों को या सूनी अयोध्या को या दासी बनी महारानी को या उस अनजान बालक को, या अपने इस चंडालपने को? हा! बटुक के धक्के से गिरकर रोहिताश्व ने क्रोधभरी और रानी ने जाते समय करुणाभरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलता। **(घबड़ा कर)** हा देवी! सूर्य्यकुल की बहू और चन्द्रकुल की बेटी होकर तुम बेची गई और दासी बनीं। हा! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गूंथ सकती थीं उन से बरतन कैसे मांजोगी! **(मोह प्राप्त होना चाहता है पर सम्हल कर)** अथवा क्या हुआ? यह तो कोई न कहैगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा–

बेचि देह दारा सुअन होई दासहू मन्द।
राख्यौ निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द॥

[आकाश से पुष्पवृष्टि होती है]

अरे! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी? कोई पुन्यात्मा का मुरदा आया होगा। तो हम सावधान हो जायं। **(लट्ठ कन्धे पर रख कर फिरता**

हुआ) खबरदार, खबरदार् बिना हम से कहे और बिना हमें आधा कफन दिए कोई संस्कार न करै। **(यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर उधर देखता फिरता है) (नेपथ्य में कोलाहल सुन कर)** हाय, हाय! कैसा भयंकर श्मशान है! दूर से मंडल बांध बांध कर चोंच बाए, डंना फैलाए, कंगालों की तरह मुरदों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं, और कैसा मांस नोंच नोंच कर आपस में लड़ते और चिल्लाते हैं। इधर अत्यन्त कर्णकटु अमंगल के नगाड़े की भांति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं। उधर चिराइन फैलाती हुई चट चट करतीं चिताएं कैसी जल रही हैं, जिनमें कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू वा चरबी बहती है, आग का रंग मांस के सम्बन्ध से नीला पीला हो रहा है। ज्वाला घूम घूम कर निकलती है। आग कभी एक साथ धधक उठती है, कभी मन्द हो जाती है। धुआं चारों ओर छा रहा है। **(आगे देख कर आदर से)** अहा! यह बीभत्स व्यापार भीं बड़ाई के योग्य है। शव! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो। अतएव कहा है—

मरनो भलो विदेश को जहां न अपुनो कोय।
माटी खायं जनावरा महा महोच्छव होय॥

अहा! देखो—

सिर पर बैठ्यौ काग आंख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनन्द उर धारत॥
गिद्ध जांय कहं खोदि खोदि कै मांस उचारत।
स्वान आंगुरिन काटि काटि कै खान बिचारत॥
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद बढ्यौ सब को हियो।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहं दियो॥

अहा! शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है—

सोई मुख सोई उदर सोई कर पद दोय।
भयो आजु कछु और ही परसत जेहिं नहिं कोय॥
हाड़ मांस लाल रकत वसा तुचा सब सोय।
छिन्न भिन्न दुरगन्धमय मरे मनुष के होय॥
कादर जेहि लखि कै डरत पंडित पावत लाज।
अहो! व्यर्थ संसार को विषय बासना साज॥

अहो! मरना भी क्या वस्तु है।

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यौ।
सोई अंग जेहि प्रिय करि जान्यौ॥

सोई भुज जे पिय गर डारें।
सोई भुज जिन रन विक्रम पारे॥
सोई पद जिहि सेवक बन्दत।
सोई छवि जेहि देखि अनन्दत॥
सोई रसना जहं अमृत बानी।
जेहि सुनि कै हिय नारि जुड़ानी॥
सोई हृदय जहं भाव अनेका।
सोई सिर जहं निज बच टेका॥
सोई छविमय अंग सुहाए।
आजु जीव विनु धरनि सुहाए॥
कहां गई वह सुन्दर सोभा।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा॥
प्रानहूं ते बढ़ि जा कहं चाहत।
ता कहं आजु सबै मिलि दाहत॥
फूल बोझ हू जिन न सम्हारे।
तिन पैं बोझ काठ बहु डारे॥
सिर पीड़ा जिन की नहिं हेरी।
करत कपाल क्रिया तिन केरी॥
छिनहूं जे न भए कहुं न्यारे।
तेहू बन्धुन छोड़ि सिधारे॥
जो दृग कोर महीप निहारत।
आजु काक तेहि भोज बिचारत॥
भुज बल जे नहिं भुवन समाए।
ते लखियत मुख कफन छिपाए॥
नरपति प्रजा भेद विनु देखे।
गने काल सब एकहि लेखे॥
सुभग कुरूप अमृत बिष साने।
आजु सबै इक भाव बिकाने॥
पुरु दधीच कोऊ अब नाहीं।
रहे नाम ही ग्रन्थन मांही॥

अहा! देखो वही सिर जिस पर मन्त्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रखा जाता था, जिसमें इतना अभिमान था कि इन्द्र को भी तुच्छ गिनता था, और जिसमें बड़े बड़े राज जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे पैर

से छूने में भी घिन करते हैं। **(आगे देख कर)** अरे यह श्मशान देवी है। अहा कात्यायनी को भी कैसा बीभत्स उपचार प्यारा है। यह देखो डोम लोगों ने सूखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़ पकड़ कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैंसों के गले के घंटे पीपल की डार में लटक रहे हैं जिन में लोलक की जगह नली की हड्डी लगी है। घाट के पानी से चारों ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खम्भे में लोहू के थापे लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उसके खाने को कुत्ते और सियार लड़-लड़ कर कोलाहल मचा रहे हैं। **(हाथ जोड़ कर)** 'भगवति! चंडि! प्रेते! प्रेत विमाने! लसत्प्रेते! प्रेतास्थि रौद्ररूपे! प्रेताशिनि! भैरवि! नमस्ते'।

(नेपथ्य में) राजन, हम केवल चंडालों के प्रणाम के योग्य हैं। तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। मांगो क्या वर मांगते हो।

हरिश्चन्द्र : **(सुन कर आश्चर्य से)** भगवति! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिए। **(नेपथ्य में)** साधु, महाराज हरिश्चन्द्र साधु!

हरिश्चन्द्र : **(ऊपर देख कर)** अहा! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य्य उदय होते ही पद्मिनीवल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म्म का प्रवर्त्तक था, जो दो पहर तक अपना प्रचंड प्रताप क्षण-क्षण बढ़ाता गया, जो गगनांगन का दीपक और कालसर्प का शिखामणि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भांति अपना सब तेज गंवाकर, देखो, समुद्र में गिरा चाहता है।

अथवा

सांझ सोई पट लाल कसे कटि
सूरज खप्पर हाथ लस्यो है।
पच्छिन के बहु सब्दन के मिस
जीव उचाटन मन्त्र कस्यो है।
मद्य भरी नर खोपरी सो ससि को
नव बिम्बहू धाइ गस्यो है।
दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै
काल कपालिक नाचि रह्यौ है।
सूरज धूम विना की चिता सोई
अन्त में लै जल माहिं, बहाई।
बोलैं घने तरू बैठि विहंगम
रोअत सो मनु लोग लोगाई।

धूम अंधार, कपाल निसाकर,
हाड़ नछत्र, लहू सी ललाई॥[1]
आनन्द हेतु निसाचर के यह
काल मसान सो सांझ बनाई।

अहा! यह चारों ओर से पक्षी लोग कैसा शब्द करते हुए अपने अपने घोसलों की ओर चले आते हैं। वर्षा से नदी का भयंकर प्रवाह, सांझ होने से श्मशान के पीपल पर कौओं का एक संग अमंगल शब्द से कांव कांव करना, और रात के आगमन से एक सन्नाटे का समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है। अन्धकार बढ़ता ही जाता है। वर्षा के कारण इन श्मशानवासी मंडूकों का टर टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है—

रुरुआ चहूं दिसि ररत डरत सुनि कै नर नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी॥
अन्धकार बस गिरत काग अरु चील करत रव।
गिद्ध गरुड़ हड़गिल्ल भजत लखि विकट भयद दव॥
रोअत सियार गरजत नदी स्वान भूकि डरपावई।
संग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई॥

इस समय ये चिता भी कैसी भयंकर मालूम पड़ती हैं। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आंच से हाथ पैर जलकर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिलकुल कच्चा है, किसी को वैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे ही छोड़ दिया गया है, किसी का मुंह जल जाने से दांत निकला हुआ भयंकर हो रहा है, और कोई दहकती आग में ऐसा जल गया कि कहीं पता भी नहीं है। वाह रे शरीर! तेरी क्या क्या गति होती है!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे, उसको कीड़ों वा मछलियों से नुचवाना और सड़ा कर दुर्गन्धमय करना बहुत ही बुरा है। न कुछ शेष रहैगा न दुर्गति होगी। चलो आगे चलैं। **(खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर घूमता है)**[2] **(कौतुक से देख कर)**

हरिश्चन्द्र : पिशाचों का क्रीड़ा कुतूहल भी देखने योग्य है। अहा! यह कैसे काले काले झाड़ू से सिर के बाल खड़े किए लम्बे लम्बे हाथ पैर, विकराल

---

1. प्राचीन काल में राज के अपराधी लोग श्मशान ही पर गला काट कर मारे जाते थे। इसी से यहां श्मशान के वर्णन में लोहू का वर्णन है।
2. सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के कुछ संस्करणों में यहां अतिरिक्त पाठ मिलता है। बढ़े हुए पाठ को परिशिष्ट में दिया गया है।

दांत, लम्बी जीभ निकाले इधर उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानो भयानक रस की सेना मूर्तिमान होकर यहां स्वच्छन्द विहार कर रही है। हाय हाय! इनका खेल और सहज व्यवहार भी कैसा भयंकर है। कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लोहू भर भर के पीता है, कोई सिर का गेंद बनाकर खेलता है, कोई अंतड़ी निकाल कर गले में डाले है और कोई चन्दन की भांति चरबी और लोहू शरीर में पोत रहा है, एक दूसरे से मांस छीन कर ले भागता है; एक जलता मांस मारे तृष्णा के मुंह में रख लेता है, पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू थू करके थूक देता है, और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है। हा! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ समेत नोच लाई है जिसे देखने को चारों ओर से सब भूत एकत्र हो रहे हैं और सभों को इसका बड़ा कौतुक हो गया है। हंसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और ज़लती लकड़ी और मुरदों के अंगों से लड़ते हैं. और उनको ले लेकर नाचते हैं। यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो श्मशान के कुत्तों को पकड़-पकड़ कर खा जाते हैं। अहा! भगवान भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योग साधना की है। **(खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है) (ऊपर देख कर)** आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अंधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता। चांडाल कुल की भांति श्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है। **(स्मरण करके)** हा! इस दुःख की दशा में भी हमसे प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता। सच है—''टूट ठाट घर टपकत खटियौ टूट। पिय कै बांह उसिसवां सुख कै लूट''।

बिधना ने इस दुःख पर भी वियोग दिया। हा! यह वर्षा और यह दुःख! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहैगा पर जिसने सपने में भी दुःख नहीं देखा, वह महारानी किस दशा में होगी। हा देवि! धीरज धरो, धीरज धरो। तुमने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिसके साथ सदा दुःख ही दुःख है। **(ऊपर देख कर)** अरे! पानी बरसने लगा! **(घोघी भलीभांति ओढ़ कर)** हमको तो यह वर्षा और श्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो।

चपला की चमक चहुंधा सों लगाई चिता
चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है।

हेती बग माल स्याम बादर सुभूमि कारी
वीर बधू लहू बूंद भुव लपटायो है॥
हरीचंद नीर धार आंसू सी परत जहां
दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है।
दाहन वियोग दुखियान को मरे हू यह
देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥
(कुछ देर तक चुप रह कर) कौन है? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिर कर)
इन्द्र काल हू सरिस जो आयसु लांघे कोय।
यह प्रचंड भुज दंड मम प्रतिभट ताको होय॥
अरे कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़ कर) कौन है?
(नेपथ्य में) हम हैं।

हरिश्चन्द्र : अरे हमारी बात का उत्तर कौन देता है? चलैं जहां से आवाज आई है वहां चल कर देखैं। (आगे बढ़ कर नेपथ्य की ओर देख कर) अरे, यह कौन है?

चिता भस्म सब अंग लगाए।
अस्थि अभूषन विविध बनाए॥
हाथ कपाल मसान जगावत।
को यह चल्यो रुद्र सम आवत॥

[कापालिक[1] के वेष में धर्म्म आता है]

धर्म्म : अरे हम हैं।

वृत्ति अयाचित आत्मरति करि जग के सुख त्याग।
फिरहिं मसान मसान हम धारि अनन्द विराग॥

[आगे बढ़ कर महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आप ही आप]

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत।
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत॥
हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी।
हम ही इक संग जात तजत जब पितु सुत नारी॥
सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य परिच्छिन नृपति को आजु भेष हम यह कियो॥

(कुछ सोच कर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दुःख परम्परा अत्यन्त शोचनीय

1. गेरुए वस्त्र का काछा काछे, गेरुआ कफनी पहिने, सिर के बाल खोले, सेंदुर का अर्द्धचन्द्र दिए, नंगी तलवार गले में लटकती हुई, एक हाथ में खप्पड़ बलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में भभूत पोते, नशे से आंखें लाल, लाल, फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहिने।

और इनके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं! अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है–

सहत विविध दुःख मरि मिटत भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छांड़हीं जे जग सांचे लोग॥
बरु सूरज पच्छिम उगै बिन्ध्य तरै जल मांहि।
सत्यबीर जन पै कबहुं निज बच टारत नाहिं॥

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुःख को दुःख, सुख को सुख गिनते ही नहीं। चलैं उनके पास चलैं। **(आगे बढ़ कर और देख कर)** अरे यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं? **(प्रकट)** महाराज! कल्याण हो।

हरिश्चन्द्र : **(प्रणाम कर के)** आइए योगिराज।

धर्म्म : महाराज हम अर्थी हैं।

[हरिश्चन्द्र लज्जा और विकलता का नाट्य करता है]

धर्म्म : महाराज! आप लज्जा मत कीजिए। हम लोग योगबल से सब कुछ जानते हैं। आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने को बहुत हैं। चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवा कर भिक्षुकों का कल्याण करता है।

हरिश्चन्द्र : आज्ञा। हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिए।

धर्म्म : **अंजन, गुटिका, पादुका, धातु भेद, बैताल।**
वज्र, रसायन, जोगिनी, मोहि सिद्ध यहि काल॥[1]

हरिश्चन्द्र : तो मुझे जो आज्ञा हो वह करूं।

धर्म्म : आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गए हैं पर विघ्न इस में बाधक होते हैं, सो आप विघ्नों का निवारण कर दीजिए।

हरिश्चन्द्र : आप जानते ही हैं कि मैं पराया दास हूं, इस से जिस में मेरा धर्म्म न जाय वह मैं करने को तैयार हूं।

धर्म्म : **(आप ही आप)** राजन्, जिस दिन तुम्हारा धर्म्म जायगा उस दिन पृथ्वी किसके बल से ठहरैगी? **(प्रत्यक्ष)** महाराज, इस में धर्म्म न जायगा क्यौंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लंघन करते ही नहीं। सिद्धि का आकर इसी श्मशान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूं। आप विघ्नों का निषेध कर दीजिए।

[जाता है]

---

1. अंजन सिद्धि से जमीन में गड़े खजाने दीख पड़ते हैं। गुटिका मुंह में रख कर वा पादुका पहिन कर चाहे जहां अलक्ष्य चला जाय। धातुभेद से औषध मात्र सिद्ध होती हैं। बैताल बस में होकर यथेच्छ काम देता है। वज्र सिद्ध होने से जहां गिराओ वहां गिरता है। रसायन सिद्धि से चांदी सोना बनता है। जोगिनी सिद्धि होने से भूत भविष्य का वृत्तान्त कह देती है और सब इच्छा पूर्ण करती है। यही आठों सिद्धियां हैं।

हरिश्चन्द्र : (ललकार कर) हटो रे हटो, विघ्नो, चारों ओर से तुम्हारा प्रचार हम ने रोक दिया।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज जो आज्ञा। आप से सत्य वीर की आज्ञा कौन लांघ सकता है–

खुल्यो द्वार कल्यान को सिद्ध जोग तप आज।

निधि सिधि विद्या सब करहिं अपुने मन को काज॥

हरिश्चन्द्र : (हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया।

[विमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्याएँ[1] आती हैं]

महाविद्या : महाराज हरिश्चन्द्र! बधाई है। हमीं लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था तब देवताओं ने माया से आप को स्वप्न में हमारा रोना सुना कर हमारा प्राण बचाया।

हरिश्चन्द्र : (आप ही आप) अरे यही सृष्टि को उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली महाविद्याएं हैं जिन्हें विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके। (प्रकट हाथ जोड़ कर) त्रिलोक विजयिनी महाविद्याओं को नमस्कार है।

महाविद्या : महाराज, हम लोग तो आप के बस में हैं। हमारा सद्भाव ग्रहण कीजिए।

हरिश्चन्द्र : देवियो! यदि हम पर प्रसन्न हों तो विश्वामित्र मुनि की वशवर्तिनी हो। उन्होंने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है।

महाविद्या : (परस्पर आश्चर्य से देख कर) धन्य महाराज धन्य! जो आज्ञा।

[जाती हैं]

[धर्म्म एक बैताल के सिर पर पिटारा रखवाए हुए आता है]

धर्म्म : महाराज का कल्याण हो। आप की कृपा से महानिधान सिद्ध हुआ। आप को बधाई है। अब लीजिए इस रसेन्द्र को।

याही के परभाव सों अमरदेव सम होई।

जोगी जन बिहरहिं सदा मेरु शिखर भय खोई॥

हरिश्चन्द्र : (प्रणाम कर के) महाराज दासधर्म्म के यह विरुद्ध है। इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।

धर्म्म : (आश्चर्य से आप ही आप) वाह रे महानुभावता! (प्रकट) तो इस से स्वर्ण बनाकर आप अपना दास्य छुड़ा लें।

हरिश्चन्द्र : यह ठीक है पर मैंने तो विनती की न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिलै सब स्वामी का है।

---

1. ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेश में पर स्त्री का शृंगार।

क्यौंकि मैं तो देह के साथ ही अपना स्वत्व मात्र बेंच चुका; इससे आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिए।

धर्म्म : **(आश्चर्य से आप ही आप)** धन्य हरिश्चन्द्र! धन्य तुम्हारा धैर्य्य! धन्य तुम्हारा विवेक और धन्य तुम्हारी महानुभावता! या–

चलै मेरु बरु प्रलय जल पवन झकोरन पाय।

पै बीरन के मन कबहुं चलहिं नहिं ललचाय॥

तो हमें भी इसमें कौन हठ है। **(प्रत्यक्ष)** बैताल! जाओ जो महाराज की आज्ञा है वह करो।

बैताल : जो रावलजी की आज्ञा।

[जाता है]

धर्म्म : महाराज, ब्राह्म मुहूर्त निकट आया। अब हम को भी आज्ञा हो।

हरिश्चन्द्र : जोगिराज! हम को भूल न जाइएगा, कभी कभी स्मरण कीजिएगा।

धर्म्म : महाराज! बड़े बड़े देवता आप का स्मरण करते हैं और करैंगे मैं क्या हूं।

[जाता है]

हरिश्चन्द्र : क्या रात बीत गई? आज तो कोई भी मुरदा नया नहीं आया। रात के साथ ही श्मशान भी शान्त हो चला; भगवान नित्य ही ऐसा करैं। **(नेपथ्य में घंटा, नूपुरादि का शब्द सुन कर)** अरे यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ?

[विमान पर अष्टमहासिद्ध नवनिधि और बारहो प्रयोग आदि देवता आते हैं[1]]

हरिश्चन्द्र : **(आश्चर्य से)** अरे यह कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर श्मशान पर एकत्र हो रहे हैं।

देवता : महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो। आप के अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छुट कर स्वतन्त्र हो गए। अब हम आप के वश में हैं, जो आज्ञा हो करैं। हम लोग अष्ट महासिद्धि नव निधि और बारह प्रयोग सब आप के हाथ में हैं।

हरिश्चन्द्र : **(प्रणाम कर के)** यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हों तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ।

---

1. साधारण देवी-देवताओं के वेश में। अष्ट महासिद्धि यथा–अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व। नव निधि यथा–पद्म, महापद्मा, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द नील और वर्चस्व। बारह प्रयोग यथा–मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन। यह छह बुरे और स्तम्भन, वशीकरण, आकर्षण, बन्दीमोक्षन, कामपूरण और वाक्प्रसारण–ये छह अच्छे। ये भी चित्रपट में दिखलाये जायंगे।

देवता : (आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करै। हमीं लोगों की सिद्धि को बड़े बड़े योगी मुनि पच मरते हैं पर तुमने तृण की भांति हमारा त्याग करके जगत् कल्याण किया।

हरिश्चन्द्र : आप लोग मेरे सिर आंखों पर हैं; पर मैं क्या करूं क्योंकि मैं पराधीन हूं। एक बात और भी निवेदन है। वह यह कि छः अच्छे प्रयोग की तो हमारे समय में सद्यः सिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलम्ब से हो।

देवता : महाराज ! जो आज्ञा। हम लोग जाते हैं। आज आप के सत्य ने शिवजी के कीलन[1] को भी शिथिल कर दिया। महाराज का कल्याण हो।

[जाते हैं]

[नेपथ्य में इस भांति मानो राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनते]

एक स्वर से : तो अब अप्सरा को भेजें?

दूसरे स्वर से : छिः मूर्ख! जिसको अष्ट सिद्धि, नव निधियों ने नहीं डिगाया उस को अप्सरा क्या डिगावैगी?

एक स्वर से : तो अब अन्तिम उपाय किया जाय?

दूसरे स्वर से : हां तक्षक को आज्ञा दें। अब और कोई उपाय नहीं है।

हरिश्चन्द्र : अहा! अरुण का उदय हुआ चाहता है। पूर्व्व दिशा ने अपना मुंह लाल किया। **(सांस ले कर)**

"वा चकई को भयो चित चीतो चितोति चहूं दिसि चाय सों नांची।
ह्वै गई छीन कलाधर की कला, जामिनी जोति मनो जम जांची॥
बोलत बैरी बिहंगम 'देव' संयोगिन की भई संपति कांची।
लोहू पियो जो बियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिन प्राची॥"

हा! प्रिये! इन बरसातों की रातों को तुम रो रो के बिताती होगी! हा! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए, तुम बिना बिके ही क्यौं दास बन गए?

जेहि सहसन परिचारिका राखत हाथहि हाथ।
सो तुम लोटत धूर में दास बालकन साथ॥
जाकी आयसु जग नृपति सुनतहि धारत सीस।
तेहि द्विज बटु आज्ञा करत अहह कठिन अति ईस॥
बिनु तन बेचे बिनु दिए बिनु जग ज्ञान विवेक।
दैव सर्प दंशित भए, भोगत कष्ट अनेक॥

---

1. शिवजी ने साधन मात्र को कील दिया है जिससे जल्दी न सिद्ध हो यौं सो राजा हरिश्चन्द्र ने विघ्नों को जो रोक दिया, इस वह कीलन भी शिवजी की इच्छापूर्वक उस समय दूर हो गया था, क्यौंकि यह भी तो एक सबसे बड़ा विघ्न था।

(**घब्ड़ाकर**) नारायण! नारायण! मेरे मुख से क्या निकल गया? देवता उसकी रक्षा करैं। (**बाईं आंख का फड़कना दिखा कर**) इसी समय में यह महा अपशकुन क्यौं हुआ? (**दाहिनी भुजा का फड़कना दिखा कर**) अरे और साथ ही यह मंगल शकुन भी! न जाने क्या होनहार है, वा अब क्या होनहार है। जो होना था सो हो चुका। अब इस से बढ़ कर और कौन दशा होगी? अब केवल मरण मात्र बाकी है। इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीनहीन होने से पहिले ही शरीर छूटै, क्यौंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है, पर वश क्या है?

[नेपथ्य में]

पुत्र हरिश्चन्द्र! सावधान। यही अन्तिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरषा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एकटक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुःख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इनका सिर नीचा हो। अपने धैर्य्य का स्मरण करो।

हरिश्चन्द्र : (**घबड़ा कर ऊपर देख कर**) अरे! यह कौन है? कुलगुरु भगवान सूर्य्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं। (**ऊपर देख कर**) पिता मैं सावधान हूं। सब दुखों को फूल की माला की भांति ग्रहण करूंगा।

[नेपथ्य में रोने की आवाज सुन पड़ती है]

हरिश्चन्द्र : अरे अब सबेरा होने के समय मुरदा आया! अथवा चांडाल कुल का सदा कल्याण हो, हमें इससे क्या?

['खबरदार' इत्यादि कहता हुआ फिरता है]

[नेपथ्य में]

हाय! कैसी भई! हाय बेटा! हमें रोती छोड़ के कहां चले गए। हाय हाय रे!

हरिश्चन्द्र : अहह! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इस को पुत्र का है। हाय हाय! हम को भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और बीभत्स कर्म्म सौंपा है। इस से भी वस्त्र मांगना पड़ैगा।

[रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिए आती है]

शैव्या : (**रोती हुई**) हाय बेटा! जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले! हाय! हाय रे! हमारी बिपत और बुढ़ौती की ओर भी तुम ने न देखा! हाय! हाय रे! अब हमारी कौन गति होगी!

[रोती है]

हरिश्चन्द्र : हाय! हाय! इस के पति ने भी इस को छोड़ दिया है। हा! इस तपस्विनी को निष्करुण विधि ने बड़ा ही दुःख दिया है।

शैव्या : (रोती हुई) हाय बेटा! अरे आज मुझे किसने लूट लिया! हाय मेरी बोलती चिड़िया कहां उड़ गई! हाय, अब मैं किस का मुंह देख के जीऊंगी! हाय, मेरी अन्धी की लकड़ी कौन छीन ले गया! हाय, मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किसने तोड़ डाला! अरे बेटा, तैं तो मरे पर भी सुन्दर लगता है! हाय रे! अरे बोलता क्यौं नहीं! बेटा जल्दी बोल। देख मां कब की पुकार रही है! बच्चा! तू तो एक ही दफे पुकारने में दौड़कर गले से लपट जाता था, आज क्यौं नहीं बोलता? **[शव को बार बार गले लगाती, देखती और चूमती है]**

हरिश्चन्द्र : हाय, हाय! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता।

शैव्या : **(पागल की भांति)** अरे यह क्या हो रहा है! बेटा कहां गए हो? आओ जल्दी! अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगता है, यहां मुझ को कौन ले आया है रे? बेटा जल्दी आओ। अरे क्या कहते हो, मैं गुरु को फूल लेने गया था वहां काले सांप ने काट लिया! हाय हाय रे! अरे कहां काट लिया? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावै बच्चे को। अरे, वह सांप कहां गया! हम को क्यौं नहीं काटता? काट रे काट, क्या इस सुकुमार बच्चे ही पर बल दिखाना था? हमें काट। हाय हम को नहीं काटता। अरे हिंयां तो कोई सांप वांप नहीं है। मेरे लाल झूठ बोलना कब से सीखे? हाय हाय, मैं इतना पुकारती हूं और तुम खेलना नहीं छोड़ते? बेटा गुरुजी पुकार रहे हैं। उनके होम की बेला निकली जाती है। देखो, बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं। दो जल्दी उनको दूब और बेलपत्र। हाय, हम ने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते! **(जोर से)** बेटा। सांझ भई, सब विद्यार्थी लोग घर फिर आए, तुम अब तक क्यौं नहीं आए? **(आगे शव देख कर)** हाय हाय रे! अरे मेरे लाल को सांप ने सचमुच डंस लिया! हाय लाल! हाय रे मेरी आंखों के उजियाले को कौन ले गया! हाय! मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहां उड़ गया! बेटा! अभी तो बोल रहे थे अभी क्या हो गया! हाय मेरा बसा घर आज किसने उजाड़ दिया! हाय मेरी कोख में किस ने आग लगा दी! हाय, मेरा कलेजा किसने निकाल लिया! **(चिल्ला चिल्ला कर रोती है)** हाय, लाल कहां गए! अरे! अब मैं किस का मुंह देख के जीऊंगी रे! हाय, अब मां कह के मुझ को कौन पुकारैगा! अरे आज किस बैरी की छाती ठंडी भई रे! अरे, तेरे सुकुमार अंगों पर भी काल को तनिक दया न आई! अरे बेटा! आंख खोलो! हाय! मैं सब बिपता तुम्हारा ही मुंह देखकर सहती थी, सो अब कैसे ज़ीती रहूंगी! अरे लाल एक बेर तो बोलो।

[रोती है]

हरिश्चन्द्र : न जाने क्यौं इसके रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है।

शैव्या : (रोती हुई) हाय नाथ! अरे अपने गोद के खेलाए बच्चे की यह दशा क्यौं नहीं देखते? हाय! अरे तुम ने तो इस को हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना; सो हमने इस की यह दशा कर दी। हाय! अरे ऐसे समय में भी आकर नहीं सहाय होते! भला एक बार लड़के का मुंह तो देख जाओ! अरे मैं किस के भरोसे अब जीऊंगी।

हरिश्चन्द्र : हाय हाय! इसकी बातों से तो प्राण मुंह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है। यहां से हट चलैं।

[कुछ दूर हट कर उसकी ओर देखता खड़ा हो जाता है]

शैव्या : (रोती हुई) हाय! यह बिपत का समुद्र कहां से उमड़ पड़ा! अरे छलिया मुझे छलकर कहां भाग गया! **(देख कर)** अरे आयूष की रेखा तो इतनी लम्बी है, फिर अभी से यह वज्र कहां से टूट पड़ा। अरे ऐसा सुन्दर मुंह, बड़ी बड़ी आंख, लम्बी लम्बी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रंग! हाय, मरने के तुझ में कौन से लच्छन थे जो भगवान ने तुझे मार डाला! हाय लाल! अरे बड़े बड़े जोतसी गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीएगा, सो सब झूठ निकला! हाय! पोथी पत्रा, पूजा पाठ, दान, जप, तप होम, कुछ भी काम न आया! हाय तुम्हारे बाप का कठिन पुण्य भी तुम्हारा सहाय न भया और तुम चल बसे! हाय!

हरिश्चन्द्र : अरे! इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है। **(शव को भलीभांति देख कर)** अरे! इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं। हाय! न जाने किस बड़े कुल का दीपक आज इसने बुझाया है, और न जाने किस नगर को आज इसने अनाथ किया है। हाय! रोहिताश्व भी इतना बड़ा भया होगा **(बड़े सोच से)** हाय हाय! मेरे मुंह से क्या अमंगल निकल गया। नारायण **(सोचता है)**।

शैव्या : भगवान विश्वामित्र! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे भए। हाय!

हरिश्चन्द्र : **(घबड़ा कर)** हाय हाय, यह क्या? **(भलीभांति देख कर रोता हुआ)** हाय! अब तक मैं सन्देह ही में पड़ा हूं? अरे मेरी आंखें कहां गई थीं जिनने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना और कान कहां गए थे जिनने अब तक महारानी की बोली न सुनी! हा पुत्र! हा लाल! हा सूर्य्यवंश के अंकुर! हा हरिश्चन्द्र की विपत्ति के एक मात्र अवलम्ब! हाय! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया मां को छोड़ कर कहां गए? अरे! तुम्हारे कोमल अंगों को क्या हो गया? तुमने क्या

खेला, क्या खाया? क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे! पुत्र स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझ से कहते! मैं अपने बाहुबल से तुम को इसी शरीर से स्वर्ग पहुंच देता। अथवा अब इस अभिमान से क्या? भगवान इसी अभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र! **(रोता है)**

आह! मुझ से बढ़ कर और कौन मन्दभाग्य होगा! राज्य गया, धन, जन, कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ। भला अब मैं रानी को क्या मुंह दिखाऊं। निस्सन्देह मुझ से अधिक अभागा और कौन होगा? न जाने हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं। जो कुछ हमने आज तक किया, वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुःख नं देखना पड़ता। हमारा धर्म्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निस्सन्देह मैं महा अभागा और बड़ा पापी हूं। **(रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है)** क्या प्रलयकाल आ गया? नहीं। यह बड़ा भारी असगुन हुआ है। इस का फल कुछ अच्छा नहीं, वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा। हा! न जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा है **(रोता है)** हा, सूर्य्यकुल आलवालप्रवाल। हा, हरिश्चन्द्र हृदयानन्दन! हा शैव्यावलम्ब! हा वत्स रोहिताश्व! हा मातृ पितृ विपत्ति सहचर! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़कर कहां गए! आज हम सचमुच चांडाल हुए। लोग कहैंगे किं इसने न जाने कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा। हाय! हम संसार को क्या मुंह दिखावैंगे। **(रोता है)** वा संसार में इस बात के प्रकट होने के पहले ही हम भी प्राण त्याग करैं। हा निर्लज्ज प्राण! तुम अब भी क्यौं नहीं निकलते। हा वज्र हृदय! इतने पर भी तू क्यौं नही फटता? अरे नेत्रो! अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो। या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है? समय बीता जाता है। इस के पूर्व्व कि किसी से सामना हो प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है। **(पेड़ के पास जाकर फांसी देने योग्य डाल खोज कर उसमें दुपट्टा बांधता है)** धर्म्म! मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया, परन्तु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना! **(दुपट्टे की फांसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर)** गोविन्द! गोविन्द! यह मैंने क्या अनर्थ अधर्म्म विचारा। भला मुझ दास को अपनी शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राण त्याग करना चाहा! भगवान

सूर्य्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण, नारायण! इस इच्छाकृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा? हे सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! क्षमा करना। दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। अब तो मैं चांडाल कुल का दास हूं, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र। चलूं अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊं, वा देखूं, अब दुःखिनी शैव्या क्या करती है।

[शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है]

शैव्या : **(पहली तरह बहुत रोकर)** हाय! अब मैं क्या करूं। अब मैं किसका मुंह देख कर संसार में जीऊंगी। हाय! मैं आज से निपूती भई। पुत्रवती स्त्रियां अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी। हा, नित्य सबेरे उठ कर अब मैं किसकी चिन्ता करूंगी। खाने के समय मेरी गोद में बैठ कर और मुझ से मांग मांग कर अब कौन खायगा! मैं परोसी थाली सूनी देख कर कैसे प्राण रक्खूंगी। **(रोती है)** हाय! खेलते खेलते आकर मेरे गले से कौन लपट जायगा, और मां मां कह कर तनिक तनिक बातों पर कौन हठ करैगा। हाय! मैं अब किसको अपने आंचल से मुंह की धूल पोंछ कर गले लगाऊंगी और किसके अभिमान से बिपत में भी फूली फूली फिरूंगी। **(रोती है)** या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूंगी। **(छाती पीट कर)** हाय, प्राण तुम भी क्यों नहीं निकलते। हाय! मैं ऐसी स्वार्थी हूं कि आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती। नहीं, नहीं, अब मैं न जीऊंगी। या तो इस पेड़ में फांसी लगा कर मर जाऊंगी या गंगा में कूद पड़ूंगी।

[उन्मत्त की भांति उठ कर दौड़ना चाहती है]

हरिश्चन्द्र : **(आड़ में से)**

तनहिं बेंचि दासी कहवाई।
मरत स्वामि आयसु बिन पाई॥
करु न अधर्म्म सोचु जिय माहीं।
"पराधीन सपने सुख नाहीं॥"

शैव्या : **(चौकन्नी हो कर)** अहा! यह किसने इस कठिन समय में धर्म्म का उपदेश किया। सच है मैं अब इस देह की कौन हूं जो मर सकूं। हाय दैव! तुझ से यह भी न देखा गया कि मैं मर कर भी सुख पाऊं। **(कुछ धीरज धर के)** तो चलूं छाती पर वज्र धरके अब लोकरीति करूं। **(रोती और लकड़ी चुन कर चिता बनाती हुई)** हाय! जिन हाथों से ठोंक ठोंक कर रोज सुलाती थी, उन्हीं हाथों से आज चिता पर

कैसे रक्खूंगी, जिसके मुंह में छाला पड़ने के भय से कभी मैंने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे–

[बहुत ही रोती है]

हरिश्चन्द्र : धन्य देवी, आखिर तो चन्द्र सूर्य्यकुल की स्त्री हो, तुम न धीरज करोगी तो और कौन करैगा।

[शैव्या चिता बना कर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती है और रोती है]

हरिश्चन्द्र : तो अब चले उससे आधा कफन मांगे (**आगे बढ़ कर और बल पूर्व्वक आंसुओं को रोक कर शैव्या से**) महाभागे! श्मशानपति की आज्ञा है कि आधा कफन दिए बिना कोई मुरदा फूंकने न पावै सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो।

[कफन मांगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्पवृष्टि होती है]

[नेपथ्य में]

अहो धैर्यमहो सत्यमहो दानमहो बलं।
त्वया राजन हरिश्चन्द्र सर्व लोकोत्तरं कृतं॥

[दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं]

शैव्या : हाय! इस कुसमय में आर्य्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं, नहीं तो आर्य्यपुत्र से धर्म्मी की यह गति हो! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखंड है।

हरिश्चन्द्र : (**दोनों कानों पर हाथ रख कर**) नारायण नारायण! महाभागे, ऐसा मत कहो। शास्त्र ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित होगा। अपना धर्म्म बिचारो। लाओ मृत [का आधा] कम्बल हमें दो और अपना काम आरम्भ करो।

[हाथ फैलाता है]

शैव्या : (**महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिह्न देख कर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर**) हा आर्य्यपुत्र! इतने दिन तक कहां छिपे थे? देखो अपने गोद के खेलाए दुलारे पुत्र की दशा। तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भांति मसान में पड़ा है।

[रोती है]

हरिश्चन्द्र : प्रिये! धीरज धरो, यह रोने का समय नहीं है। देखो सबेरा हुआ चाहता है। ऐसा न हो कि कोई आ जाय और हम लोगों को जान ले और एक लज्जा मात्र बच गई है, वह भी जाय। चलो कलेजे

पर सिल रख कर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कम्बल हम को दो।

शैव्या : (रोती हुई) नाथ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आंचल फाड़ कर इसे लपेट लाई हूं। उसमें से भी जो आधा दे दूंगी तो यह खुला ही रह जायगा। हाय! चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता!

[बहुत रोती है]

हरिश्चन्द्र : (बलपूर्व्वक आंसुओं को रोक कर और बहुत धीरज धर कर) प्यारी! रो मत। ऐसे समय में तो बहुत धीरज और धरम रखना काम है। मैं जिस का दास हूं उस की आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिये क्रिया मत करने दो। इस से मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझ कर तुम से इसका आधा कफन न लूं तो बड़ा अधर्म्म होगा। जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म्म न छोड़ा उस का धर्म्म आधा गज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा फाड़ दो। देखो सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान सूर्य्य अपने वंश की यह दुर्दशा देख कर चित्त में उदास हों।

[हाथ फैलाता है]

शैव्या : (रोती हुई) नाथ जो आज्ञा।

[रोहिताश्व का मृत कम्बल फाड़ना चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छूटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है। नेपथ्य में बाजे की और बस धन्य और जय जय की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं, और भगवान नारायण प्रकट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं।]

भगवान : बस महाराज! धर्म्म और सत्य सबकी परमावधि हो गई। देखो, तुम्हारे पुण्य भय से पृथ्वी बार बार कांपती है। अब त्रैलोक्य की रक्षा करो।

[नेत्रों से आंसू बहते हैं]

हरिश्चन्द्र : (साष्टांग दंडवत् करके रोता हुआ गद्गद स्वर से) भगवन! मेरे वास्ते आप ने परिश्रम किया! कहां यह श्मशान भूमि, कहां यह मर्त्यलोक, कहां मेरा मनुष्य शरीर, और कहां पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्दघन साक्षात् आप!

[प्रेम के आंसुओं से और गद्गद कंठ होने से कुछ कहा नहीं जाता]

भगवान : (शैव्या से) पुत्री! अब शोच मत कर। धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है (रोहिताश्व की ओर देख कर) वत्स रोहिताश्व! उठो। देखो तुम्हारे माता पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं।

[रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान को प्रणाम कर के माता पिता का मुंह देखने लगता है, आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है। हरिश्चन्द्र और शैव्या आश्चर्य, आनन्द, करुणा और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते। आंखों से आंसू बहते हैं और एकटक भगवान के मुखारविन्द की ओर देखते हैं। श्री महादेव, पार्व्वती, भैरव, धर्म्म, सत्य, इन्द्र, और विश्वामित्र आते हैं][1]

सब : धन्य महाराज हरिश्चन्द्र धन्य! जो आप ने किया सो किसी ने न किया, न करैगा।

[राजा हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं]

विश्वामित्र : महाराज! यह केवल चन्द्र, सूर्य्य तक आप की कीर्ति स्थिर रहने के हेतु मैंने छल किया था। सो क्षमा कीजिए और अपना राज्य लीजिए।

[हरिश्चन्द्र भगवान और धर्म्म का मुंह देखते हैं]

धर्म्म : महाराज! राज्य आप का है, इसका मैं साक्षी हूं आप निस्सन्देह लीजिए।

सत्य. : ठीक है जिसने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का पृथ्वी पर राज्य है।

श्रीमहादेव : पुत्र हरिश्चन्द्र! भगवान नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक पर्यन्त तुमने पाया, तथापि मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारी कीर्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे, और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्ती हो।

पार्वती : पुत्री शैव्या! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग की स्त्रियां गावैं। तुम्हारी पुत्रवधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करैं।

[हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं]

भैरव : और जो तुम्हारी कीर्ति कहै सुनै और उस का अनुसरण करै उस की भैरवी यातना न हो।

इन्द्र. : **(राजा को आलिंगन करके और हाथ जोड़ के)** महाराज मुझे क्षमा कीजिए। यह सब मेरी दुष्टता थी। परन्तु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ। स्वर्ग कौन कहै आप ने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया। देखिए आप की रक्षा के हेतु श्रीशिवजी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे, नारदजी बटु बने थे, साक्षात् धर्म्म

---

1. श्री महादेव, पार्वती और भैरव का ध्यान सबको विदित है। इन्द्र और विश्वामित्र का लिख चुके हैं। धर्म्म चतुर्भुज, श्याम रंग, पीताम्बर, दंड पत्र और कमल हाथ में। सत्य शुक्ल वर्ण, श्वेत वस्त्राभरण, नारायण के चारों शस्त्र हाथ में।

ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया।

हरिश्चन्द्र : **(गद्गद स्वर से)** अपने दासों का यश बढ़ानेवाला और कौन है।

भैरव : महाराज! और भी जो इच्छा हो, मांगो।

हरिश्चन्द्र : **(प्रणाम कर के गद्गद स्वर से)** प्रभु! आप के दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आप की आज्ञानुसार यह वर मांगता हूं कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ बैकुंठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।

भगवान : एवमस्तु! तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग जीव मात्र सब परमधाम जायंगे, और कलियुग में धर्म्म के सब चरण टूट जायंगे तब भी वह तुम्हारी इच्छानुसार सत्य मात्र एक पद से स्थित रहैगा। इतना ही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ, कुछ और भी मांगो। मैं तुम्हें क्या क्या दूं क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका। तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुम को और कुछ वर दूं। तुम्हें वर देने में मुझे सन्तोष नहीं होता।

हरिश्चन्द्र : **(हाथ जोड़ कर)** भगवान, मुझे अब कौन इच्छा है? मैं और क्या वर मांगूं? तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो—

खलगनन सों सज्जन दुखी मति होई, हरिपद रति रहै।
उपधर्म्म छूटैं सत्व निज भारत गहै, कर दुःख वहै॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सब जग सुख लहै।
तजि ग्रामकविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै॥

[पुष्पवृष्टि और बाजे की ध्वनि के साथ जवनिका गिरती है]

॥इति श्री सत्यहरिश्चन्द्र नाटक॥

['काशीपत्रिका' में फरवरी 1876 से अगस्त 1876 तक प्रकाशित। 1876 ई. में न्यू मेडिकल हाल प्रेस बनारस से पुस्तिकाकार प्रकाशित]

●

परिशिष्ट

सत्यहरिश्चन्द्र नाटक के कुछ संस्करणों में निम्नलिखित अंश भी मिलता है। ऐसा लगता है कि परवर्ती संस्करणों में यह अंश बढ़ाया गया है।

[पिशाच और डाकिनी गण परस्पर आमोद करते और गाते बजाते आते हैं]

पिशाच हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम,
और डाकिनी : हम सेवैं मसान, शिव को भजैं, बोलैं बम बम बम।
पिशाच : हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ेंगे।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ेंगे।
डाकिनी : हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावैंगी।
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावैंगी॥
सब : हम नाचैं मिल कर थेई थेई थेई थेई कूदें धम् धम् धम्।
हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमा छम॥
पिशाच : हम काट काट कर सिर को गेंदा उछालेंगे।
हम खींच खींच कर चर्बी पंशाखा बालैंगे॥
डाकिनी : हम मांग के लाल लाल लोहू का सिंदूर लगावैंगी।
हम नस के तागे से चमड़े का लहंगा बनावैंगी॥
सब : हम धज से सज के बज के चलैंगे चमकैंगे चम चम चम।
पिशाच : लोहू का मुंह से फर्र फर्र फुहारा छोड़ैंगे।
माला गले पहिरने को आंतड़ी को जोड़ैंगे।
डाकिनी : हम लाद के औंधे मुरदे चौकी बनावैंगी।
कफन बिछा के लड़कों को उस पर सुलावैंगी॥
सब : हम सुख से गावैंगे ढोल बजावैंगे ढम ढम ढम ढम ढम।

[वैसे ही कूदते हुए एक ओर चले जाते हैं।]

भारत जननी

सन 1877 ई.

भारत जननी

[सूत्रधार आता है]

[भैरव ताल इकताला]

सूत्रधार : जगतपिता जग जीवन जागो, मंगल मुख दरसाओ।
तुव सोए सबही मनु सोए तिन कहं जागि जगाओ॥
अब बिनु जागे काज सरत नहिं आलस दूरि बहाओ।
हे भारत भुवनाथ भूमि निज बूड़त आनि बचाओ॥

भारत भूमि और भारत सन्तान की दुर्दशा दिखाना ही इस भारत जननी की इति कर्त्तव्यता है और आज जो यह आर्य्य वंश का समाज यह खेल देखने को प्रस्तुत है उस में से एक मनुष्य भी यदि इस भारत भूमि के सुधारने में एक दिन भी यत्न करै तो हमारा परिश्रम सफल है।

[जाता है]

स्थान–बड़ा भारी खंड़हर

[एक टूटे देवालय की सहन में एक मैली साड़ी पहिने बाल खोले भारत जननी निद्रित सी बैठी है, भारत सन्तान इधर उधर सो रहे हैं। भारत सरस्वती आती है, सफेद चन्द्रजोत छोड़ी जाय]

[गाती हुई]

भारत सरस्वती: [ठुमरी]

क्यौं माता मुख मलिन होय रहि जिय मैं कहा उदासी।
क्यौं घर छोड़ि त्यागि आभूषन बैठी ह्वै बनबासी॥
कहां गई वह मुख की सोभा कित वह तेज गंवायो।
कित वह श्री बल बुधि उछाह सब कछु नहिं आज लखायो॥
कहां गयो वह राजभवन कित धवल धाम बिनसाए।
कहं वह ओज प्रताप नसानो, वैभव कितहिं दुराए॥
सदा प्रसन्न तेज जुत मुख तुव बाल अरक छबि छाजै।
सो दिन ससि सम पीत बरन ह्वै आजु तेज बिन राजै॥

धूरि भरी तुव अलक देखि कै मेरो जिय अकुलाई।
छत्र चंवर नित ढुरत जौन मुख तहं मनु छुटत हवाई॥
कित सब वेद पुरान शास्त्र उपवेद अंग सह भागे।
दरसन दुरै कितै जिन के बल तुव प्रताप जग जागे॥
आजु न कोऊ संग अकेली दीन होइ बिलखाई।
बैठी क्यौं इत जननि कहौ क्यौं बुधि गुन ज्ञान नसाई॥

[भारत माता के पास जा कर कई बेर जगा कर]

[परज़ कलिंगड़ा]

क्यौं बोलत नहिं मुख माय बचन,
जिय व्याकुल बिन तुव अमृत वयन।
क्यौं रूसि रही अपराध बिना,
नहिं खोलत क्यौं तुम जुगल नयन।
बिनती न सुनत हित जिय न गुनत,
भई मौन कियो जागत ही सयन।
मुख खोलौ बोलौ बलि बलि गई,
दिन ही में काहे करत रयन॥
बिछुरत अब फिर कठिन मिलन
लै जात यवन मोहि करि कै जयन॥

[अन्त का तुक गाते और रोत रोते भारत सरस्वती जाती है]

[भारत दुर्गा आती है, लाल चन्द्रजोत छूटै]

[राग वसन्त]

भारत दुर्गा : भारत जननी जिय क्यौं उदास।
बैठी इकली कोउ नाहिं पास।
किन देखहु यह रितुपति प्रकास।
फूलीं सरसों बन करि उजास॥
खेतन मैं पकि रहे लखहु धान।
पियरान लगे भरि स्वाद पान।
रितु बदलि चली देखहु सुजान।
अबहूं तौ चेतौ धारि ज्ञान॥
भयो सुखद सिसिर को माय अन्त
लखि सबहिन मिलि गायो वसन्त॥
तब क्यौं ने बांधि कंकन समंत।
साजत केसरिया भूमि कंत॥
(भारत जननी)

[होली]

भारत में मची है होरी॥
इक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी।
अपनी अपनी जय सब चाहत होड़ परी दुहुं ओरी॥
दुन्द सखि बहुत बढ़ो री॥1॥
धूर, उड़त सोइ अबिर उड़ावत सबको नयन भरो री।
दीन दसा अंसुवन पिचकारिन सब खिलार भिंजयो री॥
भींजि रहे भूमि लटो री॥2॥
भइ पतझार तत्व कहुं नाहीं सोइ वसन्त प्रगटो री।
पीरे मुख भई प्रजा दीन ह्वै सोइ फूली सरसों री॥
सिसिर को अन्त भयो री॥3॥
बौराने सब लोग न सूझत आम सोई बौर्‌यौ री।
कुहू कहत कोकिल ताही तें महा अंधार छयौ री॥
रूप नहिं काहु लख्यौ री॥4॥
हार्‌यौ भाग अभाग जीत लखि विजय निसान हयो री।
तव उछाह श्रीधन बुधिबल सब फगुआ माहिं लयो री॥
सेस कछु रहि न गयो री॥5॥
गारी बकत कुफार जीति दल तासु न सोच लयो री।
मूरख कारो काफिर आधो सिच्छित सबहि भयो री॥
उत्तर काहू न दयो री॥6॥
उठौ उठौ भैया क्यौं हारौ अपुन रूप सुमिरो री।
राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सुरत करो री॥
दीनता दूर धरो री॥7॥
कहां गए क्षत्री किन उन के पुरषारथहिं हरो री।
चूड़ी पहिरि स्वांग बनि आए धिक धिक सबन कर्‌यो री॥
भेस यह क्यौं पकरो री॥8॥
धिक वह मात पिता जिन तुम सों कायर पुत्र जन्यो री।
धिक वह घरी जनम भयो जामैं यह कलंक प्रगटो री॥
जनमतहि क्यौं न मरो री॥9॥[1]
खान पियन अरु लिखन पढ़न सों काम न कछू चलो री।
आलस छोड़ि एक मत ह्वै कै सांचौ वृद्धि करो री।
समय नहिं नेकु बचो री॥10॥

1. 6 से 9 तक के पद भारत जीवन प्रेस में छपी प्रति तथा मधुमुकुल में नहीं है।

उठौ उठौ सब कमरन बांधौ शस्त्रन सान धरो री।
विजय निसान बजाइ बावरे आगेइ पांव धरो री॥
छबीलिन रंग रंगो री॥11॥
आलस मैं कछु काम न चलिहै सब कछु तो विनसो री।
कित गयो धन बल राज पाट सब[1] कोरो नाम बचो री॥
तऊ नहिं सुरत करो री॥12॥
कोकिल एहि बिधि बहु बकि हार्‌यौ काहू नाहिं सुनो री।
मेटो सकल कुमेटी थोथी पोथी पढ़त मरो री॥
काज नहिं तनिक सरो री॥13॥
चालिस दिन इमि खेलत बीते खेल नहीं निपटो री।
भयो पंक अति रंग को तामै गज को जूथ फंसो री॥
न कोउ बिधि निकसि सको री॥14॥
कंकन बांधौ कर में सबेरे चूरी ड़ारहु तोरी।
एक मतो करि दृढ़ ह्वै सबेर आगेहि चरन धरों री॥
मजा बहु गहिरी होरी॥15॥
अबलन सो जनि डरहु धाइ दृढ़ करिकै करन गहो री।
निपट निलज करिके झकझोरहु अरुन रंग में बोरी॥
छबीलिन रंग रंगो री॥16[2]॥
खेलत खेलत पूनम आई भारी खेल मचो री।
चलत कुमकुमा रंग पिचकारी अरु गुलाल की झोरी॥
बजत डफ राग जमो री॥17[3]॥
होरी सब ठांवन लै राखी पूजत लै लै रोरी।
घर के काठ डारि सब दीने गावत गीतन गोरी॥
झूम को झूमि रहो री॥18॥
तेज बुद्धि बल धन अरु साहस उद्यम सूरपनो री।
होरी में सब स्वाहा कीनी पूजन होत भलो री॥
करत फेरी तब को री॥19[4]॥
फेर धुरहरी भई दूसरे दिन जब अगिन बुझो री।
सब कछु जरि गयो होरी में तब धूरहि धूर बचो री॥
नाम जमघंट परो री॥20॥

1. पाठा.--कल विवेक अब।
2. 15-16 पद केवल भारत जीवन प्रेस की प्रति में है।
3. भा. जी. प्रति में नहीं है।
4. 19 दोनों में नहीं है।

फूक्यौ सब कछु भारत नै कछु हाथ न हाय रहो री।
तब रोअन मिस चैती गाई भली भई यह होरी॥
भलो त्योहार भयो री॥21॥

[रोती हुई भारत जननी की ठोढ़ी पर हाथ रख कर]

[राग चैती]

अब हम जात हो परदेसवां कठिन फिर होइहैं मिलनवां हो रामा।
अरे मुखहू न कोई बौले कोई न आदर देय मोरे रामा॥
अरे सपनेहु न मोर पियरवा रे भुज भर मोहि लेय।
अरे अबहूं न् सोचत लोगवा मति सब गई बौराय हो रामा॥
हमरे विन सव जरि जरि नरिहैं करि करि कै हाय हो रामा।
हम रूसि चली परदेसवां फिर नहिं आवन होय हो रामा॥
अरे विन आदर तनिकौ पाए जात बिदेश हम रोय हो रामा॥1॥

[रोते रोते हाथ की तलवार को दो टुकड़े तोड़ कर भारत दुर्गा जाती है]

[भारत लक्ष्मी आती है। चन्द्रजोत छूटै]

[राग सोरठ]

भारत लक्ष्मी : मलिन मुख भारत माता तेरो।
बारि झरत दिन रैन नैन सों लखि दुःख होत घनेरो।
तुव मुख ससि देखत मन जलनिधि बढ़त रह्यौ चहुं फेरो।
सोइ मुख आजु बिलोकत दुःख सों फट्यौ जात हिय मेरो॥

[मल्हार]

लखौ किन भारत वासिन की गति।
मदिरा मत्त भए से सोअत ह्वै अचेत तजि सब मति॥
घन गरजै जल बरसै इन पर बिपति परै किन आई।
ये बजमारे तनिक न चौंकत ऐसी जड़ता छाई॥
भयो घोर अंधियार चहूं दिसि ता महं बदन छिपाए।
निरलज परे खोइ आपुनपौ जागत हूं न जगाए॥
कहा करैं इत रहि कै अब जिय तासों यहै बिचारा।
छोड़ि मूढ़ इन कहं अचेत हम जात जलधि के पारा॥

[अन्त का तुक गाते गाते और रोते रोते भारत लक्ष्मी का प्रस्थान]

भारत माता : (आंखैं खोल कर) हाय क्या हुआ? क्या लक्ष्मी अन्तर्ध्यान हो गई? हां! मैं ऐसी पापिनी हूं कि नेत्रों के सामने आने पर भी उसे आंख भर न देखा, भली भांति उसे पहचान भी न सकी। (चिन्ता से) नहीं

नहीं अन्तर्ध्यान नहीं हुई, अभी तो वह हम को बहुत कुछ कह रही थी, बहुत उरहना देती थी और बहुत प्रबोध करती थी, फिर क्यों कुछ कहते कहते और रोते रोते दूर चली गई? क्या कहा! **(सोच के)** "जाऊं जलधि के पारा"। हाय! **(रोने लगी)** फिर हमारी और हमारे सन्तति की लक्ष्मी बिना क्या गति होगी? **(सोच के)** तो क्या इन लड़कों को जगा दें? क्या सब वृत्तान्त इन से कह दें? नहीं, नहीं जगाने का काम नहीं सब चिरकाल से गाढ़ निद्रा में सो रहे हैं। इन्हें सोने ही दें। **(सोच कर)** नहीं, नहीं, भला यह कुछ सोते थोड़े ही हैं, इन्हें तो अज्ञानान्धकार में पड़ने के कारण दिग्भ्रम हो रहा है और इसी हेतु नेत्र निमीलित कर इस दशा में पड़े हैं। हाय! मेरे बेटे अन्न जल न मिलने के कारण पिपासाकुलित सर्प की भांति बराबर दीर्घ श्वास ले रहे हैं। हाय, मैं कैसी पापिनी हूं, क्रूरकर्म्मा नृशंसहृदया हूं कि अपने सन्तति की ऐसी दशा देख कर भी जीती हूं। हा विधाता! मेरे प्राण शतधा होकर अभी क्यौं नहीं विदीर्ण हो जाते! माता का हृदय तो ऐसा कठोर कदापि स्वप्न में भी नहीं होता। जान पड़ता है कि अभी कुछ और भी शेष है जिस के हेतु ईश्वर मेरे प्राण का शीघ्र ही अन्त नहीं कर देता **(आंसू पोंछ कर एक का हाथ पकड़ के)** बेटा उठो, इस प्रकार सोने से कुछ काम न चलैगा। यह पूर्व्वकाल का समय नहीं, तुम्हारा वह दिन गया, अब शीघ्र उठो और इस रोग के निवृत्त करने को सब मिल कर ऐक्यावलम्बन कर स्वस्थचित्त हो कोई उपाय सोचो, नहीं तो रोग बढ़ जाने पर फिर कुछ न बन पड़ैगा। **(एक को उठाती है तो दूसरा सोता है और दूसरे को उठाती है तो पहिला सो जाता है, इसी भांति सब को भारतमाता ने उठाया किन्तु सब के सब फिर पूर्व्ववत् सो गए)** हाय! यह क्या? ये किस दशा में पड़े हैं? वत्स! तुम लोगों की क्या गति हो रही है, इतने काल से मैं सोचती हूं किन्तु कुछ ध्यान में नहीं आता, कितना प्रबोधन किया परन्तु सब निष्फल हुआ। **(कुछ सोच के)** हां अब मैंने समझा। अभी इन के चेतने का समय नहीं आया, अभी जो कुछ प्रयत्न किया जायगा सब निष्फल होगा। देखो, एक को उठाओ तो एक सोता है और इस को उठाओ तो वह सोता है। तो फिर क्या हताश होकर इन को ऐसे ही रहने दें? पर इस से तो सम्बोधन नहीं होता, अच्छा तो एक बार और उद्योग करैं।

पृथ्वीराज जैचन्द कलह करि जवन बुलायो।
तिमिरलंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो॥

अलादीन औरंगजेब मिलि धरम नसायो।
विषय बासना दुसह मुहम्मद शह फैलायो॥
तव लौं सोए वत्स तुम, जागे नहिं कोऊ जतन।
अव तौ रानी विक्टोरिया, जागहु सुत भय छांड़ि मन॥
जहां बिसेसर सोमनाथ माधव के मन्दिर।
तहं महजिद बन गई होत अब अल्ला अकबर॥
जहं झूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे वर।
तहं अब रोवत सिवा चहूं दिशि लखियत खंडहर॥
जहं धन विद्या बरसत रही सदा अबै वाही ठहर।
बरसत सब ही विधि बेबसी अब तो चेतौ बीर वर॥

पहिला : (आंख मल कर) मां क्यौं बुलाती हो?

दूसरा : बड़ी गाढ़ी नींद में थे, क्यौं वृथा जगाया मां!

तीसरा : हम को सोने दो मां, बड़ी नींद आती है। क्यौं नाहक दिक करती हो?

भारतमाता : वत्स! कब तक इस प्रकार से तुम सब निद्रित रहोगे, अब सोने का समय नहीं, एक बेर आंखे खोल भली भांति पृथ्वी की दशा को तो देखो। तुम्हें कुछ नहीं मालूम कि तुम्हारे चारो ओर क्या हो रहा है, यह तो तुम लोग देखौ कि तुम्हारी अब क्या अवस्था हो रही है, क्या थे और क्या हो गए? एक बेर तो भला अपने मन में बिचार करो, निरवलम्बा शोकसागरमग्ना, अभागिनी अपनी जननी की दुरवस्था को एक बार तो आंखें खोल के देखौ। बेटा, हमारा धन, आभूषण, बसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गए। अब हम निराधार हो रही हैं। तेल भी नहीं मिलता कि केशों में लगावें। यह मलिन शतग्रन्थि वस्त्र मैं कब तक पहिरूं हाय! जो अंगरेजों का राज्य न होता तो अब तक तो मेरे प्राण न बचते। बेटा, तुम लोग अब उठो और अपने इस दुखिया माता को घोर दुःख से उद्धार करो।

पहिला : मां, फिर अब हम क्या करैं?

दूसरा : हम अपने माता के कष्ट को कैसे दूर करैं!

तीसरा : मां तुम किससे कहती हो! हम लोग तो अब मनुष्य नहीं, हम लोग तो अब आलसी हो गए हैं, हमारी गणना तो अब अज्ञान तिमिरावृत, कूपनिवासी पिशाचगणों में हैं, तो फिर हम क्या करैं?

भारतमाता : हाय हाय! क्या सचमुच हमारे पुत्रों की अब ऐसी दीन दशा हो गई है कि ये लोग कुछ भी नहीं कर सकते। अरे मेरे इसी अंक में आगे कैसे कैसे महात्मागण हुए हैं जिन के यश सौरभ से सारी पृथ्वी

आमोदित थी। इसी हमारे अंक आलबाल में कैसे पुण्य कल्पतरु हुए हैं, जिन की कीर्तिशाखा दशों दिशा में भी नहीं समा सकी। इसी हमारे अंक में कैसे कैसे लोग लालित पालित हुए हैं जिन का आज दिन समस्त संसार आदरपूर्व्वक नाम ग्रहण करता है, जिन्होंने अपने बुद्धि बल से मुझ को सब देश की ललनाओं का शिरोमणि कर रक्खा था–

''जाबाली, जैमिनि, गरग, पातञ्जलि शुकदेव।
रहे हमारेहि अंक में कबहिं सबै भुवदेव॥
याही मेरे अंक में रहे कृष्ण मुनि व्यास।
जिनके भारत गान सों भारत बदन प्रकास॥
याही मेरे अंक में कपिल, सूत, दुर्वास।
याही मेरे अंक मैं शाक्य सिंह सन्यास॥
याही मेरे अंक में मनु भृगु आदिक होय।
तब तौ तिन को करत हो आदर जग सब कोय॥''

सो उसी भारत भूमि में अब सब हतज्ञान हो रहे हैं और कोई इन को संभालने वाला नहीं। कोई काल ऐसा था कि इस भूमि की स्त्रियां भी विद्या, संभ्रम, शौर्य्य, औदार्य्य में ज़गत विख्यात थीं वहां के पुरुष अब उद्यमशून्य हो केवल सूद या नौकरी पर सन्तोष कर के बैठे है। उद्योग किस चिड़िया का नाम है इस को मानो स्वप्न में भी नहीं जानते।

हाय! जगत विख्यात हमारे पूर्व्व समय के पुत्रगण किधर गए। क्या उनकी आत्मा भी यहां नहीं है जो इस अभागिनी दुखिया माता को इस समय सम्बोधन दे।

''कहं गए विक्रम, भोज, राम, बलि, कर्ण, युधिष्ठिर।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहां नासे करि कै थिर॥
कहं छत्री सब मरे बिनसि सब गए किते गिर।
कहां राज को तौन साज जेहि जानत हे चिर॥
कहं दुर्ग सैन धन बल गयो, धूरहि धूर दिखात जग।
उठि अजौं न मेरे वत्सगन, रक्षहि अपुनो आर्य्य मग॥''

पहिला : माता बड़ी भूख लगी है।

दूसरा : क्षुधा से उदर फटा जाता है।

तीसरा : मां कुछ खाने को दो।

भारतमाता : **(स्वगत)** काल तू बड़ा प्रबल है। तुझ को कोई कार्य्य दुर्घट नहीं। तू सब कर सकता है, तेरा विश्वास कभी नहीं करना **(प्रकाश)** बेटा, मेरे पास क्या है जो तुम लोगों को खाने को दूं।

सब : माता दूध दो, वहीं पिएं।

भारतमाता : वत्स! तुम्हारी मां के पास क्या अब दूध रक्खा है जो तुम लोगों को दें। बेटा, इतर पदार्थों की क्या गणना है मेरे शरीर का तो अब रक्त भी शेष नहीं, यवन सब चूस ले गए। बेटा तुम लोग कब तक ऐसे पड़े रहौगे। अब अपना अपना काम देखने के लिए तुम लोग शीघ्र प्रयत्न करो।

पहिला : मां हम लोग क्या करैं? कैसे इस क्षुधित उदर को पूर्ण कर आत्मा को सुख दें।

दूसरा : मां! हम लोगों की तो यहां तक इच्छा होती है कि सेना विभाग में जाकर महारानी की ओर से उनके शत्रुओं से प्रथम ही युद्ध करैं और इस से अपने को प्रतिपालित करैं, परन्तु वह भी तो नहीं करने पाते।

भारतमाता : बेटा, तुम लोग क्या कह रहे हो? हाय, मैं ऐसी बज्रहृदया हूं कि यह सब सुन कर भी सुखपूर्व्वक अपना प्राण धारण किए हूं अब तो यह दुसह दुःख सहा नहीं जाता। **(दीर्घ श्वास लेकर)** बेटा तुम लोग अब क्या कर सकते हो? तुम्हारे पास अब है क्या? तुम लोग अब एक बेर जगत्‌विख्याता, ललनाकुलकमल कलिकाप्रकाशिका, राजनिचयपूजितपादपीठा, सरल हृदया, आर्द्रचित्ता, प्रजारंजनकारिणी, एवं दयाशीला आर्य्य स्वामिनी राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया के चरण कमलों में अपने इस दुःख का निवेदन करो। वह अतीव कारुण्यमयी दयाशालिनी और प्रजाशोकनाशिनी हैं। निस्सन्देह तुम लोगों की ओर कृपाकटाक्ष से देखैगी और अगस्त की भांति झट ही तुम लोगों के शोक सागर का शोषण कर लेंगी।

पहिला : मां, हम लोगों ने कई बार पुकारा। इतना मुक्त कंठ होकर गोहार किया कि हम लोगों का कंठ अद्यापि स्तब्ध हो रहा है किन्तु हम लोगों का रुदन इतने समुद्र पार महारानी के कान तक पहुंचता ही नहीं। मां, इस में उनका क्या दोष? हम लोगों के भाग्य का सब दोष है। महारानी यदि सुनैं तो अपनी दयामयी प्रकृति से अवश्य कुछ करैं।

भारतमाता : बेटा, तुम लोग क्या करोगे? तुम्हारे दिन ही ऐसे हैं। हा विधाता, हमारे भाग्य में इतना कष्ट। जननी हो के अपनी सन्तति की यह दशा इन्हीं नेत्रों से देखनी पड़ती है। हाय! वे नेत्र भी नहीं फूट जाते! इसमें विधाता का दोष नहीं। हमारे कपाल का दोष है! **(स्वगत)** एक समय में मैं इन्हीं भुजाओं से अपने प्रसिद्ध यशस्वी पुत्रों को गोद में लेकर उनका स्नेह चुम्बन करती करती अहंकार के मद से

उन्मत होती थी और अपने को रमणीसरसरोजिनी, रमणीकुलगर्व, रमणीधुरिकीर्त्तनीया, रमणीललाटतिलक, रमणीशिरोभूषण, रमणीमौक्तिकमणि, समझ अपने भाग्य को सराहती थी। हाय, अब तो वैसा ही जगदीश्वर हमारे उस पूर्व्वकाल के गर्वो को खर्व कर रहा है। शास्त्रकारों ने वृथा लिखा है कि पाप-पुण्य का फल स्वर्ग में होता है, मैं जानती हूं कि पाप कर्म्म का फल इसी काल और इसी संसार में भोगना पड़ता है। **(प्रकाश)** बेटा, तुम लोग हमारे कहने से एक बेर और महान उच्च स्वर से कृपाशीला महारानी को पुकारो। वह चाहै तो सब सुन सकती है और निस्सन्देह दत्तचित्त हो सब सुनैंगी और शोकसमूह को शीघ्र ही दूर करैंगी।

पहिला : अच्छा तो एक बार और पुकारैं, जान पड़ता है कि विधाता ने हम लोगों को केवल रोने ही के हेतु इस संसार में भेजा है तो फिर इस को कौन मेट सकता है। अच्छा, एक बार फिर पुकारैं तो सही **(उच्चस्वर से)** कहां संमार्गरक्षिणी, लंडननिवासिनी राजाधिराजनी, इंगलैंडेश्वरी माता विक्टोरिया! माता! ये भारतसन्तानगण आप से सविनय प्रार्थना करते हैं—एक बार आप दया कर इन अनाथ भारत सन्तानों के प्रति अपना कृपाकटाक्ष निक्षेपण कीजिए। माता! हम लोगों ने सुना है कि आप दयाशीला और परम कारुणिका हैं। आप प्रच्छन्न भेष से दरिद्रों का दुःख दूर करती हुई समस्त नगर में विचरण करती हैं। यदि एक बार भी आप अपने शील युक्त नैनों की कोर से हम भारत सन्तानों की ओर देखैं तो हम लोगों का सब क्लेश पल भर में दूर हो जाय और हम लोगों का सुख और आप का औदार्य्य दिग्देशान्तर में फैल जाय। चिरकाल से हम लोग आप की प्रार्थना में तत्पर हो रहे हैं। अब विलम्ब करना उचित नहीं! माता! इन भारतसन्तानों को अब शीघ्र ही दया दान दीजिए। हम लोग जिस रोगापत्ति से पीड़ित हो रहे हैं उस को आप के अतिरिक्त दूसरे की सामर्थ्य नहीं कि दूर कर सके।

[एक साहिब का प्रवेश]

साहिब : **(तर्जन गर्जन पूर्व्वक)** रे दुराशय! दुर्वृत्तिगण! क्या इसी हेतु हम ने तुम लोगों को ज्ञान चक्षु दिया है? रे नराधम! राजविद्रोही! महारानी के पुकारने में तुम लोगों को तनिक भी भय का संचार नहीं होता। उह! यदि ऐसा जानते तो क्या हम तुम लोगों को लिखना पढ़ना सिखाते। बस अब चुप रहो! खबरदार जो आगे कुछ भी कोलाहल किया।

पहिला : मां फिर भी तुम पुकारने को कहोगी?

दूसरा : मां इसी से तो हम लोग कुछ भी नहीं बोलते।

भारतमाता : (रोकर) ईश्वर, तू कहां है! मेरे पुत्र अब पुकारने और रोने भी नहीं पाते।

[दूसरे साहिब का प्रवेश]

दूसरा साहिब : अरे इंगलैंड चन्द्रालांछन! तू यहां से दूर हो।

[पहिले को निकाल देता है]

दूसरा साहिब : (भारतमाता के समीप जाकर) माता! अब और रोदन न करो! तुम्हारा दुःख देखने से पाषाण भी द्रवीभूत हो जाता है। तुम्हारे निरन्तर धारावाही अश्रुप्रवाह के अवलोकन से कौन ऐसा कठोर चित्त मनुष्य है जो फिर से स्थिर रहैगा। आलुलायित केशावलम्बित ये तुम्हारे क्षीण गंड़स्थल एवं विगतकान्ति तथा संस्कार रहित इस कृश शरीर को देखकर कौन दुःख सागर में मग्न नहीं होता? तिस पर ऐसे लोग तुम्हारे इस शोक को अधिकतर वर्द्धित करते हैं। किन्तु हे माता! अंगरेज सब कदापि भी ऐसे नहीं। तुम्हारा अश्रुपात देखने से जिनको स्वयं अश्रुपात नहीं होता ऐस अंगरेज बहुत थोड़े हैं। उन की दयालुता न्यायशीलता, निष्पक्षपातिता और प्रजापालित्व तो संसार में प्रसिद्ध हैं। मां ऐसे भी कितने असभ्य हैं किन्तु वे धरमहीन हैं और वे ही हमारी जाति के कलंक हो रहे हैं। माता! हम लोगों की महारानी परम कारुणिक और अति दयाशीला हैं। वह अपनी प्रजा के अनुरंजन के हेतु प्राण प्रिय आत्मपुत्रों का भी त्याग कर सकती हैं और इतर वस्तुओं की कौन गणना। उनके गुण अनन्त हैं। उनके समान सच्चरित्रा, साध्वी, पतिव्रता और धर्म्मपरायणा स्त्री कुल में उत्पन्न होना अति दुर्लभ है। वह रामचन्द्र से भी अधिक प्रजापालन में सदैव तत्पर रहती हैं। माता! कुछ दुःख मत करो! तुम्हारी यह शोकरात्रि अब शीघ्र ही समाप्त होगी और सुखरूपी मार्तण्ड़ तुम्हारे इस मुकुलित मुखकमल को शीघ्र ही प्रफुल्लित करैगा। माता! तुम ने क्या ग्लैडस्टन, फासेट, मोनियर विलियम्स[1] इत्यादि महात्माओं का नाम नहीं सुना! ये लोग तो अभागे भारत सन्तानों के शोक निवारण के हेतु तन मन सब अर्पण कर चुके हैं और रात दिन उसी का प्रयत्न किया करते हैं। (सन्तानों के प्रति) भ्रातृगण! सचमुच तुम लोगों की अब तक अत्यन्त दुर्दशा हुई है और तुम लोगों ने अनेक आपत्तियों को झेला है और अनेक दुःख उठाए हैं। भाई इस में कोई क्या कर सकता है। सब उस सृष्टिकारक परमेश्वर के आधीन हैं, उसी को पुकारो, वही समस्त जगत और सब दीन दुखियों का रक्षक है। जगदीश्वर, तुम लोगों को इस विपदजाल से शीघ्र ही मुक्त करै।

1. भारत जीवन प्रेस की प्रति में मोनियर विलियम्स की जगह ब्राइट तथा रिपन का नाम दिया गया है।

[दूसरे साहिब का प्रस्थान]

[धैर्य्य का प्रवेश]

धैर्य्य : जननी, क्यौं रोदन करती हौ? धैर्य्य को धारण करो और शोकवेग को दूर करो। देखो, मैं धैर्य्य तुम्हारा आश्वासन करता हूं। यद्यपि मैं धैर्य्य हूं और विपद काल में लोगों को धीरज देने के हेतु मैंने जन्म लिया है किन्तु तुम्हारे इस शोकावस्था को देख मेरे भी धीरज छूटे जाते हैं अन्तःपर उसको धारण करने में असमर्थ हूं। मैं कैसे तुम्हारा दुःख दूर करूं। **(सन्तानों से)** हे भ्रातृगन, अब उठो और जननी के दुःखानल के निर्वाण का प्रयत्न करो। अभिमान, लोभ, अपमान, आत्मसमाज प्रशंसा, परजातनिन्दा इन सब का सावधानीपूर्व्वक परित्याग करो। धैर्य्य को अवलम्बन करो। सब कोई धैर्य्य को धारण करो। भाई, अवश्य तुम लोगों की कांक्षा पूरी होगी। धीरज धरो, धीरज धरो।

[धैर्य्य का प्रस्थान]

भारतमाता : हे मेरे प्यारे वत्सगण! अब भी उठो और धैर्य्य के उत्साह और ऐक्य[1] के उपदेशों को मन में रख इस दुनिया के दुःख को दूर करने में तन मन से तत्पर हो। अब तक जो हुआ हम ने उसका सहन किया। अब तो ऐसा उपाय करो जिस में मेरा यह शोकनद बढ़ने न पावै। **(हाथ जोड़ कर)** हे जगदीश्वर! तू सर्वशक्तिमान है। तुझ को कोई बात दुर्घट नहीं। अब मुझ अबला पर दया करके मेरा दुःख निवारण कर और मेरी इस प्रार्थना को अंगीकार कर—

बल कला कौशल अमित विद्या वत्स मेरे नित लहैं।
पुनि हृदय ज्ञान प्रकाश तें अज्ञान तम तुरतहि दहैं॥
तजि द्वेष ईर्ष्या द्रोह निन्दा देस उन्नति सब चहैं।
अभिलाख यह जिय पूर्ववत धन धन्य मोहि सबही कहैं॥

[सब जाते हैं]

[जवनिका गिरती है]

[भारत जननी का प्रकाशन दिसम्बर 1877 ई. की हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में हुआ था। यह रचना कविवचन सुधा में भी छपी थी। भारतेन्दु के किसी मित्र ने बंगभाषा के 'भारतमाता' नामक रूपक का अनुवाद किया था। इसी अनुवाद का यह संशोधित प्रवर्धित रूप है। इस तथ्य को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी स्वीकार किया है। इस दृष्टि से यह उनका मौलिक नाटक नहीं है।—सम्पादक]

●

1. बंगभाषा में एका और उत्साह का प्रवेश भी दिखलाया है किन्तु इस देश में अभी न एका है, न उत्साह, इस हेतु उनका स्वांग यहां नहीं लाए।

अन्धेर नगरी
चौपट्ट राजा
टके सेर भाजी टके सेर खाजा
(प्रहसन)

सन 1881 ई.

छेदश्चन्दनचूतचंपकवने रक्षा करीरद्रुमे
हिंसा हंसमयूरकोकिलकुले काकेषुलीलारतिः
मातंगेन खरक्रयः समतुला कर्पूरकार्पासयोः
एषा यत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मै नमः॥[1]

1. जो चन्दन, आम तथा चम्पा के वन को काटकर करीर के वृक्ष की रक्षा करता है, हंस, मोर तथा कोयल को मारकर कौए की लीला में प्रेम रखता है, हाथी देकर गधा खरीदता है और कर्पूर तथा कपास को समान समझता है। जिस देश के गुणी लोगों के ऐसे विचार हों उस देश को नमस्कार है।

समर्पण

मान्य योग्य नहि होत कोऊ कोरो पद पाए।
मान्य योग्य नर ते, जे केवल परहित जाए॥
जो स्वास्थ रत धूर्त हंस से काक चरित रत।
ते औरन हति बंचि प्रभुहि नित होहि समुन्नत॥
जदपि लोक की रीति यही पै अन्त धर्म्म जय।
जौ नाहीं यह लोक तदपि छलियंन अति जम भय॥
नरसरीर में रत्न वही जो परदुख साथी।
खात पियत अरु स्वसत स्वान मँडूक अरु भाथी॥
तासो अब लौ करो सो, पै अब जागिय।
गो श्रुति भारत देस समुन्नति मैं नित लागिय॥
सांच नाम निज करिय कपट तजि अन्त बनाइय।
नृप तारक हरि पद भजि सांच बड़ाई पाइय॥

ग्रन्थकार।

पहिला अंक

स्थान—वाहृय प्रान्त

[महन्तजी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं]

सब

राम भजो राम भजो राम भजो भाई।
राम के भजे से गनिका तर गई॥
राम के भजे से गीध गति पाई।
राम के नाम से काम बनै सब॥
राम के भजन बिनु सबहि नसाई।
राम के नाम से दोनों नयन बिनु॥
सूरदास भए कबि कुलराई।
राम के नाम से घास जंगल की,
तुलसी दास भए भजि रघुराई॥

महन्त : बच्चा नारायणदास! यह नगर तो दूर से बड़ा सुन्दर दिखलाई पड़ता है! देख, कुछ भिच्छा उच्छा मिलै तो ठाकुरजी को भोग लगै। और क्या।

नारायणदास : गुरुजी महाराज! नगर तो नारायण के आसरे से बहुत ही सुन्दर है! जो है सो, पर भिच्छा सुन्दर मिलै तो बड़ा आनन्द होय।

महन्त : बच्चा गोबर्धनदास! तू पच्छिम की ओर से जा और नारायणदास पूरब की ओर जायगा। देख, जो कुछ सीधा सामग्री मिलै तो श्री शालग्रामजी का बालभोग सिद्ध हो।

गोबर्धनदास : गुरुजी! मैं बहुत सी भिच्छा लाता हूं। यहां लोग तो बड़े मालवर दिखलाई पड़ते हैं। आप कुछ चिन्ता मत कीजिए।

महन्त : बच्चा, बहुत लोभ मत करना। देखना, हां—

लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान॥

[गाते हुए सब जाते हैं]

●

दूसरा अंक

स्थान—बाजार

कबाबवाला : कबाब गरमागरम मसालेदार—चौरासी मसाला बहत्तर आंच का—कबाब गरमागरम मसालेदार—खाय सो होठ चाटै, न खाय सो जीभ काटै। कबाब लो, कबाब का ढेर—बेचा टके सेर।

घासीराम : चने जोर गरम—

चने बनावैं घासीराम। जिनकी झोली में दूकान॥
चना चुरमुर चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुंह खोलै॥
चना खावै तौकी[1] मैना[1]। बोलै अच्छा बना चबैना॥
चना खाय गफूरन[1] मुन्ना[1]। बोलै और नहीं कुछ सुन्ना॥
चना खाते सब बंगाली। जिनकी धोती ढीली ढाली॥
चना खाते मियां जुलाहे। डाढ़ी हिलती गाह बगाहे॥
चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते॥
चने जोर गरम-टके सेर।

नरंगीवाली : नरंगी ले नरंगी सिलहट की नरंगी, बुटवल की नरंगी, रामबाग की नरंगी, आनन्दबाग की नरंगी। भई नीबू से नरंगी। मैं तो पिय के रंग न रंगी। मैं तो भूली लेकर संगी। नरंगी ले नरंगी। कंवला नींबू, मीठा नींबू, रंगतरा, संगतरा। दोनों हाथों लो—नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे। नरंगी ले नरंगी। टके सेर नरंगी।

हलवाई : जलेबियां गरमागरम। ले सेब इमरती लड्डू, गुलाबजामुन। खुरमा बुंदिया बरफी समोसा पेड़ा कचौड़ी दालमोट पकौड़ी घेवर गुपचुप। हलुआ हलुआ ले हलुआ मोहनभोग। मोयनदार कचौड़ी कचाका हलुआ नरम चभाका। घी में गरक, चीनी में तरातर, चासनी में चभाचभ। ले भूरे का लड्डू। जो खाय सो भी पछताय जो न खाय सो भी पछताय। रेवड़ी कड़ाका। पापड़ पड़ाका। ऐसी जात हलवाई

---

1. काशी की प्रसिद्ध नर्त्तकियां।

जिसके छत्तिस कौम हैं भाई। जैसे कलकत्ते के विलसन मन्दिर के भितरिए, वैसे अन्धेर नगरी के हम। सब सामान ताजा। खाजा ले खाजा। टके सेर खाजा।

कुंजड़िन : ले धनिया मेथी सोआ पालक चौराई बथुआ करेमूं नोनियां कुलफा कसारी चना सरसों का साग। मरसा ले मरसा। ले बैंगन लौआ कोहड़ा आलू अरुई बण्डा नेनुआं सूरन राम तरोई तोरई मुरई। ले आदी मिरचा लहसुन पियाज टिकोरा। ले फालसा खिरनी आम अमरूत निंबुआ मटर होरहा। जैसे काजी वैसे पाजी, रैयत राजी टकेसेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।

मुगल : बादाम पिस्ते अखरोट अनार बिहीदाना मुनक्का किशमिश अंजीर आबजोश आलूबोखारा चिलगोजा सेब नाशपाती बिहीसरदा अंगूर का पिटारी। आमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंगरेज का भी दांत कट्टा ओ गया। नाहक को रुपया खराब किया बेवकूफ बना। हिन्दोस्तान का आदमी लक लक हमारे यहां का आदमी बुंबक बुंबक। लो सब मेवा टके सेर।

पाचकवाला : चूरन अमल बेद का भारी।
जिस को खाते कृष्ण मुरारी॥
मेरा पाचक है पचलोना।
जिसको खाता श्याम सलोना॥
चूरन बना मसालेदार।
जिसमें खट्टे की बहार॥
मेरा चूरन जो कोइ खाय।
मुझको छोड़ कहीं नहिं जाय॥
हिन्दू चूरन इस का नाम।
विलायत पूरन इस का काम॥
चूरन जब से हिन्द में आया।
इसका धन बल सभी घटाया॥
चूरन ऐसा हट्टा कट्टा।
कीना दांत सभी का खट्टा॥
चूरन चला डाल की मंडी।
इसको खाएंगी सब रंडी॥
चूरन अमले सब जो खावैं।
दूनी रुशवत तुरत पचावैं॥

चूरन नाटकवाले खाते।
इसकी नकल पचा कर लाते॥
चूरन सभी महाजन खाते।
जिससे जमा हजम कर जाते॥
चूरन खाते लाला लोग।
जिनको अकिल अजीरन रोग॥
चूरन खावै एडिटर जात।
जिनके पेट पचै नहिं बात॥
चूरन साहेब लोग जो खाता।
सारा हिन्द हजम कर जाता॥
चूरन पुलिसवाले खाते।
सब कानून हजम कर जाते॥
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर॥

मछलीवाली : मछरी ले मछरी।
मछरिया एक टके कै बिकाय।
लाख टका के वाला जोबन गाहक सब ललचाय॥
नैन मछरिया रूप जाल में, देखत ही फंसि जाय।
बिनु पानी मछरी सो बिरहिया, मिले बिना अकुलाय॥

जातवाला ब्राह्मण : जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाय और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचैं, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानैं। टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावैं। वेद, धर्म्म, कुल, मरजादा, सच्चाई, बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल, ले टके सेर।

बनियां : आटा, दाल, लकड़ी, नमक, घी, चीनी, मसाला, चावल, ले टके सेर।

[बाबाजी का चेला गोबर्धनदास आता है और सब बेचनेवालों की आवाज सुन सुन कर खाने के आनन्द में बड़ा प्रसन्न होता है]

गोबर्धनदास : क्यौं भाई बनिये, आटा कितने सेर?

बनियां : टके सेर।

गोबर्धनदास : औ चावल?

बनियां : टके सेर।

गोबर्धनदास : औ चीनी?

बनियां : टके सेर।

गोवर्धनदास : औ घी?

बनियां : टके सेर।

गोवर्धनदास : सब टके सेर। सचमुच।

बनियां : हां महाराज, क्या झूठ बोलूंगा।

गोवर्धनदास : **(कुंजड़िन के पास जा कर)** क्यौं माई, भाजी क्या भाव?

कुंजड़िन : बाबाजी, टके सेर। निनुआ, मुरई, धनिया, मिरचा, साग सब टके सेर।

गोबर्धनदास : सब भाजी टके सेर। वाह, वाह! बड़ा आनन्द है। यहां सभी 'चीज' टके सेर। **(हलवाई के पास जा कर)**
क्यौं भाई हलवाई? मिठाई कितने सेर?

हलवाई : बाबाजी! लडुआ, हलुआ, जलेबी, गुलाबजामुन, खाजा सब टके सेर।

गोबर्धनदास : वाह! वाह!! बड़ा आनन्द है। क्यौं बच्चा, मुझ से मसखरी तो नहीं करता? सचमुच सब टके सेर?

हलवाई : हां बाबाजी सचमुच सब टके सेर। इस नगरी की चाल ही यही है। यहां सब चीज टके सेर बिकती है।

गोबर्धनदास : क्यौं बच्चा! इस नगरी का नाम क्या है?

हलवाई : अन्धेर नगरी।

गोबर्धनदास : और राजा का क्या नाम है?

हलवाई : चौपट्ट राजा।

गोबर्धनदास : वाह! वाह! अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा।
[यही गाता है और आनन्द से बगल बजाता है]

हलवाई : तो बाबाजी कुछ लेना-देना हो-तो लो दो।

गोबर्धनदास : बच्चा, भिच्छा मांग कर सात पैसे लाया हूं, साढ़े तीन सेर मिठाई दे दे, गुरु चेले सब आनन्दपूर्व्वक इतने में छक जायंगे।
[हलवाई मिठाई तौलता है, बाबा जी मिठाई लेकर खाते हुए और अन्धेर नगरी गाते हुए जाते हैं]

[जवनिका गिरती है]

●

तीसरा अंक

स्थान–जंगल

[महन्तजी और नारायणदास एक ओर से 'राम भजो' इत्यादि गीत गाते हुए आते हैं और दूसरी ओर से गोबर्धनदास 'अन्धेर नगरी' गाते हुए आते हैं]

महन्त : बच्चा गोबर्धनदास! कह, क्या भिच्छा लाया? गठरी तो भारी मालूम पड़ती है।

गोबर्धनदास : बाबाजी महाराज! बड़े माल लाया हूं साढ़े तीन सेर मिठाई है।

महन्त : देखूं बच्चा! (**मिठाई की झोली अपने सामने रख कर खोल कर देखता है**) वाह! वाह! बच्चा! इतनी मिठाई कहां से लाया? किस धर्मात्मा से भेंट हुई?

गोबर्धनदास : गुरुजी महाराज! सात पैसे भीख में मिले थे, उसी से इतनी मिठाई मोल ली है।

महन्त : बच्चा! नारायणदास ने मुझ से कहा था कि यहां सब चीज टके सेर मिलती है, तो मैंने इस की बात का विश्वास नहीं किया। बच्चा, यह कौन सी नगरी है और इस का कौन सा राजा है, जहां टके सेर भाजी और टके सेर खाजा है?

गोबर्धनदास : अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।

महन्त : तो बच्चा! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है, जहां टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा हो।

दोहा

सेत सेत सब एक से, जहां कपूर कपास।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुं न कीजे बास॥
कोकिल बायस एक सम, पंडित मूरख एक।
इन्द्रायन दाड़िम विषय, जहां न नेकु विवेकु॥
बसिए ऐसे देस नहीं, कनक वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुःख पाइए, प्रान दीजिए रोय॥

सो बच्चा, चलो यहां से। ऐसे अन्धेरनगरी में हजार मन मिठाई मुफ्त की मिले तो किस काम की? यहां एक छन नहीं रहना।

गोबर्धनदास : गुरुजी, ऐसा तो संसार भर में कोई देस ही नहीं है। दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है। मैं तो इस नगर को छोड़ कर नहीं जाऊंगा। और जगह दिन भर मांगो तो भी पेट नहीं भरता। वरंच बाजे बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सो मैं तो यहीं रहूंगा।

महन्त : देख बच्चा, पीछे पछतायगा।

गोबर्धनदास : आप की कृपा से कोई दुःख न होगा; मैं तो यही कहता हूं कि आप भी यहीं रहिये।

महन्त : मैं तो इस नगर में अब एक क्षण भर नहीं रहूंगा। देख, मेरी बात मान, नहीं पीछे पछतायगा। मैं तो जाता हूं, पर इतना कहे जाता हूं कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना।

गोबर्धनदास : प्रणाम गुरुजी, मैं आप का नित्य ही स्मरण करूंगा। मैं तो फिर भी कहता हूं कि आप भी यहीं रहिये।

[महन्तजी नारायणदास के साथ जाते हैं; गोबर्धनदास बैठ कर मिठाई खाता है]

[जवनिका गिरती है]

●

चौथा अंक

स्थान—राजसभा

[राजा, मन्त्री और नौकर लोग यथास्थान स्थित हैं]

एक सेवक : (चिल्लाकर) पान खाइए महाराज।

राजा : **(पीनक से चौंक के घबड़ा कर उठता है)** क्या कहा? सुपनखा आइ ए महाराज।

[भागता है]

मन्त्री : **(राजा का हाथ पकड़ कर)** नहीं नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज!

राजा : दुष्ट लुच्चा पाजी! नाहक हम को डरा दिया। मन्त्री, इस को सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री : महाराज! इस का क्या दोष है? न तमोली पान लगाकर देता, न यह पुकारता।

राजा : अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री : पर महाराज, आप पान खाइए सुन कर थोड़े ही डरे हैं, आप तो सुपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो।

राजा : **(घबड़ा कर)** फिर वही नाम? मन्त्री, तुम बड़े खराब आदमी हौ। हम रानी से कह देंगे कि मन्त्री बेर बेर तुम को सौत बुलाने चाहता है। नौकर! नौकर! शराब।

दूसरा नौकर : **(एक सुराही में से एक गिलास में शराब उझल कर देता है)** लीजिये महाराज। पीजिये महाराज।

राजा : **(मुंह बना कर पीता है)** और दे।

[नेपथ्य में, दोहाई है दोहाई है, का शब्द होता है]

कौन चिल्लाता है—पकड़ लाओ।

[दो नौकर एक फर्यादी को पकड़ लाते हैं]

फर्यादी : दोहाई है महाराज, दोहाई है। महाराज हमारा न्याव होय।

राजा : चुप रहो। तुम्हारा न्याव यहां ऐसा होगा कि जैसा जम के यहां भी

न होगा। बोलो क्या हुआ?

फर्यादी : महाराज, कल्लू बनियां की दीवार गिर पड़ी, सो मेरी बकरी उस के नीचे दब गई। दोहाई है महाराज न्याव हो।

राजा : **(नौकर से)** कल्लू बनिये की दीवार को पकड़ लाओ।

मन्त्री : महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती।

राजा : अच्छा, उस का भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो हो उस को पकड़ लाओ।

मन्त्री : महाराज! दीवार ईंट चूने की होती, है, उस को भाई बेटा नहीं होता।

राजा : अच्छा, कल्लू बनिये को पकड़ लाओ।

[नौकर लोग दौड़ कर बाहर से बनिये को पकड़ लाते हैं]

क्यों बे बनिये! इस की लरकी, नहीं, बरकी क्यों दब कर मर गई।

मन्त्री : बरकी नहीं महाराज बकरी।

राजा : हां हां, बकरी क्यों मर गई–बोल, नहीं अभी फांसी देता हूं।

कल्लू : महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं। कारीगर ने ऐसी दीवार बनाई कि गिर पड़ी।

राजा : अच्छा, इस मल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ।

[कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़ लाते हैं]

क्यों बे कारीगर! इस की बकरी किस तरह मर गई?

कारीगर : महाराज मेरा कुछ कसूर नहीं, चूनेवाले ने ऐसा बोदा चूना बनाया कि दीवार गिर पड़ी।

राजा : अच्छा, इस कारीगर को बुलाओ। नहीं नहीं, निकालो, उस चूनेवाले को बुलाओ। **(कारीगर निकाला जाता है, चूनेवाला पकड़ कर लाया जाता है)** क्यों बे खैर, सुपाड़ी, चूनेवाले! इस की कुबरी कैसे मर गई?

चूनेवाला : महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं, भिश्ती ने चूने में पानी ढेर दे दिया, इसी से चूना कमजोर हो गया होगा।

राजा : अच्छा, चुन्नीलाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो। **(चूनेवाला निकाला जाता है, भिश्ती लाया जाता है)** क्यों बे भिश्ती! गंगा, जमुना की किश्ती! इतना पानी क्यों दिया कि इस की बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई।

भिश्ती : महाराज! गुलाम का कोई कसूर नहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दी कि उस में पानी जादे आ गया।

राजा : अच्छा, कस्साई को लाओ, भिश्ती निकालो।

[लोग भिश्ती को निकालते हैं कस्साई को लाते हैं]

क्यों बे कस्साई, मशक ऐसी क्यों बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई?

कस्साई : महाराज! गड़ेरिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेड़ मेरे हाथ बेंची कि उस की मशक बड़ी बन गई।

राजा : अच्छा, कस्साई को निकालो गड़ेरिये को लाओ।

[कस्साई निकाला जाता है गड़ेरिया आता है।]

क्यौं बे ऊखपौंडे के गड़ेरिये! ऐसी बड़ी भेड़ क्यौं बेचा कि बकरी मर गई?

गड़ेरिया : महाराज! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उस के देखने में मैंने छोटी बड़ी भेड़ का ख्याल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।

राजा : अच्छा, इस को निकालो कोतवाल को अभी सरबमुहर पकड़ लाओ।

[गड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा जाता है]

क्यौं बे कोतवाल! तैंने सवारी ऐसी धूम से क्यौं निकाली कि गड़ेरिये ने घबड़ाकर बड़ी भेड़ बेची, जिस से बकरी गिर कर कल्लू बनियां दब गया?

कोतवाल : महाराज, महाराज! मैं ने तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इन्तजाम के वास्ते जाता था।

मन्त्री : **(आप ही आप)** यह तो बड़ा गजब हुआ, ऐसा न हो कि बेवकूफ, इस बात पर सारे नगर को फूंक दे या फांसी दे। **(कोतवाल से)** यह नहीं, तुम ने ऐसे धूम से सवारी क्यौं निकाली?

राजा : हां हां, यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यौं निकाली?

कोतवाल : महाराज, महाराज...।

राजा : कुछ नहीं, महाराज महाराज, ले जाओ, कोतवाल को अभी फांसी दो। दरबार बरखास्त।

[लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मन्त्री को पकड़ कर राजा जाते हैं]

[जवनिका गिरती है]

●

पांचवां अंक

स्थान–अरण्य

[गोवर्धनदास गाते हुए आते हैं]

(राग काफी)

अन्धेर नगरी अनबूझ राजा ।
टका सेर भाजी टका सेर खाजा ॥
नीच ऊंच सब एकहि ऐसे । जैसे भडुए पंडित तैसे॥
कुल मरजाद न मान बड़ाई । सबै एक से लोग लुगाई॥
जात पांत पूछै नहीं कोई । हरि को भजै सो हरि का होई॥
वेश्या जोरू एक समाना । बकरी गऊ एक करि जाना॥
सांचे मारे मारे डोलैं । छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं॥
प्रगट सभ्य अन्तर छलधारी । सोई राजसभा बलभारी॥
सांच कहैं ते पनही खावैं । झूठे बहुबिधि पदवी पावैं॥
छलियन के एका के आगे । लाख कहौ एकहु नहिं लागे॥
भीतर होइ मलिन की कारो । चहिए बाहर रंग चटकारो॥
धर्म्म अधर्म्म एक दरसाई । राजा करै सो न्याव सदाई॥
भीतर स्वाहा बाहर सादे । राज करहिं अमले अरु प्यादे॥
अन्धा धुन्ध मच्यौ सब देसा । मानहुं राजा रहत बिदेसा॥
गोद्विज श्रुति आदर नहिं होई । मान्हुं नृपति बिधर्म्मी हो कोई॥
ऊंच नीच सब एकहि सारा । मानहुं ब्रह्म ज्ञान बिस्तारा॥
अन्धेर नगरी अनबूझ राजा ।
टका सेर भाजी टका सेर खाजा ॥

[बैठ कर मिठाई खाता है]

गुरुजी ने हम को नाहक यहां रहने को मना किया था। माना कि देस बहुत बुरा है। पर अपना क्या? अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना मजे में आनन्द से राम भजन करना।

[मिठाई खाता है। चार प्यादे चार ओर से आकर उस को पकड़ लेते हैं]

पहला प्यादा : चल बे चल, बहुत मिठाई खाकर मुटाया है। आज पूरी हो गई।

दूसरा प्यादा : बाबाजी चलिये, नमोनारायन कीजिये।

गोवर्धनदास : (घबड़ा कर) हैं! यह आफत कहां से आई! अरे भाई, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मुझ को पकड़ते हो।

पहला प्यादा : आप ने बिगाड़ा है या बनाया है इस से क्या मतलब। अब चलिये। फांसी चढ़िए।

गोबर्धनदास : फांसी। अरे बाप रे बाप फांसी!! मैंने किस की जमा लूटी है कि मुझ को फांसी। मैंने किसके प्राण मारे कि मुझ को फांसी!

दूसरा प्यादा : आप बड़े मोटे हैं, इस वास्ते फांसी होती है।

गोबर्धनदास : मोटे होने से फांसी? यह कहां का न्याय है! अरे, हंसी फकीरों से नहीं करनी होती।

पहला प्यादा : जब सूली चढ़ लीजियेगा तब मालूम होगा कि हंसी है कि सच। सीधी राह से चलते हो कि घसीट कर ले चलैं?

गोबर्धनदास : अरे बाबा, क्यौं बेकसूर का प्राण मारते हो? भगवान के यहां क्या जवाब दोगे?

पहला प्यादा : भगवान को जवाब राजा देगा। हम को क्या मतलब? हम तो हुक्मी बन्दे हैं।

गोबर्धनदास : तब भी बाबा, बात क्या है कि हम फकीर आदमी को नाहक फांसी देते हो?

पहला प्यादा : बात यह है कि कल कोतवाल को फांसी का हुकुम हुआ था। जब फांसी देने को उस को ले गये, तो फांसी का फन्दा बड़ा हुआ, क्यौंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि मोटा आदमी पकड़ कर फांसी दे दो, क्यौंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होनी जरूर है, नहीं तो न्याव न होगा। इसी वास्ते तुम को ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुम को फांसी दें।

गोबर्धनदास : तो क्या और कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिलता जो मुझ अनाथ फकीर को फांसी देते हैं!

पहला प्यादा : इस में दो बात है—एक तो नगर भर में राजा के न्याव के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़ैं तो वह न जाने क्या बात बनावै कि हमीं लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है। इस से तुम्हीं

को फांसी देंगे।

गोवर्धनदास : दुहाई परमेश्वर की। अरे मैं नाहक मारा जाता हूं। अरे यहां बड़ा ही अन्धेर है, अरे गुरुजी महाराज का कहा मैंने न माना। उस का फल मुझ को भोगना पड़ा। गुरुजी कहां हो आओ, मेरे प्राण बचाओ। अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूं! गुरुजी गुरुजी...।

[गोवर्धनदास चिल्लाता है, प्यादे लोग उस को पकड़ कर ले जाते हैं]

[जवनिका गिरती है]

●

छठां अंक

स्थान–श्मशान

[गोबर्धनदास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश]

गोबर्धनदास : हाय बाप रे! मुझे बेकसूर ही फांसी देते हैं। अरे भाइयो, कुछ तो धरम बिचारो। अरे मुझ गरीब को फांसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा? अरे मुझे छोड़ दो। हाय! हाय!

[रोता है और छुड़ाने का यत्न करता है]

पहला सिपाही : अबे, चुप रह! राजा का हुकुम भला कहीं टल सकता है? यह तेरा आखिरी दम है। राम का नाम ले बेफाइदा क्यौं शोर करता है? चुप रह।

गोबर्धनदास : हाय? मैंने गुरुजी का कहना न माना, उसी का यह फल है। गुरुजी ने कहा था कि ऐसे–नगर में न रहना चाहिए, यह मैंने न सुना! अरे! इस नगर का नाम ही अन्धेरनगरी और राजा का नाम चौपट्ट है, तब बचने की कौन आशा है। अरे! इस नगरी में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है जो इस फकीर को बचावै। गुरुजी! कहो हो? बचाओ–गुरुजी–गुरुजी–गुरुजी...।

[रोता है, सिपाही लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं। गुरुजी और नारायणदास आते हैं]

महन्त : अरे बच्चा गोबर्धनदास! तेरी यह क्या दशा है?

गोबर्धनदास : **(गुरु को हाथ जोड़ कर)** गुरुजी! दीवार के नीचे बकरी दब गई, इस के लिए मुझे फांसी देते हैं। गुरुजी, बचाओ।

गुरुजी : अरे बच्चा! मैंने तो पहिले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं, तैंने मेरा कहना नहीं सुना।

गोबर्धनदास : मैंने आप का कहना नहीं माना, उसी का यह फल मिला। आप के सिवा अब ऐसा कोई नहीं है जो रक्षा करै। मैं आप ही का हूं आप के सिवा और कोई नहीं। **(पैर पकड़ कर रोता है)**

महन्त : कोई चिन्ता नहीं, नारायण सब समर्थ है। (**भौं चढ़ाकर सिपाहियों से**) सुनो; मुझ को अपने शिष्य को अन्तिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारे हो जाओ, देखो मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हारा भला न होगा।

सिपाही : नहीं महाराज, हम लोग हट जाते हैं। आप बेशक उपदेश कीजिये।

[सिपाही हट जाते हैं। गुरुजी चेले के कान में कुछ समझाते हैं]

गोबर्धनदास : (प्रकट) तब तो गुरुजी हम अभी फांसी चढ़ैंगे।

महन्त : नहीं बच्चा मुझ को चढ़ने दे।

गोबर्धनदास : नहीं गुरुजी, हम फांसी चढ़ैंगे।

महन्त : नहीं बच्चा हम। इतना समझाया नहीं मानता! हम बूढ़े भए, हम को चढ़ जाने दे।

गोबर्धनदास : स्वर्ग जाने में बूढ़ा जवान क्या? आप तो सिद्ध हो, आप को गति अगति से क्या? मैं फांसी चढ़ूंगा।

[इसी प्रकार दोनों हुज्जत करते हैं। सिपाही लोग परस्पर चकित हैं]

पहला सिपाही : भाई! यह क्या माजरा है, कुछ समझ नहीं पड़ता।

दूसरा सिपाही : हम भी नहीं समझ सकते कि यह कैसा गड़बड़ है।

[राजा, मन्त्री कोतवाल आते हैं]

राजा : यह क्या गोलमाल है?

दूसरा सिपाही : महाराज! चेला कहता है मैं फांसी चढ़ूंगा, गुरु कहता है मैं चढ़ूंगा। कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है?

राजा : (**गुरु से**) बाबाजी! बोलो। काहे को आप फांसी चढ़ते हैं?

महन्त : राजा! इस समय ऐसी साइत है कि जो मरैगा सीधा बैकुंठ जायगा।

मन्त्री : तब तो हमीं फांसी चढ़ैंगे।

गोबर्धनदास : हम हम। हम को तो हुकुम है।

कोतवाल : हम लटकैंगे। हमारे सबब तो दीवार गिरी।

राजा : चुप रहो, सब लोग, राजा के आछत और कौन बैकुंठ जा सकता है। हम को फांसी चढ़ाओ, जल्दी, जल्दी।

महन्त : **जहां न धर्म्म न बुद्धि नहिं, नीति न सुजान समाज।**
ते ऐसहि आपुहि नसैं, जैसे चौपटराज॥

[राजा को लोग टिकठी पर खड़ा करते हैं]

[जवनिका गिरती है]

इति

●

नीलदेवी

(ऐतिहासिक गीतिरूपक)

वियोगान्त

सन 1881 ई.

नीलदेवी

'गर्ज गर्ज क्षणं मूढ़ मधु यावत्पिवाम्यहं।
मयात्वयिहतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः'॥
'त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ'॥
'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदातदाऽवतीर्याहं करिषाम्यरिसंक्षयम्॥'
'स्त्रियः समस्ताः सकलाः जगत्सु त्वयैका पूरितमम्बमेतत्!'

(दुर्गापाठ)

''For the kiss she gave him was his first and last,
Kiss of dagger, driven to his heart and past.
At her feet he wallowed, choked with wicked blood.
In his breast the katar quivered where it stood.
At the hilt his fingers vainly wildly try,
Then they stiffen feeble; die thou slayer die
From his jewelled scabbard, drew she Shureef's sword.
Cut at vein the neck bone of the Muslim Lord.
Underneath, the star light sooth a sight of dead!
Like the Goddess Kali, comes she with the head.
Comes to where her brothers guard their murdered Chief;
All the camp is silent but the night is brief.
At his feet she flings it, flings her burden vile;
Suraj!| keep my promise! Brothers! build the pile.''

नाटकस्य पात्र गण

सूर्य्यदिवनदेवी	–	पंजाब प्रान्त का राजा।
सोमदेव	–	सूर्य्यदिव का पुत्र।
अब्दुश्शरीफ खां सूर	–	दिल्ली के बादशाह का सिपहसालार।
बसन्त	–	पागल बना हुआ महाराज सूर्य्यदिव का नौकर।
पं. विष्णुशर्मा	–	मौलवी के भेष में राजा का पंडित।
नीलदेवी	–	महाराज सूर्य्यदिव की रानी।
		चपरगट्टू और पीकदान अली दो मुफ्तखोरे।
		देवसिंह इत्यादि सिपाही, राजपूत सरदार।
		मुसलमान मुसाहिब, काजी, भटियारी, देवता, अप्सरा इत्यादि।

मातृ भगिनी सखी तुल्या आर्य्य ललना गण!

आज बड़ा दिन है। क्रिस्तान लोगों को इस से बढ़ कर कोई आनन्द का दिन नहीं है। किन्तु मुझ को आज उलटा और दुःख है। इसका कारण मनुष्य स्वभाव सुलभ ईर्षा मात्र है। मैं कोई सिद्ध नहीं कि रागद्वेष से विहीन हूं। जब मुझे अंगरेजी रमणी लोग मेदसिंचित केश राशि, कृत्रिम कुंतलजूट, मिथ्या रत्नाभारण और विविध वर्ण वसन से भूषित, क्षीण कटिदेश कसे, निज निज पति गण के साथ, प्रसन्न बदन इधर से उधर फर-फर कल की पुतली की भांति फिरती हुई दिखलाई पड़ती हैं; तब इस देश की सीधी सीधी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझ को स्मरण आती है और यही बात मेरे दुःख का कारण होती है। इस से यह शंका किसी को न हो कि मैं स्वप्न में भी यह इच्छा करता हूं कि इन गौरांगी युवती समूह की भांति हमारी कुललक्ष्मी गण भी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के साथ घूमैं; किन्तु और बातों में जिस भांति अंगरेजी स्त्रियां सावधान होती हैं, पढ़ी लिखी होती हैं, घर का काम काज संभालती हैं, अपने सन्तान गण को शिक्षा देती हैं; अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति विपत्ति को समझती हैं, उस में सहायता देती हैं, और इतने समुन्नत मनुष्य जीवन को व्यर्थ ग्रहदास्य और कहल ही में नहीं खोतीं, उसी भांति हमारी गृह देवता भी वर्त्तमान हीनावस्था को उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करैं, यही लालसा है। इस उन्नति पथ का अवरोधक हम लोगों की वर्त्तमान कुल परंपरा मात्र है और कुछ नहीं। आर्य्य जन मात्र को विश्वास है कि हमारे यहां सर्व्वदा स्त्रीगण इसी अवस्था में थीं। इस विश्वास के भ्रम को दूर करने ही के हेतु यह ग्रन्थ विरचित हो कर आप लोगों के कोमल कर कमलों में समर्पित होता है। निवेदन यही है कि आप लोग इन्हीं पुण्यरूप स्त्रियों के चरित्र को पढ़ैं, सुनैं और क्रम से यथाशक्ति अपनी वृद्धि करैं।

ग्रन्थकर्त्ता

25 दिसम्बर 1881

पहिला अंक

स्थान–हिमगिरि का शिखर

[तीन अप्सरा गान करती हुई दिखाई देती हैं]

अप्सरागण : (झिंझौटी जल्द तिताला)

धन धन भारत की छत्रानी।
वीर कन्यका वीर प्रसविनी वीर वधू जग जानी॥
सती सिरोमनि धरमधुरन्धर बुद्धि बल धीरज खानी।
इन के जस की तिहूं लोक में अमग धुजा फहरानी॥

सब मिलि गाओ प्रेम बधाई।
यह संसार रतन इक प्रेमहिं और बादि चतुराई॥
प्रेम बिना फीकी सब बातैं कहहु न लाख बनाई।
जोग ध्यान जप तप व्रत पूजा प्रेम बिना बिनसाई॥
हाव भाव रस रंग रीति बहु काव्य केलि कुसलाई।
बिना लोन बिंजन सो सबही प्रेम रहित दरसाई॥
प्रेमहि सो हरिहू प्रगटत हैं जदपि ब्रह्म जगराई।
तासों यह जग प्रेमसार है और न आन उपाई॥

[जवनिका गिरती है[

●

दूसरा अंक

स्थान–युद्ध के डेरे खड़े हैं

[एक शामियाने के नीचे अमीर अब्दुश्शरीफ खां सूर बैठा है और मुसाहिब लोग इर्द गिर्द बैठे हैं]

शरीफ : **(एक मुसाहिब से)** अब्दुस्समद! खूब होशियारी से रहना। यहां के राजपूत बड़े काफिर हैं। इन कमबख्तों से खुदा बचाए। **(दूसरे मुसाहिब से)** मलिक सज्जाद! तुम शब के पहरों का इन्तिजाम अपने जिम्मे रक्खो ऐसा न हो कि सूरजदेव शबेखून मारे। **(काजी से)** काजी साहब! मैं आप से क्या बयान करूं, वल्लाही सूरजदेव एक ही बदबला है। इहातए पंजाब में ऐसा बहादुर दूसरा नहीं।

काजी : बेशक हुजूर! सुना गया है कि वह हमेशा खेमों ही में रहता है। आसमान शामियाना और जमीन ही उसे फर्श है। हजारों राजपूत उसे हर वक्त घेरे रहते हैं।

शरीफ : वल्लाह तुम ने सच कहा, अजब बदकिरदार से पाला पड़ा, जान तंग है। किसी तरह यह कमबख्त हाथ आता तो और राजपूत खुद बखुद पस्त हो जाते।

एक मुसाहिब : खुदावन्द! हाथ आना दूर रहा, उस के खौफ से अपने खेमे में रह कर भी खाना सोना हराम हो रहा है।

शरीफ : कभी उस बेईमान से सामने लड़ कर फतह नहीं मिलनी है। मैंने तो अब जी में ठान ली है कि मौका पाकर एक शब उस को सोते हुए गिरफ्तार कर लाना। और अगर खुदा को इस्लाम की रोशनी का जल्वा हिन्दुस्तान जुल्मत निशान में दिखलाना मंजूर है तो बेशक मेरी मुराद बर आयगी।

काजी : इन्शा अलाह तआला।

शरीफ : कसम है कलामे शरीफ की, मेरी खुराक आगे से इस तफक्कुर में आधी हो गई है। **(सब लोगों से)** देखो, अब मैं सोने जाता हूं तुम सब लोग होशियार रहना।

[गजल]

(उठ कर सब की तरफ देख कर)

इस राजपूत से रहो हुशियार खबरदार।
गफ़लत न जरा भी हो खबरदार खबरदार॥
ईमां की कसम दुश्मने जानी है हमारा।
काफ़िर है ये पंजाब का सरदार खबरदार॥
अजदर है भभूका है जहन्नुम है बला है।
बिजली है गजब इसकी है तलवार खबरदार॥
दरबार में वह तेगे शररबार न चमके।
घरबार से बाहर से भी हर बार खबरदार॥
इस दुश्मने ईमां को है धोखे से फंसाना।
लड़ना न मुकाबिल कभी जिनहार खबरदार॥

[सब जाते हैं]

[जवनिका गिरती है]

●

तीसरा अंक

स्थान—पहाड़ की तराई

[राजा सूर्य्यदेव, रानी नीलदेवी और चार राजपूत बैठे हैं]

सूर्य्यदेव : कहो भाइयो! इन मुसलमानों ने तो अब बड़ा उपद्रव मचाया है।

पहला राजपूत : तो महाराज! जब तक प्राण है तब तक लड़ैंगे।

दूसरा राजपूत : महाराज! जय पराजय जो परमेश्वर के हाथ है परन्तु हम अपना धर्म्म तो प्राण रहे तक निबाहैं ही गे।

सूर्य्यदेव : हां हां, इस में क्या सन्देह है। मेरा कहने का मतलब यह है कि सब लोग सावधान रहैं।

तीसरा राजपूत : महाराज! सब सावधान हैं। धर्म्म युद्ध में तो हम को जीतनेवाला कोई पृथ्वी पर नहीं है।

नीलदेवी : पर सुना है कि ये दुष्ट अधर्म्म से बहुत लड़ते हैं।

सूर्य्यदेव : प्यारी। वे अधर्म्म से लड़ैं, हम तो अधर्म्म नहीं न कर सकते। हम आर्य्यवंशी लोग धर्म्म छोड़ कर लड़ना क्या जानैं? यहां तो सामने लड़ना जानते हैं। जीते तो निज भूमि का उद्धार और मरे तो स्वर्ग। हमारे तो दोनों हाथ लड्डू हैं; और यश तो जीतैं तो भी हमारे साथ है और मरैं तो भी।

चौथा राजपूत : महाराज। इस में क्या सन्देह है, और हम लोगों को एकाएकी अधर्म्म से भी जीतना कुछ दाल भात का गस्सा नहीं है।

नीलदेवी : तो भी इन दुष्टों से सदा सावधान ही रहना चाहिए। आप लोग सब तरह चतुर हो, मैं इस में विशेष क्या कहूं स्नेह कुछ कहलाए बिना नहीं रहता।

सूर्य्यदेव : (आदर से) प्यारी। कुछ चिन्ता नहीं है! अब तो जो कुछ होगा देखा ही जायगा न। (राजपूतों से)।

सावधान सब लोग रहहु सब भांति सदाहीं।
जागत ही सब रहैं रैन हूं सोअहिं नाहीं॥

कसे रहैं कटि रात दिवस सब बीर हमारे।
अस्वपीठ सो होहिं चारजामें जिनि न्यारे॥
तोड़ा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बंदूकन।
रहै खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरें छन॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर यवन बहादुर।
आवहिं तो चढ़ि सनमुख कायर कूर सबै जुर॥
दैहें रन को स्वाद तुरन्तहि तिनहिं चखाई।
जो पै इक छन हू सनमुख ह्वै करिहिं लराई॥

[जवनिका गिरती है]

●

चौथा अंक

स्थान–सराय

[भठियारी, चपरगट्टू खां और पीकदान अली]

चपरगट्टू खां : क्यौं भाई अब आज तो जशन होगा न? आज तो वह हिन्दू न लड़ैगा न।

पीकदान अली : मैंने पक्की खबर सुनी है। आज ही तो पुलाव उड़ने का दिन है।

चपरगट्टू खां : भई, मैं तो इसी से तीन चार दिन दरबार में नहीं गया। सुना वे लोग लड़ने जायंगे। मैंने कहा जान थोड़ी ही भारी पड़ी है। यहां तो सदा भागतों के आगे मारतों के पीछे। जबान, तेग कहिए दस हजार हाथ झारूं।

पीकदान अली : भई, इसी से तो कई दिन से मैं भी खेमों की तरफ नहीं गया। अभी एक हफ्ता हुआ मैं उस गांव में एक खानगी है उस के यहां से चला आता था कि पांच हिन्दुओं के सवारों ने मुझे पकड़ लिया और तुरक तुरक करके लगे चपतियाने। मैंने देखा कि अब तो बेतरह फंसे मगर वल्लाह मैंने भी अपने कौम और दीन की इतनी मजम्मत और हिन्दुओं की इतनी तारीफ की कि उन लोगों को छोड़ते ही बन आई। ले ऐसे मौके पर और क्या करता? मुसलमानी के पीछे अपनी जान देता?

चपरगट्टू खां : हां जी किसकी मुसलमानी और किसका कुफ्र। यहां अपने मांडे हलुए से काम है।

भठियारी : तो मियां आज जशन में जाना तो देखो मुझ को भूल मत जाना। जो कुछ इनआम मिलै उस में भी कुछ देना। हां! देखो मैंने कई दिन खिदमत की है।

पीकदान अली : जरूर जरूर जान छल्ला। यह कौन बात है। तुम्हारे ही वास्ते तो जी पर खेल कर यहां उतरे हैं। **(चपरगट्टू से कान में)** यह सुनिए, जान झोकें हम माल चाभैं बी भटियारी। यह नहीं जानतीं कि यहां इनकी ऐसी ऐसी हजारों चराकर छोड़ दी हैं।

चपरगट्टू खां : **(धीरे से)** अजी कहने दो, कहने से कुछ दिए ही थोड़े देते हैं। भठियारी हो चाहे रंडी आज तक तो किसी को कुछ दिया नहीं है, उलटा इन्हीं लोगों का खा गए है। **(भठियारी से)** वाह जान वाह जान साहब! तुम जब मांगोगी तब देंगे। रुपया पैसा कौन चीज है, जान तक हाजिर है। जब कहो गरदन काट कर सामने रख दूं। **(खूब घूरता है)**

भठियारी : **(आंखें नचा कर)** तो मैं भी तो मियां की खिदमत से किसी तरह बाहर नहीं हौं।

[दोनों गाते हैं]

पिकदानो चपरगट्टू है बस नाम हमारा।
इक मुफ्त का खाना है सदा काम हमारा॥
उमरा जो कहै रात हो हम चांद दिखा दें।
रहता है सिफारिश से भरा जाम हमारा॥
कपड़ा किसी का खाना कहीं सोना किसी का।
गैरों ही से है सारा सरंजाम हमारा॥
हो रंज जहां पास न जाएं कभी उसके।
आराम जहां हो है वहां काम हमारा॥
जर दीन है कुरआन है ईमां है नबी है।
जर ही मेरा अल्लाह है जर राम हमारा॥

भठियारी : ले मैं तो मियां के वास्ते खाना बनाने जाती हूं।

पीकदान अली : तो चलो भाई, हम लोग भी तब तक जरा, 'रहे लाखों बरस साकी तेरा आबाद मैखाना'।

चपरगट्टू खां : चलो।

[जवनिका गिरती है]

●

पांचवां अंक

स्थान—सूर्य्यदेव के डेरे का बाहरी प्रान्त।

[रात्रि का समय]

[देवा सिंह सिपाही पहरा देता हुआ घूमता है]

नेपथ्य में गान

[राग कलिंगड़ा]

सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन।
नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे,
सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन।
भई आधी रात बन सनसनात,
पथ पंछी कोउ आवत न जात॥
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात,
पातहु नहिं पावत तरुन हलन।
झलमलत दीप सिर धुनत आय,
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय॥
सतरात अंग आलस जनाय,
सनसन लगी सिरी पवन चलन॥
सोए जग में सब नींद घोर, जागत कामी चिंतित चकोर।
बिरहिन बिरही पाहरू चोर, इन कहं छन रैनहूं हाय कलन॥

सिपाही : बरसों घर छूटे हुए। देखैं कब इन दुष्टों का मुंह काला होता है। महाराज घर फिरकर चलैं तो देस फिर से बसै। रामू की मां को देखे कितने दिन हुए। बच्चा की खबर तक नहीं मिली **(चौंक कर ऊंचे स्वर से)** कौन है? खबरदार जो किसी ने झूठमूठ भी इधर देखने का विचार किया। **(साधारण स्वर से)** हां—कोई यह न जानै कि देवा सिंह इस समय जोरू लड़कों की याद करता है। इस से भूला है। क्षत्री का लड़का है। घर की याद आवै तो और प्राण छोड़ कर

लड़ै। (पुकार कर) खबरदार। जागते रहना।

[इधर उधर फिर कर एक जगह बैठ कर गाता है]

[कलिंगड़ा]

प्यारी बिन कटत न कारी रैन,
पल छिन न परत जिय हाय चैन।
तन पीर बढ़ी सब छुट्यो धीर,
कहि आवत नहिं कछु मुखहु बैन॥
जिय तड़फड़ात सब जरत गात,
टप टप टपकत दुख भरे नैन।
परदेश परे तजि देश हाय,
दुख मेटन हारो कोउ है न॥
सजि विरह सैन यह जगत जैन,
मारत मरोरि मोहि पापी मैन।
प्यारी बिन कटत न कारी रैन॥

कौन है। यह कैसा शब्द आता है। खबरदार।

[नेपथ्य में विशेष कोलाहल]

(घबड़ा कर) हैं यह क्या है? अरे, क्यौं एक साथ इतना कोलाहल हो रहा है। बीर सिंह! बीर सिंह। जागो। गोविन्द सिंह दौड़ो!

[नेपथ्य में बड़ा कोलाहल और मार मार का शब्द। शस्त्र खींचे हुए अनेक यवनों का प्रवेश। अल्ला अकबर का शब्द। देवा सिंह का युद्ध और पतन। यवनों का डेरे में प्रवेश।]

[जवनिका गिरती]

●

छठां अंक

स्थान—अमीर का खेमा

[मसनद पर अमीर अब्दुश्शरीफ खां सूर बैठा है इधर उधर मुसलमान लोग हथियार बांधे मोछ पर ताव देते बड़ी शान से बैठे हैं]

अमीर : अलहमदुलिल्लाह! इस कम्बख्त काफिर को तो किसी तरह गिरफ्तार किया। अब बाकी फौज भी फतह हो जायगी।

एक सरदार : ऐ हुजूर, जब राजा ही कैद हो गया तो फौंज क्या चीज है। खुदा और रसूल के हुक्म से इस्लाम की हर जगह फतह है। हिन्दू हैं क्या चीज। एक तो खुदा की मार दूसरे बेवकूफ आनन फानन में सब जहन्नुमरसीद होंगे।

दूसरा सरदार : खुदाबन्द! इस्लाम के आफताब के आगे कुफ्र की तारीकी कभी ठहर सकती है? हुजूर, अच्छी तरह से यकीन रक्खैं कि एक दिन ऐसा आवैगा जब तमाम दुनिया में ईमान का जिल्वा होगा। कुफ्फार सब दाखिले दोजख होंगे और पयगंबरे आखिरूल जमां सल्लरुल्लाह अल्लैहुम्सल्लम का दीन तमाम रूए जमीन पर फैल जायगा।

अमीर : आमीं आमीं।

काजी : मगर मेरी राय है कि और गुफ्तगू के पेश्तर शुकरिया अदा किया जाय क्यौंकि जिस हकतआला की मिहरबानी से यह फतह हासिल हुई हैं। सब के पहिले उस खुदा का शुक्र अदा करना जुरूरी है।

सब : बेशक, बेशक।

[काजी उठ कर सब के आगे घुटने के बल झुकता है और फिर अमीर आदि भी उस के साथ झुकते हैं]

काजी : (हाथ उठा कर) काफिर पै मुसल्मां को फतहयाब बनाया।

सब : (हाथ उठा कर) अलहमूद् उलिल्लाह।

काजी : की मेह बड़ी तूने य बस मेरे खुदाया।

सब : अलहमूद् उलिल्लाह।

काजी : सदके में नवी सैयदे मक्की मदनी के, अतफाले अली के, असहाब

के, लश्कर मेरा दुश्मन से बचाया।

सब : अलहमूद् उलिल्लाह।

काजी : खाली किया इक आन में दैरों को सनम से, शमशीर दिखा के, बुतखाना : गिरा कर के हरम तूने बनाया।

सब : अलहमूद् उलिल्लाह।

काजी : इस हिन्द से दूर हुई कुफ्र की जुल्मत, की तूने वह रहमत, नक्कार ईमां को हरेक सित्म बजाया।

सब : अलहमूद् उलिल्लाह।

काजी : गिर कर न उठे काफिरे बदकार जमीं से, ऐसे हुए गारत। आमीं कहो।

सब : आमीं।

काजी : मेरे महबूब खूदाया।

सब : अलहमूद् उलिल्लाह।

[जवंनिका गिरती है]

●

सातवां अंक

स्थान—कैदखाना

[महाराज सूर्य्यदेव एक लोहे के पिंजड़े में मूर्छित पड़े हैं। एक देवता सामने खड़ा होकर गाता है।]

(लावनी)

देवता : सब भांति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा॥
अब सुख सूरज को उदय नहीं इत स्वैहै।
सो दिन फिर इत समनेहूं नहिं ऐहै॥
स्वाधीनपनो बल धीरज सबहि नसैहै।
मंगलमय भारत भुव मसान स्वै जैहै॥
दुःख ही दुःख करिहै चारहु ओर प्रकासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा॥
इत कलह विरोध सबन के हिय घर करिहै।
मूरखता को तम चारहु ओर पसरिहै॥
वीरता एकता ममता दूर सिधरिहै।
तजि उद्यम सब ही दास वृत्ति अनुसरिहै॥
स्वै जैहै चारहु बरन शूद्र बनि दासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा॥
स्वैहैं सब इतके भूत पिशाच उपासी।
कोऊ बनि जैहैं आपुहि स्वयं प्रकासी॥
नसि जैहैं सगरे सत्य धर्म अविनासी।
निज हरि सों स्वैहैं बिमुख भरत भुवबासी॥
तजि सुपथ सबहि जन करिहैं कुपथ बिलासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा॥
अपनी वस्तुन कहं लखिहैं सबहि पराई।
निज चाल छोड़ि गहिहैं औरन की धाई॥

तुरकन हित करिहैं हिन्दू संग लराई।
यवनन के चरनहिं रहिहैं सीस चढ़ाई॥
तजि निज कुल करिहैं नीचन संग निवासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा॥
रहे हमहुं कबहुं स्वाधीन आर्य्य बल धारी।
यह देहैं जिय सों सबही बात बिसारी॥
हरि विमुख, धरम बिनु धन बलहीन दुखारी।
आलसी मन्द तन छीन दुधित संसारी॥
सुख सों सहिहैं सिर यवन पादुका त्रासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा॥

[जाता है]

सूर्य्यदेव : (सिर उठा कर) यह कौन था? इस मरते हुए शरीर पर इसने अमृत और विष दोनों एक साथ क्यौं बरसाया? अरे, अभी तो यहां खड़ा गा रहा था, अभी कहां चला गया? निस्सन्देह यह कोई देवता था। नहीं तो इस कठिन पहरे में कौन आ सकता है। ऐसा सुन्दर रूप और ऐसा मधुर सुर और किसका हो सकता है। क्या कहता था? 'अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा' ऐं! यह देव वाक्य क्या सचमुच सिद्ध होगा? क्या अब भारत का स्वाधीनता सूर्य्य फिर न उदय होगा? क्या हम क्षत्रिय राजकुमारों को भी अब दासवृत्ति करनी पड़ैगी? हाय! क्या मरते मरते भी हम को यह वज्र शब्द सुनना पड़ा? और क्या कहा 'सुख सों सहिहैं सिर यवन पादुका त्रासा।' हाय! क्या अब यहां यही दिन आवैंगे? क्या भारत जननी अब एक भी बीर पुत्र न प्रसव करैगी? क्या दैव को अब इस उत्तम भूमि की यही नीच गति करनी है? हा! मैं यह सुन कर क्यौं नहीं मरा कि आर्य्यकुल की जय हुई और यवन सब भारतवर्ष से निकाल दिए गए। हाय!

[हाय हाय करता और रोता हुआ मूर्छित हो जाता है]

[जवनिका गिरती है]

●

आठवां अंक

स्थान—मैदान वृक्ष

[एक पागल आता है]

पागल : मार मार मार, काट काट, ले ले ले, ईबी, सीबी, बीबी, तुरक तुरक तुरक, अरे आया आया आया, भागो भागो। (दौड़ता है) मार मार मार, और माद दे मार, जाय न जाय न, दुष्ट चांडाल गोभक्षी जवन, अरे हां रे जवन लाल डाढ़ी का जवन, बिना चोटी का जवन, हमारा सत्यानाश कर डाला। हमारा हमारा हमारा। इसी ने इसी ने, लेना जाने न पावै। दुष्ट म्लेच्छ हुं! हम को राजा बनावैगा। छत्र चंवर मुरछल सिंहासन सब, पर जवन का दिया, मार मार मार, शस्त्र न हो तो मन्त्र से मार। मार मार मार। हां हीं हंव फट चट पट, जवन पट, चट, छट पट, आं ई ऊं आकाश बांध पाताल, चोटी कटा निकाल। हां हीं हौं, जवन जवन मारय मारय उच्चाटय...बेधय बेधय ...नाशय नाशय फांसय...फांसय, त्रासय त्रासय...स्वाहा फूःसब जवन स्वाहा फूः, अब भी नहीं गया? मार मार मार। हमारा देश, हम राजा हम रानी। हम मन्त्री। हम प्रजा। और कौन? मार मार मार। तलवार तलवार। टूट गई टूटी। टूटी से मार। ढेले से मार। हाथ से मार। मुक्का जूता लात लाठी सोंटा ईंटा पत्थर, पानी सबसे मार हम राजा हमारा देश हमारा भेस हमारा पेड़ पत्ता कपड़ा लत्ता छाता जूता सब हमारा। ले चला ले चला। मार मार मार, जाय न जाय न, सूरज में जाय चन्द्रमा में जाय तारा में जाय उतारा में जाय पारा में जाय जहां जाय वहीं पकड़, मार मार मार। मीयां मीयां मीयां चीयां चीयां चीयां। अल्ला अल्ला अल्ला, हल्ला हल्ला हल्ला। मार मार मार। लोहे की नाती की दुम से मार पहाड़ की स्त्री के दिये से मार, मार मार, अंड का बंड का संड का खंड, धूप छांह चना मोती अगहन पूस माघ कपड़ा लत्ता डोम चमार मार मार। ईंट की आंख में हाथी का बान, बंदर की थैली में चूने की कमान, मार मार मार, एक

एक एक, मिल मिल मिल, छिप छिप छिप, खुल खुल खुल, मार मार मार, ।

[एक मियां को आता देख कर]

मार मार मार, मुसल मुसल मुसल, मान मान मान, सलाम सलाम सलाम कि मार मार मार, नबी नबी नबी, सबी सबी सबी, ऊंट के अंड़े की चरबी का खर। कागज के धप्पे कर, सप्पे की सर, मार मार मार।

[मियां के पास जा कर]

तुरुक तुरुक तुरुक, घुरुक घुरुक घुरुक, मुरुक मुरुक मुरुक, फुरुक फुरुक फुरुक। याम शाम लीम लाम लाम ढाम।

[मियां को पकड़ने को दौड़ता है]

मियां : **(आप ही आप)** यह हो बड़ी हत्या लगी। इससे कैसे पिंड छूटैगा, **(प्रकट)** दूर दूर।

पागल : दूर दूर दूर, चूर चूर चूर, मियां की दाढ़ी में दोजख की हूर, दन तड़ाक छू मियां की माई में मोयीं की मूं, मार मार मार मियां छार छार।

[मियां के पास जा कर अट्टहास कर के]

रावण का साला दुर्योधन का भाई अमरूद के पेड़ की पसेरी बनाता है, अच्छा अच्छा, नहीं नहीं तैने तो हम को उस दिन मारा था, न! हां हां यही है यही जाने न पावै। मार मार, ।

[मियां की गरदन पकड़ कर पटक देता है और छाती पर चढ़ कर बैठता है]

रावण का साला! दिल्ली का नवाब वेद की किताब, बोल हम राजा कि तू राजा, **(मियां की दाढ़ी पकड़ कर खींचने से कृत्रिम दाढ़ी निकल आती है। विष्णु शर्मा को पहिचान कर अलग हो जाता है)** रावण का साला मियां का भेस, विष्णु के कान में शर्मा का केस। मेरी शक्ति, गुरु की भक्ति, फुरो मन्त्र ईश्वरोवाच दाढ़ी जगावैं तो मियां सांच।

[आंख से इंगित करता है]

मियां : **(फिर दाढ़ी लगा कर)** लाहौलवलाकूअत! क्या बेखबर पागल है, इस के घर के लोग इस के लौटने के मुन्तजीर हैं यह यहीं पड़ा है।

पागल : पड़ा घड़ा सड़ा, घूम घाम जड़ा, एक एक बात, जात सात धात, नास नास नास, घास छास फास।

मियां : क्या सचमुच, दरहकीकत, यह बड़ा भारी पागल है।

पागल : सचमुच नास, राजा अकास, ढाल बे ढाल मियां मतवाला।
(आंख से दूर जाने को इंगित करता है। मियां आगे बढ़ते हैं, यह पीछे धूल फेंकता हुआ दौड़ता है)
मार मार मार। बरसा की धार। लेना जाने न पावै। मियां का खच्चर।

[दोनों एकान्त में जा कर खड़े होते हैं]

मियां : **(चारों ओर देख कर)** अरे वसन्त! क्या सचमुच सर्वनाश हो गया?

पागल : पंडित जी! कल सबेरी रात ही महाराज ने प्राण त्याग किये।

[रोता है]

मियां : हाय! महाराज, हम लोगों को आप किस के भरोसे छोड़ गए! अब हम को इन नीचों का दासत्व भोगना पड़ैगा! हाय हाय! **(चारों ओर देख कर)** हां, समाचार तो कहो, क्या हुआ।

पागल : कल उन दुष्ट यवनों ने महाराज से कहा कि तुम जो मुसलमान हो जाओ तै हम तुम को अब भी छोड़ दें। इस समय वह दुष्ट अमीर भी वहीं खड़ा था। महाराज ने लोहे के पिंजड़ें में से उस के मुंह पर थूक दिया, और क्रोध कर के कहा कि दुष्ट! हम को पिंजड़े में बन्द और परवश जानकर ऐसी बात कहता है। क्षत्री कहीं प्राण के भय से दीनता स्वीकार करते हैं। तुझ पर थू और तेरे मत पर थू।

मियां : **(घबड़ा कर)** तब तब?

पागल : इस पर सब यवन बहुत बिगड़े। चारों ओर से पिंजड़े के भीतर शस्त्र फेंकने लगे। महाराज ने कहा इस बन्धन में मरना अच्छा नहीं। बड़े बल से लोहे के पिंजड़े का डंडा खींचकर उखाड़ लिया और पिंजड़े से बाहर निकल उसी लोहे के डंडे से सत्ताईस यवनों को मार कर उन दुष्टों के हाथ से प्राण त्याग किए। हाय!

[रोता है]

मियां : **(चारों ओर देख कर)** और अब क्या होता है? महाराज का शरीर कहां है? तुम ने यह सब कैसे जाना?

पागल : सब इन्हीं दुष्टों के मुख से सुना। इसी भेस में घूमते हैं। महाराज का शरीर अभी पिंजड़े में रक्खा है। कल जशन होगा। कल सब शराब पीकर मस्त होंगे। **(चारों ओर देख कर)** कल ही अवसर है।

मियां : तो कुमार सोमदेव और महारानी से हम जाकर यह वृत्त कह देते हैं। तुम इन्हीं लोगों में रहना।

पागल : हां हम तो यहीं हैं। **(रो कर)** हम अब स्वामी के बिना वहां जाकर ही क्या करैंगे।

मियां : हाय! अब भारतवर्ष की कौन गति होगी? अब त्रैलोक्य ललाम सुता भारत कमलिनी को यह दुष्ट यवन यथासुख दलन करैंगे। अब स्वाधीनता का सूर्य्य हम लोगों में फिर न प्रकाश करैगा। हाय! परमेश्वर तू कहां सो रहा है। हाय! धार्मिक वीर पुरुष की यह गति!

[उदास स्वर से गाता है]

(विहाग)

कहां करुनानिधि केसव सोए!
जागत नेकु न यदपि बहुत विधि भारतबासी रोए॥
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराए।
इत के पसु गज को आरत लखि आतुर प्यादे धाए॥
इक इक दीन हीन नर के हित तुम दुःख सुनि अकुलाई।
अपनी सम्पति जानि इनहि तुम रह्यौ तुरन्तहिं धाई॥
प्रलय काल सम जौन सुदरसन असुर प्रान संहारी।
ताकी धार भई अब कुंठित हमरी बेर मुरारी॥
दुष्ट जवन बरबर तुव सन्तति घास साग सम काटैं।
एक एक दिन सहस सहस नर सीस काटि भुव पाटैं॥
ह्वै अनाथ आरत कुल बिधवा बिलपहिं दीन दुखारी।
बल करि दासी तिनहिं बनावहिं तुम नहिं लजत खरारी॥
कहां गए सब शास्त्र कही जिन भारी महिमा गाई।
भक्तबछल करुनानिधि तुम कहं गयो बहुत बनाई॥
हाय सुनत नहिं निठुर भए क्यौं परम दयाल कहाई।
सब बिधि बूड़त लखि निज देसहि लेहु न अबहुं बचाई॥

[दोनों रोते हैं]

[जवनिका गिरती है]

●

नवां अंक

स्थान—राजा सूर्य्यदेव के डेरे

[एक भीतरी डेरे में रानी नीलदेवी बैठी हैं और बाहरी डेरे में क्षत्री लोग पहरा देते हैं]

नीलदेवी : (गाती और रोती)

तजी मोहि काके ऊपर नाथ।
मोहि अकेली छोड़ि गए तजि बालपने के साथ॥
याद करहु जो अगिनि साखि दै पकर्‌यौ मेरो हाथ।
सो सब मोह आज तजि दीनो कीनो हाय अनाथ॥1॥
प्यारे क्यौं सुधि हाय बिसारी?
दीन भई बिड़री हम डोलत हा हा होय तुमारी॥
कबहुं कियो आदर जा तन को तुम निज हाथ पियारे।
ताही की अब दीन दशा यह कैसे लखत दुलारे॥
आदर के धन सम जा तन कहं निज अंकन तुम धार्‌यौ।
ताही कहं अब पर्‌यौ धूर में कैसे नाहिं निहार्‌यौ॥2॥
प्यारे कितै गई सो प्रीति?
निठुर होइ तजि मोहि सिधारे नेह निबाहन रीति॥
कह्‌यो रह्‌यो जो छिन नहिं तजिहैं मानहु वचन प्रतीति।
सो मोहि जीवन लौं दुःख दीनो करी हाय विपरीति॥3॥

[कुमार सोमदेव चार पूतों के साथ बाहरी डेरे में आते हैं]

सोमदेव : भाइयो, महाराज का समाचार तो आप लोगों ने सुना। अब कहिए क्या कर्त्तव्य है? मेरी तो शोक से मति विकल हो रही है। आप लोगों की जो अनुमति हो, किया जाय।

पहला राजपूत : कुमार, आप ऐसी बात कहैंगे कि शोक से मति विकल हो रही है तो भारतवर्ष किसका मुंह देखैगा। इस शोक का उत्तर हम लोग अश्रुधारा से न देकर कृपाण धारा से देंगे।

दूसरा राजपूत : बहुत अच्छा!!! उन्मत्त सिंह तुम ने बहुत अच्छा कहा। इन दुष्ट

चांडाल यवनों के रुधिर से हम जब तक अपने पितरों का तर्पण न कर लेंगे हम कुमार की शपथ कर के प्रतिज्ञा कर के कहते हैं कि हम पितृऋण से कभी उऋण न होंगे।

तीसरा राजपूत: शाबाश! विजय सिंह ऐसा ही होगा। चाहे हमारा सर्वस्व नाश हो जाय परन्तु आकल्पान्त लोह लेखनी से हमारी यह प्रतिज्ञा दुष्ट यवनों के हृदय पर लिखी रहैगी। धिक्कार है उस क्षत्रियाधम को जो इन चांडालों के मूल नाश में न प्रवृत्त हो।

चौथा राजपूत : शत बार धिक्कार है! सहस्र बार धिक्कार है, उस को जो मनसा वाचा कर्मणा किसी तरह इन का पुरुषों से डरै। लक्ष बार, कोटि बार कोटि बार धिक्कार है उस को जो इन चांडालों के दमन करने में तृण मात्र भी त्रुटि करैं। **(बायां पैर आगे बढ़ा कर)** म्लेच्छ कुल के और उस के पक्षपातियों के सिर पर यह मेरा बायां पैर है जो शरीर के हजार टुकड़े होने तक ध्रुव की भांति निश्चल है। जिस पामर को कुछ भी सामर्थ्य हो हटावै।

सोमदेव : धन्य आर्य्यवीर पुरुषगण! तुम्हारे सिवा और कौन ऐसी बात कहैगा। तुम्हारी ही भुजा के भरोसे हम लोग राज्य करते हैं। यह तो केवल तुम लोगों का जी देखने को मैंने कहा था। पिता की वीरगति का शोच किस क्षत्रिय को होगा? हां जो हम लोग इन दुष्ट यवनों का दमन न करके दासत्व स्वीकार करैं तो निस्सन्देह दुःख हो। **(तलवार खींच कर)** भाइयों, चलो इसी क्षण हम लोग उस पामर नीच यवन के रक्त से अपने आर्य्य पितरों को तृप्त करैं।

चलहु बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सो खंग खींचि रनरंग जमाओ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ।
केसरिया बानो सजि सजि रनकंकन बांधौ॥
जौ आरज गन एक होइ निज रूप सम्हारैं।
तजि गृह कलहहि अपनी कुल मरजाद विचारैं॥
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंह जगे कहुं स्वान ठहरिहैं समर मंझारी॥
पदतल इन कहं दलहु कीट त्रिन सरिस जवनचय।
तनिकहु संक न करहु धर्म्म जित जय तित निश्चय॥
आर्य्य वंश को बधन पुन्य जा अधर्म्म धर्म्म मैं।
गोभक्षन द्विज श्रुति हिंसन नित जास कर्म्म मैं॥

तिनकौ तुरितहिं हतौ मिलैं रन के घर माहीं।
इन दुष्टन सों पाप किएहुं पुन्य सदाहीं॥
चिउंटिहु पदतल दबे डसत स्वै तुच्छ जन्तु इक।
ये प्रतच्छ, अरि इनहिं उपेछै जौन ताहि धिक॥
धिक तिन कहं जे आर्य्य होइ जवनन को चाहैं।
धिक तिन कहं जे इन सों कछु सम्बन्ध निवाहैं॥
उठहु बीर तरवार खींचि मारहु घन संगर।
लोह लेखनी लिखहु आर्य्य बल जवन हृदय पर॥
मारू बाजे बजैं कहौं धौंसा घहराहीं।
उड़हिं पताका सत्रु हृदय लखि लखि थहराहीं॥
चारन बोलहिं आर्य्य सुजस बन्दी गुन गावैं।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बन्दूक चलावैं॥
चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर।
हींसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर॥
छन महं नासहिं आर्य्य नीच जवनन कहं करि छय।
कहहुं सबै भारत जय भारत जय भारत जय॥

सब बीर : भारतवर्ष की जय, आर्य्यकुल की जय, महाराज सूर्य्यदेव की जय, महारानी नीलदेवी की जय, कुमार सोमदेव की जय, क्षत्रिय वंश की जय।

[आगे आगे कुमार उसके पीछे तलवार खींच कर क्षत्रिय चलते हैं। रानी नीलदेवी बाहर के घर में आती हैं]

नीलदेवी : पुत्र की जय हो। क्षत्रिय कुल की जय हो। बेटा एक बात हमारी सुन लो तब युद्ध यात्रा करो।

सोमदेव : (रानी को प्रणाम कर के) माता! जो आज्ञा हो।

नीलदेवी : कुमार, तुम अच्छी तरह जानते हो कि यवन सेना कितनी असंख्य है और यह भी भलीभांति जानते हो कि जिस दिन महाराज पकड़े गए, उसी दिन बहुत से राजपूत निराश होकर अपने अपने घर चले गए। इस से मेरी बुद्धि में यह बात आती है कि इन से एक ही बेर सम्मुख युद्ध न करके कौशल से लड़ाई करना अच्छी बात है।

सोमदेवता : (कुछ क्रोध कर के) तो क्या हम लोगों में इतनी सामर्थ्य नहीं कि यवनों को युद्ध में लड़ कर जीतें?

सब छत्री : क्यौं नहीं?

नीलदेवी : (शान्त भाव से) कुमार, तुम्हारी सर्व्वदा जय है। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कहीं पराजय नहीं है। किन्तु मां की आज्ञा मानना भी तो

तुम को योग्य है।

सब क्षत्री : अवश्य अवश्य।

सोमदेव : (हाथ जोड़ कर) मां, जो आज्ञा होगी वही करुंगा।

नीलदेवी : अच्छा सुनो।

[पास बुला कर कान में सब विचार कहती हैं]

सोमदेव : जो आज्ञा।

[एक ओर से कुमार और दूसरी ओर से रानी जाती हैं]

[जवनिका गिरती है]

●

दसवां अंक

स्थान–अमीर की मजलिस

[अमीर गद्दी पर बैठा है। दो चार सेवक खड़े हैं। दो चार मुसाहिब बैठे हैं। सामने शराब के पियाले; सुराही, पानदान, इतरदान रक्खी है। दो गवैये सामने गा रहे हैं। अमीर नशे में झूमता है]

गवैये

गवैये : आज यह फतूह की दरबार मुबारक होए।
मुल्क यह तुझ को शहरयार मुबारक होए॥
शुक्र सद शुक्र की पकड़ा गया वह दुश्मने दीन।
फतूह अब हमको हरेक बार मुबारक होए॥
हम को दिन रात मुबारक हो फतूह ऐशो उरूज।
काफिरों को सदा फिटकार मुबारक होए॥
फतूहे पंजाब से सब हिन्द की उम्मीद हुई।
मोमिनो नेक आसार मुबारक होए॥
हिन्दू गुमराह हों बेजर हों बने अपने गुलाम।
हम को ऐशो तरबोतार मुबारक होए॥

अमीर : आमीं आमीं। वाह वाह वल्लाही खूब गाया। कोई है? इन लोगों को एक एक जोड़ा दुशाला इनआम दो। (मद्यपान)

[एक नौकर आता है]

नौकर : खुदावंद निआमत! एक परदेस की गानेवाली बहुत ही अच्छी खेमे के दरवाजे पर हाजिर है। वह चाहती है कि हुजूर को कुछ अपना करतब दिखलाए। जो इरशाद हो बजा लाऊं।

अमीर : जरूर लाओ। कहो साज मिला कर जल्द हाजिर हो।

नौकर : जो इरशाद।

[जाता है]

अमीर : आज के जशन का हाल सुन कर दूर दूर से नाचने गाने वाले चले आते हैं।

मुसाहिब : बजा इरशाद है, और उन को इनआम भी तो बहुत जियादाः मिलता है, क्यौं न आवैं?

[चार समाजियों के साथ एक गायिका का प्रवेश]

अमीर : (आप ही आप) यह तोहफा तो बहुत ही खूबसूरत है! (प्रकट) तुम्हारा क्या नाम है? (मद्यपान)

गायिका : मेरा नाम चंडिका है। मैं बड़ी दूर से आप का नाम सुन कर आती हूं।

अमीर : बहुत अच्छी बात है। जल्द गाना शुरू करो। तुम्हारा गाना सुनने को मेरा इश्तियाक हर लहजे बढ़ता जाता है। जैसी तुम खूबसूरत है वैसा ही तुम्हारा गाना भी खूबसूरत होगा।

(मद्यपान)

गायिका : जो हुकुम।

[गाती है]

ठुमरी तिताला

हां मोसे सेंजिया चढ़लि नहिं जाई हो।
पिय विनु सांपिन सी डसै बिरह रैन॥
छिन छिन बढ़त बिथा तन सजनी।
कटत न कठिन बियोग की रजनी॥
बिनु हरि अति अकुलाई हो।

अमीर : वाह वाह क्या कहना है! (मद्यपान) क्यौं फिदाहुसैन! कितना अच्छा गाया है।

मुसाहिब : सुबहानअल्लाह! हजूर क्या कहना है। वल्लाह, मेरा तो क्या जिक्र है मेरे बुजुर्गों ने ख्वाब में भी ऐसा गाना नहीं सुना था।

[अमीर अंगूठी उतार कर देना चाहता है]

गायिका : मुझ को अभी आप से बहुत कुछ लेना है। अभी आप इस को अपने पास रक्खैं, आखिर में एक साथ मैं सब ले लूंगी।

अमीर : (मद्यपान कर के) अच्छा! कुछ परवाह नहीं। हां, इसी धुन की एक और हो, मगर उस में फुरकत का मजमून न हो क्यौंकि आज खुशी का दिन है।

गायिका : जो हुकुम (उसी चाल में गाती है)

जाओ जाओ काहे आओ प्यारे कतराए हो।
कहो चलो छांह से छांह मिलाए हो॥
जिय को मरम तुम साफ कहत।
किन काहे फिरत मंडराए हो॥

एहो हरि देखि यह नयो मेरो, जोबन।
हम जानी तुम जो लुभाए हो॥

अमीर : **(मद्यपान कर के अत्यन्त रीझने का नाट्य करता है)** कसम खुदा की ऐसा गाना मैंने आज तक नहीं सुना था। दरहकीकत हिन्दोस्तान इल्म का खजाना है। वल्लाह मैं बहुत ही खुश हुआ।

[मुसाहिब गण, वल्लाह, बजा इरशाद बेशक इत्यादि सिर और दाढ़ी हिला हिला कर कहते हैं]

अमीर : तुम शराब नहीं पीतीं?

गायिका : नहीं हुजूर।

अमीर : तो आज हमारी खातिर से पीओ।

गायिका : अब तो आप के यहां आई ही हूं। ऐसी जल्दी क्या है। जो जो हुजूर कहैंगे सब करुंगी।

अमीर : अच्छा कुछ परवाह नहीं। **(मद्यपान)** थोड़ा सा और आगे बढ़ आओ।

[गायिका आगे बढ़ कर बैठती है]

अमीर : **(खूब घूर कर स्वगत)** हाय हाय! इस को देख कर मेरा दिल बिलकुल हाथ से जाता रहा। जिस तरह हो, आज ही इस को काबू में लाना जरूर है। **(प्रकट)** वल्लाह, तुम्हारे गाने ने मुझ को बेअख्तियार कर दिया है। एक चीज और गाओ इसी धुन की। **(मद्यपान)**

गायिका : जो हुकुम। **(गाती है)**

हां गरवा लगावैं गिरिधारी हो।
देखो सखी लाज सरम जग की॥
छोड़ि चट निपट निलज मुख चूमै बारी बारी।
अति मदमाती हरि कछु न गिनत॥
छैल बरजि रही मैं होइ होइ बलिहारी।
अब कहां जाऊं कहा करूं लाज की मैं मारी॥

अमीर : **(मद्यपान कर के उन्मत की भांति)** वाह! वाह, क्या कहना है। **(गिलास हाथ में उठा कर)** एक गिलास तो अब तुम को जरूर ही पीना होगा। लो तुम को मेरी कसम, वल्लाह, मेरे सिर की कसम जो न पी जाओ।

गायिका : हुजूर, मैंने आज तक शराब नहीं पी है। मैं जो पीऊंगी तो बिल्कुल बेहोश हो जाऊंगी।

अमीर : कुछ परवाह नहीं, पीओ।

गायिका : **(हाथ जोड़ कर)** हुजूर, एक दिन के वास्ते शराब पीकर मैं क्यौं अपना ईमान छोड़ूं?

अमीर : नहीं नहीं, तुम आज से हमारी नौकर हुई, जो तुम चाहौगी तुम को

मिलैगा। अच्छा, हमारे पास आओ हम तुम को अपने हाथ से शराब पिलावैंगे।

[गायिका अमीर के अति निकट बैठती है]

अमीर : लो जान साहब!

[पियाला उठा कर अमीर जिस समय गायिका के पास ले जाता है उसी समय गायिका बनी हुई, नीलदेवी चोली से कटार निकालकर अमीर को मारती है और चारों समाजी बाजा फेंक कर शस्त्र निकालकर मुसाहिब आदि को मारते हैं]

नीलदेवी : ले चांडाल, पापी! मुझ को जान साहब कहने का फल ले, महाराज के बध का बदला ले। मेरी यही इच्छा थी कि मैं इस चांडाल का अपने हाथ से बध करूं। इसी हेतु मैंने कुमार को लड़ने से रोका सो इच्छा पूर्ण हुई। (और अघात) अब मैं सुख पूर्व्वक सती हूंगी।

अमीर : (मृतावस्था में) दगा, वल्लाह चंडिका!

[रानी नीलदेवी ताली बजाती है तम्बू फाड़ कर शस्त्र खींचे हुए, कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं। मुसलमानों को मारते और बांधते हैं। क्षत्री लोग भारतवर्ष की जय; आर्य्यकुल की जय; क्षत्रियवंश की जय; महाराज सूर्य्यदेव की जय; महारानी नीलदेवी की जय; कुमार सोमदेव की जय; इत्यादि शब्द करते हैं]

[जवनिका गिरती है]

[सन 1881 ई. में पुस्तिकाकार प्रकाशित, 1884 और 1887 में इसकी द्वितीय और तृतीय आवृत्ति हुई। इस नाटक के पत्र-पत्रिका में छपने का उल्लेख नहीं मिलता।—सम्पादक]

•

सती प्रताप

(एक गीतिरूपक)

1885 ई.

सती प्रताप

पहिला अंक

स्थान–हिमालय का अधोभाग

[तृण लता वेष्टित एक टीले पर बैठी हुई तीन अप्सरा गाती हैं[

पहली अप्सरा :

(राग झिंझौटी)

जय जय श्री रुकमिन महरानी।
निज पति त्रिभुवन पति हरिपद में छाया सी लपटानी॥
सती सिरोमणि रुपरासि करुनामय सब गुनखानी।
आदिशक्ति जग कारनि पालनि निज भक्तन सुखदानी॥

दूसरी अप्सरा :

(राग जंगला या पीलू)

जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान॥
अनुसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान।
पति देवता तीय जुग धनधन गावत वेद पुरान॥
धन्य देस कुल जहं निबसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य ब्याह असथान।
सब समर्थ पतिबरता नारी इन सम और न आन।
याही ते स्वर्गहु में इनको करत सबै गुन गान॥

तीसरी अप्सरा :

(रागिनी बहार)

नवल बन फूलीं द्रुम बेली।
लहलह लहकहिं महमह महकहिं मधुर सुगन्धहिं रेली॥
प्रकृति नवोढ़ा सजे खरी मनु भूषन बसन बनाई।
आंचर उड़त बात बस फहरत प्रेम धुजा लहराई॥

गूंजहिं भंवर बिहंगम डोलहिं बोलहिं प्रकृति बधाई।
पुतली सी जित तित तितली मन फिरहिं सुगन्ध लुभाई॥
लहरहिं जल लहकहिं सरोज मन हिलहिं पात तरु डारी।
लखि रितुपति आगम सगरे जग मनहुं कुलाहल भारी॥

[जवनिका गिरती है]

दूसरा अंक

स्थान–तपोवन

[लतामंडप में सत्यवान बैठा हुआ]

[राग गीति-पीलू-धमार]

क्यों फकीर बना आया वे मेरे वारे जोगी।
नई बैस कोमल अंगन पर काहे भभूत रमाया वे॥
किन वे मात पिता तेरे जोगी जिन तोहि नाहिं मनाया वे।
कांचे जिय कहु काके कारन प्यारे जोय कमाया वे॥

[चैती गौरी तिताला]

विदेसिया वे प्रीति की रीति न जानी।
प्रीति की रीति कठिन अति प्यारे कोई विरले पहिचानी॥

सत्यवान : यह कोमल स्वर कहां से कान में आया? प्रतिध्वनि के साथ यह स्वर ऐसा गूंज रहा है कि मेरी सारी कदम्बखंडी शब्द ब्रह्ममय हो गई। बीच बीच में मोर कुहुक कुहुक कर और भी गूंज दूनी कर देते हैं। **(कुछ सोचकर)** हाय! मेरा मन इस समय भी स्थिर नहीं। हाय! प्रासादों में स्फटिक की छत पर चलने में जिनके चरण को कष्ट होता था आज वह कंटकमय पथ में नंगे पावों फिर रहे हैं और दुग्धफेन सी सेज के बदले आज मृगचर्म पर सोते हैं। हाय, हमारे माता पिता बुढ़ापे से सामर्थ्यहीन तो थे ही ऊपर से दैव ने उन्हें अन्धा भी बनाया। हाय, अभागे सत्यवान से भी कभी माता पिता की सेवा न बन पड़ी। कभी उनके वात्सल्य पूर्ण प्रेमामृत वचन ने मेरे कान न शीतल किए और न ऐसा होना है। जनमते ही तो तपस्या करनी पड़ी। धन्य विधाता! दरिद्र को धनवान और धनवान का दरिद्र करना तो तुम्हें एक खेल है। किन्तु दरिद्र बना के फिर क्यौं कष्ट देते हो। दरिद्र ही सही पर मन को शान्ति दो। भला

दो घड़ी भी वृद्ध माता पिता की सेवा करने पावें। (चिन्ता)
[सावित्री को घेरे हुए गाते गाते मधुकरी, सुरबाला और लगी का आना और फूल वीनना]

सखीजन : [गौरी]

भौंरा रे बौरानो लखि बौर।
लुबध्यौ उतहि फिरत मंडरान्यौ जात कहुं नहिं और॥
भौंरा रे बौरान्यो।

[चैती गौरी]

फूलन लगे
राम बन नवल गुलबवा।
फूलन लागे राम महुआ फले आम बौराने डारहि
डार भंवरवा झूलन लगे राम।

[गौरी]

पवन लगि डोलत वन की पतियां।
मानहु पथिकन निकट बुलाहिं कहन प्रेम की बतियां॥
अलक हिलक फहरत तन सारी होत है सीतल छतियां।
यह छबि लखि ऐसी जिय आवत इतहि वितैए रतियां॥

सुरबाला : सखी, कैसा सुन्दर वन है।
लवंगी : और यह बारी भी कैसी मनोहर है।
मधुकरी : आहा! तपोवन रिषि मुनि लोगों को कैसा सुखदायक होता है।
सावित्री : सखी, रिषि मुनि क्या, तपोवन सभी को सुख देता है।
सुरबाला : क्यौंकि यहां सदा वसन्त ऋतु रहती है न।
सावित्री : वसन्त ही से नहीं तपोवन ऐसा हई है।
मधुकरी : अहा! यह कुंज कैसा सुन्दर है। सखी देखो माधवी लता, इस कुंज पर कैसी घनघोर छाई हुई है।
सावित्री : सहज वस्तुएं सभी मनोहर होती हैं। देखो इस पर फूल कैसे सुन्दर फूले हैं जैसे किसी ने देवता की फूल मण्डली बनाई हो।
सुरबाला : और उधर से हवा कैसी ठंढी आती है।
लवंगी : और हवा में सुगन्ध कैसी है।
मधुकरी : सखी! एकटक उधर ही क्यौं देख रही हो!
सुरबाला : सच तो सखी। यहां क्या है जो उधर ही ऐसी दृष्टि गड़ा रही है?
सावित्री : (रागसोरठ)

लवंगी	:	तू क्या जानैं। तपोवन में सैकड़ों वस्तुएं ऐसी होती हैं। **लखो सखि भूतल चन्द खस्यो।** **राहु केतु भय छोड़ि रोहिनिहि या बन आइ बस्यौ॥** **कै सिव जय हित करत तपस्या मनसिज इत निवस्यौ।** **कै कोऊ वनदेव कुंज में वनबिहार बिलस्यौ॥**
मधुकरी	:	सच तो तपस्वियों में ऐसा रूप!
सुरबाला	:	जाने दे। वनबासी तपस्वी में ऐसा रूप कहां?
सावित्री	:	यह मत कहो। विधना की कारीगरी जैसी नगर में वैसी ही वन में। **(सत्यवान की ओर सतृष्ण दृष्टिपात)**
सुरबाला	:	देखती हो? एक मन एक प्रान होकर कैसा सोच रही है?
लवंगी	:	**(परिहास से)** आज जो यह तापसकुमार के बदले राजकुमार हो तो घर बैठे गंगा बही थी।
मधुकरी	:	सखी इस का कुछ नेम नहीं है कि राजकुमारी का ब्याह राजकुमार ही से हो।
सावित्री	:	विधाता ने जिस भाव में राजपुत्र को सिरजा है उसी भाव में मुनिपुत्र को और फिर राजधन से तपोधन कुछ कम नहीं होता।
सत्यवान	:	(आप ही आप) यह क्या वनदेवी आई हैं?
मधुकरी	:	हम उनके पास जाकर प्रणाम तो कर आवैं। **[मधुकरी का कुंज की ओर बढ़ना और सत्यवान का लतामंडप से निकल कर बाहर बैठना]**
मधुकरी	:	**(सत्यवान के पास जा कर)** प्रणाम **(हाथ जोड़ कर सिर झुकाना)**
सत्यवान	:	आयुष्मती भव। आप लोग कौन हैं?
मधुकरी	:	हम लोग अपनी सखी मद्रदेश के जयन्ती नगर के राजा अश्वपति की कुमारी सावित्री के साथ फूल बीनने आई हैं।
सत्यवान	:	**(स्वगत)** राजकुमारी! वामन को चन्द्रस्पर्श।
मधुकरी	:	कृपानिधान। आप सदा यहीं निवास करते हैं।
सत्यवान	:	जब तक दैव अनुकूल न हो यही निवास है।
मधुकरी	:	इस से तो बोध होता है कि किसी राजभवन को सुना कर के आप यहां आए हैं।
सत्यवान	:	सखी! उन बातों को जाने दो।
मधुकरी	:	हमारे अनुरोध से कहना ही होगा। दयालु सज्जनगण अतिथि की याचना व्यर्थ नहीं करते। विशेष कर पहले ही पहल।
सत्यवान	:	हम शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र हैं। हमारा नाम चित्राश्व वा सत्यवान है। इस भेध्यारण्य नामक वन में पिता की सेवा करते हैं।

मधुकरी : (**आप ही आप**) तभी। गंगा समुद्र छोड़ कर और जलाशय की ओर नहीं झुकती। (**प्रकट**) तो आज्ञा हो तो अब प्रणाम करूं।

सत्यवान : (**कुछ उदास हो कर**) यह क्यों? बिना आतिथ्य स्वीकार किए हुए?

मधुकरी : इस को तो मैं सखी से पूछ लूं तो उत्तर दूं। (**सावित्री के पास आ कर**) सखी! कुमार तापस कहते हैं कि आतिथ्य स्वीकार करना होगा। [**सावित्री सखियों का मुंह देखती है**]

लवंगी : (**परिहास से**) अवश्य अवश्य! इस में क्या हानि है।

सावित्री : (**कुछ लज्जा कर के**) सखी! उनसे निवेदन कर दे कि हम लोग माता पिता की आज्ञा लेकर तब किसी दिन आतिथ्य स्वीकार करैंगे, आज विलम्ब भी हुआ है।

मधुकरी : (**सत्यवान के पास जा कर**) कुमारी कहती हैं कि किसी दिन माता पिता की आज्ञा लेकर हम आवैंगे तब आतिथ्य स्वीकार करैंगे। आप तो जानते ही हैं कि आर्य्यकुल की ललनागण किसी अवस्था में भी स्वतन्त्र नहीं हैं। इस से आज क्षमा कीजिए।

सत्यवान : (**कुछ उदास हो कर**) अच्छा। (**सखियों के साथ सावित्री का प्रस्थान। उधर ही देखता है**) वह क्या? चित्त में ऐसा विकास क्यों? क्या स्वर्ण और रत्न में भी मलिनता? क्या अग्नि में भी कीट की उत्पत्ति? उस? फिर वही ध्यान? अब तो जी नहीं मानता। चलैं, आगे बढ़ कर बदली में छिपते हुए चन्द्रमा की शोभा देख कर जी को शान्ति दें।

[**जाता है**]

[**जवनिका गिरती है**]

तीसरा अंक

स्थान–जयन्ती नगर गृहोद्यान

[जोगिन बनी हुई सावित्री ध्यान करती है]

[नेपथ्य में बैतालिक गान]

प्रथम वैतालिक

नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि
फूल माल गरें बन झालरि सी लाई है।
भंवर गुंजार हरि नाम को उचार तिमि
कोकिला सी कुहुकि बियोग राग गाई है॥
हरीचन्द तजि पतझार घर बार सबै
बौरी बनि दौरी चारु पौद ऐसी धाई है।
तेरे बिछुरे तें प्रान कन्त कै हिमन्त अन्त
तेरी प्रेम जोगिनी वसन्त बनि आई है॥1॥

द्वितीय वैतालिक

पीरो तन पर्‌यौ फूली सरसों सरस सोई
मन मुरझान्यौं पतझार मनो लाई है।
सीरी स्वास त्रिविध समीर सी बहति सदा
अंखियां बरसि मधुझरि सी लगाई है।
हरीचन्द फूले मन मैन के मसूसन सों
ताही सों रसाल बाल बदि कै बौराई है।
तेरे बिछुरे तें प्रान कन्त के हिमन्त अन्त
तेरी प्रेम जोगिनी वसन्त बनि आई है॥2॥

प्रथम वैतालिक

''बरुनी बंन्धबर में गूदरी पलक दोऊ,
कोए राते बसन भगौहै भेख रखियां।
बूड़ी जलही मैं दिन जामिनीहूं जागैं भौंह,
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियां॥
आंसू ज्यौं फटिक माल काजर की सेली पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेलि संग सखियां।
दीजिए दरस देवि कीजिए संजोगन ये,
जोगिन ह्वै बैठी हैं बियोगिन की अंखिया''॥3॥

द्वितीय वैतालिक

एकै ध्यान एकै ज्ञान एकै मन एकै प्रान,
दसों दिसि अबिचल एकै तान तानो है।
जग मैं वसत हूं मनहूं जग बाहिर सी,
हियौ तन दोऊ निसि दिवस तपानो है॥
'हरीचन्द' जोग की जुगति रिद्धि सिद्धि सब,
तजि तिनका सी एक नेह को निभानो है।
बिना फल आस सीस सहनी सहस्र त्रास,
जोगिन सों कठिन वियोगिन को बानो है॥

[सावित्री ध्यान से आंख खोलती है]

सावित्री : अहा! एक पहर दिन आ गया। सखीगण अब तक नहीं आईं। इसी से ध्यान भी निर्विघ्न हुआ। हमारी वासना सत्य है तो अन्तर्गति जाननेवाली सतीकुल सरोजिनी भगवती भवानी हमारी भावना अवश्य पूर्ण करैंगी। मन, वच, कर्म्म से जो हमारी भक्ति पति के चरणारविन्द में है तो वे हम को अवश्य ही मिलैंगे। अथवा न भी मिलैं तो इस जन्म में तो दूसरा पति हो नहीं सकता। स्त्रीधर्म बड़ा कठिन है। जिस को एक बेर मन से पति कहकर वरण किया उस को छोड़ कर स्त्री शरीर की अब इस जगत में कौन गति है। पिता माता बड़े धार्मिक हैं। सखियों के मुख से यह संवाद सुन कर वह अवश्य उचित ही करैंगे। वा न करैंगे तो भी इस जन्म में अन्य पुरुष अब मेरे हेतु कोई है नहीं। **(अपना वेश देख कर)** अहा! यह वेष मुझ को कैसा प्रिय बोध होता हैं जो वेष हमारे जीवितेश्वर धारण करैं वह क्यों न प्रिय हो। इस के आगे बहुमूल्य हीरों के हार और चमत्कादर्शक वस्त्र सब तुच्छ हैं। वही

वस्तु प्यारी है जो प्यारे की प्यारी हो। नहीं तो सर्व्वसम्पत्ति की मूल कारण स्वरूपा देवी पार्वती भगवान भूतनाथ की परिचर्या इस वेश से क्यों करतीं? सती कुल तिलका देवी जनकनन्दिनी को अयोध्या के बड़े बड़े स्वर्ग विनिंदक प्रासाद और शचीदुर्लभ गृह सामग्री से भी वन की पर्णकुटी और पर्वतशिला अति प्रिय थी, क्योंकि सुख तो केवल प्राणनाथ की चरणपरिचर्या में है। जब तक आना स्वतन्त्र सुख है तब तक प्रेम नहीं। पत्नी का सुख एकमात्र पति की सेवा है जिस बात में प्रियतम की रुचि उसी में सहधर्मिणी की रुचि। अहा! वह भी कोई धन्य दिन आवैगा जब मैं भी अपने प्राणाराध्य देवता प्रियतम पति की चरणसेवा में नियुक्त होंगी। वृद्ध श्वसुर और सास के हेतु पाक आदि निर्माण कर के उनका परितोष करैंगी। कुसुम, दूर्वा, तुलसी, समिधा इत्यादि बीनने को पति के साथ वन में घूमैगी। परिश्रम से थकित प्राणनायक के स्वेद सीकर अपने अंचल से पोंछ कर मन्द मन्द वनपत्र के व्यजनवायु से उनका श्रीअंग शीतल और चरणसंवाहनादि से श्रमगत करैंगी।

[नेत्र से आंसू गिरते हैं]

[गान करते हुए सखीगण का आगमन]

(ठुमरी)

सखीत्रय : देखो मेरी नई जोगिनियां आई हो जोगी पिय मन भाई हो।
खुले केस गोरे मुख सोहत जोहत दृग सुखदाई हो॥
नव छाती गाती कसि बान्धी कर जप माल सुहाई हो।
तन कंचन दुति बसन गेरुआ दूनी छबि उपजाई हो॥
देखो मेरी नई जोगियां आई हो।

सावित्री के पास जा कर

(लावनी)

लवंगी : सखि! बोले जोबन महा कठिन ब्रत कीनो।
यह जोग भेख कोमल अंगन पर लीनो॥
अबहीं दिन तुमरे खेल कूद के प्यारी।
पितृ मातु चाव सों भवन बसो सुकुमारी॥
ओढ़ो पहिरौ लखि सुख पावै महतारी।
बिलसौ गृह सम्पत्ति सखी गई बलिहारी॥
तजि देहु स्वांग जो सबही बिधि सों हीनो।
यह जोग भेष जो कोमल अंग पर लीनो॥

मधुकरी : सखि! यही जगत की चाल जिती है क्वारी।
उनके सबही बिधि मात पिता अधिकारी॥
जेहि चाहैं ताकहं दान करैं निज बारी।
यामैं कछु कहनो तजनो लाज दुलारी॥
बिनती मानहु हठ मांहि वृथा चित दीनो।
यह जोगभेष जो कोमल अंग पर लीनो॥

सुरबाला : सखि, औरहु राजकुमार बहुत जग मांहीं।
विद्या बुधि गुन बल रूप समूह लखाहीं॥
चिरजीवी प्रेमी धनी अनेक सुनाहीं।
का उन सम कोऊ और जगत में नाहीं॥
जाके हित तुम तजि राजभेष सुख-भीनो।
यह जोग भेष निज कोमल अंग पर लीनो॥

सावित्री : (ईषत् क्रोध से)
बस बस! रसना रोको, ऐसी मति भाखो।
कछु धरमहु को भय अपने जिय मैं राखो॥
कुलकामिनि ह्वै गनिका धरमहि अभिलाखो।
तजि अमृतफल क्यों विषमय विषयहि चाखो॥
सब समुझि बुझि क्यों निंदहु मूरख तीनो।
यह जोग भेष जो कोमल अंग पर लीनो॥

लवंगी : सखी को कैसा जल्दी क्रोध आया है?

सावित्री : अनुचित बात सुन कर किस को क्रोध न आवैगा?

सुरबाला : सखी। हम लोगों ने जो वचन दिया था, वह पूरा किया।

सावित्री : वचन कैसा?

सुरबाला : सखी, तुम्हारे माता पिता ने हम लोगों से वचन लिया था कि जहां तक हो सकैगा हम लोग तुम को इस मनोरथ से निवृत्त करैंगे।

सावित्री : निवृत्त करोगी? धर्म्मपथ से? सत्य प्रेम से? और इसी शरीर में?

सुरबाला : सखी, शान्त भाव धारण करो। हम लोग तुम्हारी सखी हैं, कोई अन्य नहीं हैं। जिस में तुम को सुख मिले वही हम लोगों को करना है। यह सब जो कुछ कहा सुना गया, केवल ऊपरी जी से।

सावित्री : तब कुछ चिन्ता नहीं। चलो, अब हम लोग माता के पास चलैं। किन्तु वहां मेरे सामने इन बातों को मत छेड़ना।

सखीगण : अच्छा, चलो।

[जवनिका गिरती है।]

चौथा अंक

स्थान–तपोवन द्युमत्सेन का आश्रम
[द्युमत्सेन, उनकी स्त्री और ऋषि बैठे हैं]

द्युमत्सेन : ऐसे ही अनेक प्रकार के कष्ट उठाए हैं, कहां तक वर्णन किया जाय।

पहला ऋषि : यह आप की सज्जनता का फल है।

(छप्पय)

क्यौं उपज्यों नरलोक? ग्राम के निकट भयो क्यौं?
सघन पात सों सीतल छाया दान दयो क्यौं?
मीठे फल क्यौं फल्यों? फल्यौ तो नम्र भयो कित?
नम्र भयो तो सहु सिर पै बहु बिपति लोक कृत।
तोहिं तोरि मरोरि उपरिहैं पाथर हनिहैं सबहि नित।
जै सज्जन ह्वै नै कै चलहिं तिनकी यह दुरगति उचित॥

दूसरा ऋषि : ऐसा मत कहिए। वरंच यों कहिए–
चातक को दुख दूर कियो पुनि
दीनो सब जग जीवन भारी।
पूरे नदी नद ताल तलैया किए
सब भांति किसान सुखारी॥
सुखेहु रूखन कीने हरे जग पूर्‍यौ
महामुद दै निज बारी।
हे घन आसिन लौं इतनो करि
रीते भए हूं बड़ाई तिहारी॥

द्युमत्सेन : मोहि न धन को सोच भाग्य बस होत जान धन।
पुनि निरधन सो दोष न होत यहौ गुन गुनि धन॥
मोकहूं इस दुख यहै जु प्रेमिन हू मोहिं त्याग्यौ।
बिंना द्रव्य के स्वानहु नहिं मासों अनुराग्यौ॥
सब मित्रन छोड़ी मित्रता बन्धुन हूं नातो तज्यौ।
जो दास रह्यौ मम गेह को मिलनहुं मैं अब सो तज्यौ॥

पहला ऋषि : तो इस में आप की क्या हानि है? ऐसे लोगों से न मिलना ही अच्छा है।

द्युमत्सेन : नहीं, उन के न मिलने का मुझ को अणुमात्र सोच नहीं है। मुझ को तो ऐसे तुच्छमना लोगों के ऊपर उलटी दया उत्पन्न होती है। मुझ को अपनी निर्धनता केवल उस समय अति गढ़ती है जब किसी सत्पुरुष कुलीन को द्रव्य के अभाव से दुःखी देखता हूं। उस समय मुझ को निस्सन्देह यह हाय होती है कि आज द्रव्य होता तो मैं उस की सहायता करता।

दूसरा ऋषि : आप के मन में इस का खेद होता है तो मानसिक पुण्य आप को हो चुका और आप की मनोवृत्ति ऐसी है तो वह अवश्य एक न दिन फलवती होगी।

पहला ऋषि : सज्जनगण स्वयं दुर्दशाग्रस्त रहते हैं। तब भी उन से जगत में नाना प्रकार के कल्याण ही होते हैं।

द्युमत्सेन : अब मुझ से किसी का क्या कल्याण होगा! बुढाए से शरीर में पौरुष हुई नहीं। एक आंख थी सो भी गई। तीर्थ भ्रमण और देवदर्शन से भी रहित हुए।

पहला ऋषि : आप के नेत्रों के इतने निर्बल हो जाने का क्या कारण है? अभी कुछ आप की अवस्था अति वृद्ध नहीं हुई है।

द्युमत्सेन : वही कारण जो हम ने कहा था (**उदास हो कर**) पुत्रशोक से बढ़ कर जगत में कोई शोक नहीं। गणक लोगों ने यह कह कर कि तुम्हारा पुत्र अल्पायु है, मेरा चित्त और भी तोड़ रक्खा है। इसी से न, मैं ऐसा घर, ऐसी लक्ष्मी सी बहू पाकर भी अभी विवाह सम्बन्ध नहीं स्थिर करता।

दूसरा ऋषि : अहा! अभी महाराज, अश्वपति और उन की रानी इस सम्बन्ध से इतने उदास हैं। केवल कन्या के अनुरोध से सम्बन्ध करने के लिए कहते हैं।

[हरिनाम गान करते हुए नारदजी का आगमन]

(नारद नाचते और वीणा बजाते हुए)
(चाल नामकीर्त्तन महाराष्ट्रीय कटाव)
जय केशव करुणाकन्दा। जय नारायण गोविन्दा॥
जय गोपीपति राधानायक। कृष्णकमल लोचन सुखदायक॥
माधव सुरपति रावण हंता। सीतापति जदुपति श्रीकन्ता॥
बुद्ध नृसिंह परशुधर बावन। मच्छ कच्छ बपुधर गज पावन॥
कल्कि बराह मुकुन्दा। जय केशव करुणा कदा॥
जय जय विष्णु भक्त भयहारी। वृन्दावन बैकुंठ बिहारी॥
जसुदा सुअन देवकीनन्दन। जगबन्दन प्रभु कंसनिकन्दन।

शंख चक्र कौमोदकि धारी। वंशीधर बकबदन बिदारी॥
जय वृन्दावन चन्दा। जय केशव करुणा कन्दा॥
जय नारायण गोविन्दा।

[सब लोग प्रणाम कर के बैठते हैं]

द्युमत्सेन : हमारे धन्य भाग कि इस दीनावस्था के आप के दर्शन हुए।

नारद : राजन्! तुम्हारे पास सत्यधन, तपोधन, धैर्य्यधन अनेक धन हैं, तुम क्यों दीन हो और आज हम तुम को एक अतिं शुभ सन्देश देने को आए हैं। तुम्हारे पुत्र का विवाह सम्बन्ध हम अभी स्थिर किये आते हैं। सावित्री के पिता को भी समझा आए हैं कि उन की कन्या सावित्री अपने उज्ज्वल पातिव्रत धर्म्म के प्रभाव से सब आपत्तियों को उल्लंघन कर के सुख पूर्व्वक कालयापन करैगी और अपने पवित्र चरित्र से दोनों कुल को मान बढ़ावैगी। तुम से भी यही कहने आए हैं कि यह सन्देह छोड़ कर विवाह का सम्बन्ध पक्का करो।

द्युमत्सेन : मुझ को आप की आज्ञा कभी उल्लंघनीय नहीं है। किन्तु...

नारद : किन्तु फिन्तु कुछ नहीं। विशेष हम इस समय नहीं कह सकते। इतना मात्र निश्चय जानो कि अन्त में सब कल्याण है।

द्युमत्सेन : जो आज्ञा।

नारद : अब हम जाते हैं।

[गान चाल भैरव, ताल इकताला वा बाउल भजन की चाल पर ताल आड़ा]

बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम।
गोविन्द गोविन्द केशव केशव गोपाल गोपाल
माधव माधव हरि हरि हरि वंशीधर श्याम।
नारायण वासुदेव नन्दनन्दन जगबन्दन।
वृन्दावन चारु चन्द गरे गुंजदाम।
'हरीचन्द' जन रंजन सरन सुखद मधुर मूर्ति
राधापति पूर्ण करन सतत भक्त काम॥

[नृत्य और गीत]

[जवनिका गिरती है]

[इस गीतिरूपक को भारतेन्दु ने सन 1884 में लिखना प्रारम्भ किया था। वे इतना अंश ही लिख पाए थे। यह अंश 1884 ई. में ही हरिश्चन्द्र चन्द्रिका के अंकों में प्रकाशित हुआ था। उनकी मृत्यु के बाद बाबू राधाकृष्णदास ने तीन दृश्य लिखकर इस नाटक को पूरा किया। पूरा नाटक श्री हरिश्चन्द्र कला में छपा था। राधाकृष्णदास के लिखे हुए तीनों दृश्य आगे दिए गए हैं—सम्पादक]

पांचवां अंक

बनदेवी और बनदेवता आते हैं

दोनों—[गाते हुए, पूरबी]

हम बनबासी हो रामा।
जाहिं न पास नगर के कबहीं सब से रहत उदासी हो रामा॥
फल भोबन फूलन के गहना गिरिकन्दरा निवासी हो रामा।
जगत जाल सों बचि हम बिहरत केवल प्रेम उपासी हो रामा॥

बनदेवी : **[गाती हुई, पूरबी]**
आओ प्यारे प्रान हमारे बैठो सीतल छाहीं हो।

बनदेवता : तुमहुं यकीं ग्रीष्म दुपहरिया चलौ दिए गलबाहीं हो॥
[दोनों एक कुंज के पास जाते हैं]

बनदेवी : **यह रसाल की सीतल छाया तापर मालति छाई हो।**

बनदेवता : **वैसे तुमहू प्यारी मेरे कंठ रहो लपटाई हो॥**
[दोनों कुंज में एक शिला पर बैठते हैं]

बनदेवी : **देखहु प्यारे उपबन सोभा कैसी छई लुनाई हो॥**

बनदेवता : **वारों बढ़ि तुव अङ्ग अङ्ग में प्यारी देत लखाई हो॥**

बनदेवी : प्राणनाथ! देखो जब से सती कुलतिलक श्रीसावित्री देवी के पवित्र चरण इस वन में पड़े हैं तब से इस की शोभा दूनी हो गई है।

बनदेवता : इस वन में जिस शोभा के अंकुर को महात्मा सत्यवान ने लगा रक्खे थे उसे पतिप्राणा सावित्री ने अभिसिंचन कर के पूरी उन्नति पर पहुंचाया। जैसे प्यारी! तुम ने हमारे प्रेमांकुर को सींच कर पुष्पान्वित किया।

बनदेवी : प्राणवल्लभ! पति भी स्त्री के लिए कैसा देवता है—
पति सम जग में नहिं कोउ देव।
हम अवलन कहं पति ही को बल प्रानपतिहि कहं सेव॥

पतिप्राना नारी सों सुख धन कोउ जग में नहिं लेव।
पति विनु नारी जीवन विरया ज्यों बारी बिनु नेव॥

बनदेवता : भगवान तुम्हारी सी पतिप्राणा भार्य्या सब को दे—
नारि सम जग में नहिं सुखमूल।
पतिबरता नारी मिलबे सम सुख नहिं पायो भूल॥
पति हि उधारे तीन पुरुष संग एक सुलच्छन नारि।
ऐसी प्राणपियारी ऊपर दीजै सब जग वारि॥

बनदेवी : आहा! नाथ! प्रेम सा अमूल्य रत्न संसार में नहीं है, देखो उस के उदय होते ही तुम्हारे कमल नेत्रों में फूल उठे। (मुंह फेर कर आंसू पोंछती है, दोनों गले लगकर प्रेमाश्रु से अभिसिंचित होते हैं)

दोनों : गाओ सब मिल प्रेम बधाई।
प्रेमहि सुखसागर अरु प्रेमहि तीन लोक को राई॥
प्रेम रज्जु में बंध्यो सकल लग याकी फिरत दुहाई।
प्रेमनाथ ही की स्वर्गहू मैं एकछत्र ठकुराई॥
प्रेमहि जग को जीवन प्रान।
प्रेमहि सगरो काम करावत प्रेम बढ़ावत मान॥
प्रेम मैं निसि दिन बसत मुरारी।
बिना प्रेम पैये नहिं पीतम लाख सम्पदा बारी॥
प्रेमहिं जग को तारन कारन प्रेमहि भवभय हारी॥

बनदेवी : (नेपथ्य की ओर देख कर) प्यारे! देखो वह सतीसिरोमनि सावित्री देवी शोभा को बढ़ावती बन को हंसाती अपने प्राण पति के साथ इसी कुंज में पधारती हैं।

बनदेवता : और देखो सत्यवान भी प्रेम में मग्न अपनी प्यारी का मुख एकटक देखता और कोमल पुष्पकली की वर्षा करता मदोन्मत्त झूमता कैसा शोभायमान है। अहा! इन दोनों नव किशोरों को तापसी वेश कैसा सजा है जैसे साक्षात् शिव पार्वती का जोड़ा हो।

बनदेवी : प्यारे! चलो हम लोग इस कुंज की आड़ में से इन दोनों के पवित्र प्रेम पुरान को सुन कर अपना जीवन चरितार्थ करैं।

[दोनों कुंज की ओट में छिपते हैं]

[पटाक्षेप]

छठां अंक

[मालती कुंज में शिला पर सावित्री और सत्यवान बैठे हैं]

सावित्री : तुम मेरे बहुत जनत के प्यारे।
तुव दरसन लालसा पियारे कह कह कठिन नेम नहिं धारे॥
तुमहि प्रानधन जीवनसर्वत तुमही मम नैनन के तारे।
अब तौ नेकहुं नाहिं टरौं पिय दुष्ट काल हू जौ पै टारे॥

सत्यवान : (मखचुम्बन कर के)
''तुव मुख चन्द चकौर ये नैना।
पलक न लगत पलहु बिनु देखे भूलि जात गति पलहू लगै ना॥
अखरात मिलिबे को निसिदिन मिलेह रहत मनु कवहूं मिलै ना।
'भगवत रसिक' रसिक की बातें रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना॥''

दोनों : ''प्रीति की रीति ही अति न्यारी।
लोक वेद सब सों कछु उलटी केवल प्रेमिन प्यारी॥
को जानै समझे को याको बिरली समझनहारी।
'हरीचन्द' अनुभव ही लहिए जामैं गिरवरधारी॥''

सत्यवान : प्यारी! जब से तुम यहां पधारी तब से इस बन की शोभा ही दूसरी हो गई। आहा! वह सुन्दर राजप्रासाद और वे सब सुख के सामान जैसे सुखद थे उन से कहीं बढ़ कर यह वन तुम्हारे कारण सुखप्रद है।

सावित्री : नाथ! यह सब केवल तुम्हारा ही प्रभाव है। भला मेरे भाग्य कहां जो मैं इस शरीर से तुम्हारी सेवा करं सकूं; पर न जाने किस देवता की कृपा से आज मैं तुम्हारे चरणों की दासी हुई, जिस के लिए लोग जनम भर मरते हैं पर नहीं पाते। (आंखों में आंसू भर आते हैं)

सत्यवान : (गाढ़ आलिंगन कर के) मेरी प्राण! धन्य हमारे भाग्य जो तुम सी नारी हम ने पाई। हमारे ऐसा बड़भागी कोई स्वर्ग में भी न होगा। आहा!

हम सम जग में नहिं कोउ आन।
जा घर तुम सी नारि बिराजत ताके कौन समान॥
रूपरासि गुनरासि छबीली प्रेममयी मम जीवन प्रान।
सकल सम्पदा बारूं तुम पर प्यारी चतुर सुजान॥

सावित्री : प्राणनाथ! क्यों मुझे लजाते हो? मैं कदापि तुम्हारे योग्य नहीं। न जाने मेरे कौन से पुरबले पुन्य उदय हुए जो आप की श्रीचरणसेवा मेरे बांट पड़ी। प्राणवल्लभ! आप के गुणों का अनुभव जो मेरे चित्त को है उसे क्या यह बिचारी चमड़े की जीभ कभी भी जान सकती है? **(प्रेमाश्रु आंखों में भर आते हैं)**

सत्यवान : बलो रहने दो शिष्टाचार की बातें बहुत हो चुकीं। **(ऊपर देख कर)** अहा! हम लोगों की बातों में इतना दिन चढ़ आया, पिता के अग्निहोत्र का समय हो गया अभी लकड़ी चुन कर ले जाना हैं प्यारी! तुम यहीं ठहरो मैं अभी काष्ठ लेकर आता हूं।

सावित्री : नहीं प्राणनाथ! तुम्हें जाने देने को जी नहीं चाहता। आज न जाने क्यों जी उदास हो रहा है, न जाने कैसा कैसा जी कर रहा है, आप मत जाइए।

सत्यवान : स्त्रियों का स्वभाव अत्यन्त कोमल और प्रेममय होता है, इसी से तुम्हारा जी ऐसा हो रहा है और कुछ बात नहीं है। अब हम जाते हैं।

सावित्री : **(दाहिनी आंख का फड़कना दिखा कर)** नहीं नहीं आप मत जाइए, देखिए मेरी दाहिनी आंख भी फड़कती है, आज न जाने क्या होनहार है। मैं आप को न जाने दूंगी।

सत्यवान : यह स्त्रियों के स्वाभाविक दुर्बलता का कारण है और कुछ भी नहीं है। होता वही है जो उस की इच्छा होती है। अब तुम आग्रह मत करो, हमें जाने दो, देर हो रही है, पिता दिक़ हो रहे होंगे। **[जाता है और सावित्री वेर वेर मना करती है और व्याकुलता नाट्य करती है]**

सावित्री : **(अत्यन्त उदास हो कर)** आज जी ऐसा क्यों हो रहा है? आज ऐसा जान पड़ता है कि कोई भारी अनर्थ होगा। **(चौंक कर)** हैं! क्या आज ही वह भयानक दिन है जो मुनि ने बतलाया था? हाय? मैंने बुरा किया जो प्राणनाथ को अकेले जाने दिया। हाय! अब क्या करूं? कहां जाऊं? क्या मुझ निगोड़ी को मौत नहीं है? प्राणनाथ! तुम कहां गए? एक बात हमारी सुनते जाओ। **(कुछ ठहर कर)** जान पड़ता है दूर निकल गए, तो चलूं मैं ही खोज कर मिलूं। मैंने बुरा

किया जो आज उन्हें अकेले जाने दिया। (अत्यन्त व्याकुलता के साथ जाती है)

[नेपथ्य में गान]

हाय सुख देख सकत नहिं नेक।
महा कठोर विधाता कीनो सुखभंजन की टेक॥
द्वै दिन हू सुख सों नहिं बीतत भोगत जग के चैन।
दुखसागर बोरत अचानक नेकहु दया करैन॥
अग के झूठे सुख सम्पत्ति में धोखेहु भूलहु नाहिं।
अरे बावरे वेग धाइ गहु चरन तरोवर छाहिं॥

[पटाक्षेप]

सातवां अंक

[स्थान–घोर अरण्य]

[एक बड़े वृक्ष के नीचे सत्यवान मूर्छित सा पड़ा है और सावित्री उस का सिर अपनी गोद में रक्खे अत्यन्त व्याकुल बैठी है]

सावित्री : प्राणनपाथ, जीवनधन, यह तुम्हें क्या हुआ? अरे अभी तो अच्छे विच्छे हम से विदा होकर आए थे, अभी यह क्या दशा हो गई? हाय! यह गुलाब की पत्ती सा कोमल सुन्दर मुख इतनी ही देर में ऐसा श्याम क्यों हो गया? अरे कोई दौड़ो रे–किसी वैद्य, गुणी को बुलाओ–**(कुछ ठहर कर)** हाय! यहां कौन बैठा है जो मेरी इस विपत्ति में सहायता करैगा। हे दीनानाथ, अशरण शरण! मुझे सिवाय तेरे और कोई अवलम्ब इस समय नहीं है। देखो तुम्हारे रहते मैं अबला इस घोर बन में अनाथों की तरह लुटी जाती हूं। मुझे बचाओ।

सत्यवान : **(कुछ सचेत होकर सावित्री की ओर देख कर)** प्रिये! तुम यहां कहां? मैं तो चला, मेरे कारण तुम्हें बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े मुझे, क्षमा करना और कभी कभी इस अभागे का भी स्मरण करना। **(कुछ रुक कर)** पिता से मेरा बहुत तरह से प्रणाम कहना और कहना कि मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि मैं आप की सेवा बहुत कम करने पाया, मेरे अपराधों को आप क्षमा करें। मातृ चरण में भी मेरा प्रणाम पहुंचाना। मुझे बड़ा ही दुःख है कि मैं अन्त समय उनके दर्शन न कर सका। तुम अपने सास ससुर की सेवा बड़ी सावधानता से करना, भगवान के चरणों में सदा स्नेह रखना **(घबड़ाहट नाट्य कर के)** उह! अब चलैं, कंठ सूखा जाता है। बड़ी प्यास लगी है। पानी...पानी...ऽ

सावित्री : **(घबड़ा कर)** हाय! यहां पात्र भी नहीं कि पानी लाऊं। **(दौड़ कर आंचल में भिगा कर पास के तालाब से पानी लाकर सत्यवान के मुंह में निचोड़ती है)**

सत्यवान : **(कुछ स्थिर हो जाता है)** धन्य देवी, धन्य। इस समय तुम ने मानो

अमृत के बूंद चुआ दिए।

सावित्री : इन सब बातों को रहने दीजिए, यह बतलाइए अभी तो आप अच्छे चंगे थे अभी यहां क्या हो गया?

सत्यवान : (मुमुर्षु अवस्था में) मैं–तुम–से–विदा होकर लकड़ी चुनने आया। इस झाड़ी में घुस कर उस सूखे वृक्ष की लकड़ी ज्यों ही काटी मुझे जान पड़ा मानो मेरा सिर एकदम उड़ा जाता है। ऐसी भारी वेदना मेरे सिर में अकस्मात् उठी कि मैं किसी तरह सम्हल न सका, किसी तरह झाड़ी से निकला, यहां तक आते आते तो असुध होकर गिर ही पड़ा। फिर मुझे कुछ ज्ञान नहीं, जब ज्ञान हुआ तो तुम्हें बैठे पाया उह! बड़ी ज्वाला है, शरीर झुका जाता है–अब चला...**(मूर्छित हो जाता है)**

[नेपथ्य में गान]

यमदूत हैं हम भूत हैं मजबूत हैं रन में।
सोने के घर को खाक हमीं करते हैं छन में॥

सावित्री : हाय! क्या यमदूत आ गए? क्या अब मुझ से प्राणनाथ का वियोग ही होगा? कभी नहीं–कभी नहीं–यदि हमारा सतीत्व सत्य है तो देखते हैं यमदूतों की क्या सामर्थ्य है जो प्राणनाथ के अंग को छू भी सकें।

[अन्धकार हो जाता है और यमदूत आते हैं]

यमदूतगण : **(गाते हैं और नाचते हैं)**

यमदूत हैं हम भूत हैं मज़बूत हैं रन में।
सोने के घर को खाक हमीं करते हैं छन में॥
हो बादशाह या कि भिखारी हो कोई हो।
ज्ञानी हो या कि पापी हो चाहे जोई हो॥
इक दिन सभी हमारे ही चंगुल में फंसेंगे।
उस दिन किसी फरेब से इससे न बचैंगे॥
हम मुश्क बांध बांध के सबको ले जाएंगे।
हम कूद कूद खूब ही डंडे लगाएंगे॥
हम जिसको लेंगे उससे ज़रा भी न डरैंगे।
जो कुछ कि जी में आवैगा हम वोही करैंगे॥
यमदूत हैं हम भूत हैं...

एक दूत : अरे तुम सब नाचा ही गया करौगे या कुछ काम भी करौगे?

सब : (घबड़ा कर) हां हां, चलो भाई सत्यवान के प्राण को अभी प्रभु के पास ले चलना है। **(सब आगे बढ़ते हैं)**

एक दूत : (डर कर) हैं यहां तो आग सी जल रही है, किसी की सामर्थ है जो इस में कूदेगा। **(सब आश्चर्य और भय से उसी ओर देखते हैं)**

दूसरा : सच तो, हम ने भी असंख्य जीवों के प्राण लिये, यही करते जनम बीता, पर ऐसा चमत्कार कभी नहीं दिखा था। अब महाराज से चल कर क्या कहेंगे?

तीसरा : छि—तुम सब निरे डरपोक हो, हम लोग रात दिन के नरकाग्नि में रहनेवाले लोग, हमारा इस आग से क्या होना है, देखो हम अभी लाते हैं। **(सत्यवान के पास तक जाता है और बड़े जोर से चिल्ला कर ''अरे बाप रे मरे रे'' कह कर अचेत हो गिरता है)**

सब : **(मारे डर के कांपते हुए)** भाइयो! जान बचाना हो तो जल्दी यहां से भागो। जो दशा देखते हैं वही वहां निवेदन कर देंगे।

एक दूत : जरा ठहरो एक बेर इन से यह तो कहना चाहिए कि ये हट जायं देखें क्या कहती हैं तब वैसा कर कहेंगे।

दूसरा : तुम्हें अपनी जान भारी पड़ी हो तो कहो, हम तो न कहेंगे।

पहिला : **(साहसपूर्व्वक दूर से हाथ जोड़ कर)** देवी! तुम जरा सा हट जाओ तो हमारे प्रभु की जो आज्ञा है वह करके हम लोग शीघ्र ही प्रभु के पास जायं। अब व्यर्थ दुःख करने का क्या फल।

सावित्री : **(तीक्ष्ण दृष्टि से देख कर)** खबरदार, एक पैर भी आगे मत रखना। जा कर अपने प्रभु से कह दो कि प्राण रहते हुए इस शरीर को न छूने दूगी।

सब : **(घबड़ा कर)** अरे बाप रे, जले रे! **(सब भागते हैं)**

(नेपथ्य में गान)

[राग पीलू या बंगला]

''जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान॥
अनुसूया सीता सावित्री इनके चरित्र प्रमान।
पतिदेवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान॥
धन्य देस कुल जहं निवसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य ब्याह असथान॥
सब समर्थ पतिबर्ता नारी इन सम और न आन।
याही तें स्वर्गहु में इनको करत सबै गुन गान॥''

[यमराज का हाथ में लौह दंड लिये प्रवेश]

यमं : (आपही आप) आहा! देखो सतीत्व का कैसा तेज है मानो प्रलयाग्नि बल रही है। मुझे यह निष्ठुर कार्य्य करते इतने दिन हो गए पर ऐसा अपूर्व दृश्य कभी नहीं देखा। (प्रगट) देवी! तुम क्यौं वृथा हठ करती हो, जब दिन पूरे हो जाते हैं तो किसी की सामर्थ्य नहीं है जो जीव को बचावै। तुम जरा हट जाओ हम सत्यवान के प्राणवायु को ले जायं।

सावित्री : (हाथ जोड़ कर) महाराज! ऐसी बात मत कहिए। इस के सुनने से हमारा कलेजा फटा जाता है। सत्यवान हमारा जीवन सर्वस्व है, इस को छोड़ कर हम कहां हट सकती हैं?

यम : सावित्री! तुम्हारे पवित्र सतीत्व में कुछ सन्देह नहीं—पर पूर्व्व जन्म के पाप का फल भोगना ही पड़ता है। विधाता के लेख को कौन मिटा सकता है? अब व्यर्थ हठ मत करो, हट जाओ।

सावित्री : धर्म्मराज! यदि आप को ऐसा ही आग्रह है तो मुझे भी ले चलिए सत्यवान बिना मैं जी कर ही क्या करुंगी?

यम : यह हमारी सामर्थ्य से बाहर हैं; अभी तुम्हारे दिन नहीं पूरे हुए हैं। अच्छा हमें अब बहुत देर होती है।

सावित्री : हाय! आप को मुझ अबला पर तनिक भी दया नहीं आती!

यम : सावित्री! हम क्या करैं, हमारी क्षमता के बाहर जो बात है वह हम कैसे कर सकते हैं? सत्यवान के सिवाय तुम और जो कुछ चाहो हम देने को प्रस्तुत हैं।

सावित्री : महाराज! मेरे बूढ़े सास ससुर की आंखें जाती रही हैं सो आप कृपा करके दें।

यम : एवमस्तु! अच्छा ले अब हट जाओ। **(सावित्री हट जाती है और यमराज सत्यवान के प्राणवायु को ले कर जाते हैं और पीछे पीछे सावित्री भी जाती है)**

(नेपथ्य में गान)

"तुझ पर काल चानक टूटैगा।
गाफिल मत हो लवा बाल ज्यों हंसी खेल के लूटैगा॥
कब आवैगा, कौन राह से प्रान कौन विधि छूटैगा।
यह नहिं जानि परैगी बीचहि यह तन दरपन फूटैगा॥
तब न बचावैगा कोई जब काल दंड सिर कूटैगा।
'हरीचन्द' एक वही बचैगा जो हरिपद रस घूटैगा॥"

(वह पर्दा हट जाता है, दूसरा दृश्य घोर अरण्य अन्धकारमय दिखाई

पड़ता है। आगे आगे यमराज पीछे पीछे रोती हुई सावित्री का प्रवेश)

यम : (फिर कर सावित्री को देख कर) देवि! तुम क्यौं हमारे साथ आती हो? जाओ अपने घर। जो होना था सो तो हो चुका।

सावित्री : सूने घर में जाकर क्या करें? जहां सत्यवान वहीं सावित्री।

यम : तुम्हारे सतीत्व से हम अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। सत्यवान के प्राण व्यतीत और जो इच्छा हो सो मांगो।

सावित्री : महाराज! जो आप प्रसन्न हैं तो हमारे ससुर का राज्य जो शत्रुओं ने छीन लिया है सो फेर मिलै।

यम : तथास्तु! अच्छा अब तुम फिर जाओ।

[यमराज आगे बढ़ते हैं, सावित्री पीछे पीछे चलती है। वह पर्दा उठ जाता है दूसर दृश्य भयानक वन महा अन्धकार]

यम : (पीछे देख कर) तुम अभी भी नहीं गई क्यौं व्यर्थ का प्रयास करती हौ—जाओ—अब सत्यवान का मिलना असम्भव ही समझो।

सावित्री : धर्म्मराज! एक बात और भी प्रार्थनीय है।

यम : सत्यवान के सिवाय और जो कुछ चाहो मिल सकता है।

सावित्री : महाराज! मेरे श्वसुर कुल में वंश चलानेवाला कोई नहीं है इससे मुझे यह वर दीजिए कि सत्यवान से मुझे एक सौ लड़के हों।

यम : तथास्तु!

[यमराज आगे बढ़ते हैं, सावित्री उनका अनुसरण करती है। वह पर्दा उठ जाता है। दूसरा दृश्य स्वर्ग का द्वार महाउज्ज्वल तीन अप्सरा हाथ में माला लिए खड़ी हैं]

अप्सरागण : जाओ सावित्री के जीवन।

बहुत दिन की आसा पूजी अधर सुधा रसपीवन।
तुव इति प्रेम मालिका गूथी पहिरावै निज हाथ।
निर्भय ह्वै नन्दन बन बिहरै हल्हूं तजै न साय॥

यम : (पीछे सावित्री को देख कर) क्या तुम अभी तक हमारे साथ ही हौ?

सावित्री : महाराज! क्या अपने दिए हुए वर को अभी भूल गए? सत्यवान का प्राणवायु मुझे दीजिए।

यम : धन्य देवी धन्य! मैं तुमसे हारा। यद्यपि विधाता के नियम के विरुद्ध है तथापि मैं तुम्हें सत्यवान का जीवदान करता हूं। (सत्यवान का प्राणदान) आज से मैंने जाना सती नारी को सब कुछ करने की सामर्थ्य है; संसार में सती का अकर्तव्य कोई काम नहीं है। सावित्री! तुम्हारी यह विमल यशध्वजा अनन्त काल तक संसार में उड़ती रहैगी, तुम्हारा पवित्र गुणगान संसार को पावन करता रहैगा और तुम्हारा

पूजनीय नाम पतिव्रता स्त्रियों का सर्वस्व होगा। अहा! इस अलौकिक सतीत्व के आगे मुझे भी पराजित होना पड़ा। सतीत्व की जय—सावित्री की जय।

[यही शब्द चारों ओर से प्रतिध्वनित होता है और आकाश से पुष्प वृष्टि होती है। तीनों अप्सरा सावित्री को बीच में कर नाचती और गाती हैं]

गाओ अब मिलि प्रेम बधाई।
पतिप्राना नारी के आगे काहू की न बसाई॥
पतिहि जिवायो निज सतीत्व बल कालहु दियो हराई।
इनके यश की सुभग पताका तीन लोक फहराई॥
थाप्यो थिर करि प्रेम पन्थ जग निज आदर्श दिखाई।
देव वधूगन आनन्दित है प्रेम बधाई गाई॥

[सावित्री वहां से चलती है और एक एक करके वही दृश्य दिखलाई पड़ते हैं जो सावित्री को यमराज के साथ दिखलाई पड़े थे। अन्त में वन का वह दृश्य दिखलाई पड़ता है जिस में सत्यवान का मृत शरीर पड़ा है। सावित्री उस में प्राण संस्थापन करती है और सत्यवान उठता है जैसे कोई सोता हुआ जागे]

सत्यवान : (अंगड़ाई ले कर) उफ! कैसा भयानक दुःस्वप्न मैंने देखा है। मानो कोई महा विकराल मूर्ति धारण किए महाकाल मेरे प्राण को लेकर चला है। रास्ते में कैसे कैसे घोर वन और भयानक नर्ककुंड मिले हैं, जिसके स्मरण होने ही से रोमांच हो जाता है। फिर मानो वह महाकाल स्वर्ग के द्वार पर मुझे ले गया है, वहां मुझे वरण करने के लिए तीन अप्सराएं खड़ी हैं, इतने में मानो किसी स्वर्गीय देवी ने मेरा प्राणदान महाकाल से ले लिया है, और वह देवी मानो हूबहू तुम्हीं हो। उफ! कलेजा कांपता है, हे जगदीश रक्षा करो।

सावित्री : नाथ! डरिए मत, अब कुछ चिन्ता नहीं यह सब सत्य था, स्वप्न न था पर अब कुछ डर नहीं।

सत्यवान : ऐं! क्या यह सब सच था? क्या मुझे महाकाल के पास से तुम्हीं छुड़ा लाई? धन्य देवी धन्य! **(घबड़ाहट का नाट्य करता है)** अह! बेतरह सिर घूमता है। कुछ समझ नहीं पड़ता, जागता हूं या सोया।

[नारद मुनि बीन बजाते गाते आते हैं]

"बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम।
गोविन्द गोविन्द केशव केशव, गोपाल गोपाल॥
माधव माधव हरि हरि बंशीधर बंशीधर श्याम।"

नारायण वासुदेव नन्दनन्दन जगबन्दन वृन्दावन चारुचन्द्र गरे गुंजदाम।
'हरचिन्द' जनरंजन सरन सुखद मधुर मूर्ति राधापति पूर्ण करन सतत भक्त काम॥

[सत्यवान, सावित्री प्रणाम करते हैं]

नारद : मंगलमय भगवान श्रीकृष्णचन्द्र सदा तुम लोगों का मंगल करैं। **(सावित्री से)** सावित्री! आज तूने सतीकुल का मुख उज्ज्वल किया, आज तुम ने सतीत्व की ध्वजा फहराई, जो अनन्त काल तक उड्डीयमान रहैगी। तुम्हारा यश देवांगनागण गा कर अपने को धन्य मानैंगी और तुम्हारी पुण्यकथा संसार को पवित्र करैगी।

[लवंगी, मधुकरी और सुरबाला का प्रवेश]

सखीत्रय : वाह, सखी वाह! तुम में इतने गुण भरे हैं यह हम लोगों को तनिक भी विदित न था। धन्य तुम्हारा सतीत्व।

नारद : **(सत्यवान से)** पुत्र! तुम्हारा धन्य भाग्य है जो तुमने ऐसी सती स्त्री पाई। **(सावित्री का हाथ सत्यवान के हाथ में देते हैं)** लो आज फिर मैं तुम्हें इस अमूल्य रत्न को सौंपता हूं, इसे यत्न से रखना।

[तीनों सखी और अप्सरागण सावित्री सत्यवान को बीच में करके नाचती और गाती हैं। रंगशाला में खूब प्रकाश हो जाता है]

जय जय सावित्री महारानी।
सती सिरोमनि रूपरासि करुनामय सब गुनखानी॥
प्रेममयी निज पति के पद में छाया सी लपटानी।
इनके जस की सुभग पताका तीन लोक फहरानी॥
अचल प्रताप सतीत्व धरम को थाप्यो जग सुखदानी।
सतीमंडली भूषण ह्वैहै इनकी प्रेम कहानी॥

[आकाश से पुष्पवृटि होती है और जवनिका गिरती है]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

जन्म : सितम्बर 1850 ई., बनारस के एक समृद्ध वैश्य परिवार में।

शिक्षा : घर और क्वींस कालेज बनारस में स्कूली शिक्षा का सिलसिला अचानक टूट गया लेकिन पढ़ने-लिखने का सिलसिला जारी रहा। शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' जैसे मशहूर व्यक्ति से उन्होंने अंगरेजी पढ़ी।

अल्पायु में पिता की मृत्यु और विवाह से पारिवारिक जिम्मेदारियों में इजाफा पर उनके निर्वहन में पूरी तरह असफल।

अद्‌भुत साहित्यिक प्रतिभा के धनी, नाटक, काव्य, निबन्ध, कहानी, यात्रावृत्तान्त, अनुवाद आदि अनेक विधाओं में विविध विषयों पर प्रचुर साहित्य का लेखन।

कविवचन सुधा, बालाबोधिनी, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका आदि पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता का प्रारम्भ और विकास। धर्म और ईश-भक्ति के प्रचारार्थ अनेक तरह के प्रयास।

निधन : 6 जनवरी, सन 1885 ई.

ओमप्रकाश सिंह

जन्म : सन 1958 ई., उ.प्र. में जौनपुर जिले के एक गांव टड़वां में।

शिक्षा : आरम्भिक शिक्षा गांव और आसपास के विद्यालयों में। उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में। अक्टू. 1988 से नवम्बर 1990 तक एनसीईआरटी में कार्य। दिसम्बर 1990 ई. से ज.ने.विण, नयी दिल्ली के भारतीय भाषा केन्द्र में अध्यापन और शोध।

रचनाएं : + आदिकाल एवं मध्यकाल के प्रमुख हिन्दी कवि + प्रेमचन्द के कथा साहित्य में हिन्दू-मुसलिम सम्बन्ध + प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य और साम्प्रदायिक समस्याएं + आधुनिक काव्यधारा : विचार और दृष्टि + चिन्तामणि भाग-4 (सम्पादन)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रन्थावली (आठ भागों में सम्पादन)

प्रकाशन संस्थान

4715/21 दयानंद मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
फोन: 23253234, 65283371, फैक्स: 23287713